

*** * Digitized by Arya Samaj Foundation Chemai and ecangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार पुस्तकालय



विषय संख्या ५३०.०६ पुस्तक संख्या ५८० ग्रागत पञ्जिका संख्या ४३,०६४

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग	संख्या	 आगत	tiezi 4 3064	200

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

* * * * Digitized by Arya Samaj Foundation Chemar and ecangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार पुस्तकालय



विषय संख्या ५३०.०६ पुस्तक संख्या ५ (१) ग्रागत पञ्जिका संख्या ४३,०६४

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से ग्रधिक समय तक पुस्तक ग्रपने पास न रखें। Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri राजेश्वरदत्तमिश्रः CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार पुस्तकालय



विषय संख्या पुस्तक संख्या ग्रागत पञ्जिका संख्या 43,088

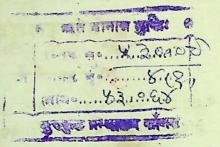
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

1 1014 4 · 8 · 2002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Brithon Ray 30 Sharma Pollter Ray 1906 rither Ry Brettun Ry िकाशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संयुक्त-प्रान्तीय बोर्ड आफ इंडियन मेडिसिन, निखिल भारतीयायुर्वेद विद्यापीठादि परीक्षासु पाठ्यरूपेग स्वीकृतः] उ दिन भमाणीकरण ११८४-११८४ काशी हिन्दू विश्वविद्यालयीयायुर्वेद-महाविद्यालयोध्योपकेन, 'सर सुन्दरलाल' आतुरालय प्रधानचिकित्सकेन आयुर्वेद शास्त्राचार्य पं॰ राजेश्वरदत्त मिश्र शास्त्रिणा विरचितः। 9. 8/2 ००२ - सचायम् -आयुर्वेदाचार्य पण्डित ताराशङ्कर मिश्रेण काशीस्थार्जुन युर्वेदविद्यालयाध्यापकेन संशोधितः। R530.9,MIS-S सर्वाधिकारः लेखकेन स्वायत्तीकृतः! [सार्धस्यकद्वयम् द्वितीय संस्करणम् सं० २००१ वि० पाठ्य-पुस्तक-विभाग CC-0. Gurukul Kangri Collection नामहो

प्रकाशक:-

सञ्जीवन औषधालय अस्ती, बनारस।



पुस्तक मिलने का पता-

राजेश्वरदत्त शास्त्री

सञ्जीवन औषधालय अस्सी, बनारस।

मास्टर खेळाड़ीळाळ ऐंड सन्स

संस्कृत बुकडियो, कचौड़ी गळी, बनारस।

> सुदकः— W. M. GODSE आर्यभूषण प्रेस, बनारस ।

Approved in the course of Benares Hindu University,

Board of Indian Medicine U. P. Government,

All India Ayurveda Vidyapith etc.

BY

Pandit Rajeshwar Dutt Shastri

Ayurved Shastracharya (B. H. U.)

PHYSICIAN Sir Sundarlal HOSPITAL, PROFESSOR

AYURVEDIC COLLEGE B. H. U., MEMBER

OF THE FACULTY OF MEDICINE &

SURGERY. (AYURVEDA)

B. H. U.

MEMBER OF

THE BOARD OF INDIAN

MEDICINE U. P. GOVERNMENT,

PRESIDENT 10th U. P. AYURVEDIC CONFRENCE.

Hindu University, Benares.



2nd Edition }

All Rights Reserved by the Author

Price 2/8/-

⊛ समर्पणम् ⊛



अयि निखिलविद्यार्णवकर्णधारधुरीणाः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयसंस्थापकाः श्रीमत्परमपृज्यपण्डितमद्नमोहन-मालवीयमहोदयाः!

श्रीमद्भिः श्रुतिशास्त्रवारिधिमहामन्थाचलैः साधुभिः विद्यादानपरोपकारिनरतैः श्रौताध्वसंचालकैः। मान्यैः सद्गुणवेश्मभिः कुलपित्ख्याति भजद्भिःशुभां धन्यं भारतमत्र नास्ति विदुषां बुद्धेः प्रभेदःकचित्।। येषां सत्कृपया तथैव नितरां माहाय्यदानान्मयाऽऽ-युर्वेदप्रथिताभिधाऽत्र सुखतो विद्या समासादिता। येषां सम्यगनुप्रहैकविटपच्छायातलं संश्रितः काश्यां सम्प्रति प्रत्यहं गुरुकुलं संसेवमानः स्थितः।।

तेभ्यस्तत्रभवद्भयो हि सादरं भक्तिभावतः । प्रन्थं समर्पयाम्येतं स्वस्थवृत्तसमुचयम् ॥ तुच्छोपायनदानेन भवतां पाणिपद्मयोः । यन्मया क्रियते धाष्ठ्यं याचे तत् क्षम्यतामिति ॥

> निवेदयति— राजेश्वरदत्तिमिश्रः

प्रस्तावना

निख्लिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ ने वैद्यसम्मेलन के कलकत्ते के वार्षिक अधिवेशन के समय आयुर्वेद की शिद्या ऋौर परीक्षा अन्थप्रधान न रहकर विषय प्रधान रहे यह प्रस्ताव स्वीकार किया। और तद्नुसार एक पाठ्यक्रम भी तैयार किया। अनन्तर अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं ने भी इस विषय-प्रधान पाठ्यक्रम का ऋनुकरण किया इस पाठ्यक्रम को कार्य में परिणत करने के लिये आयुर्वेद के भिन्न भिन्न पाठ्य विषयों पर स्वतन्त्र पुस्तकें संगृहीत करने व लिखने की आवश्यकता थी। अन्यथा इस पाठ्यक्रमानुसार पढ़ाना अध्यापकों के लिये बड़ा कठिन कार्य था। वैद्यसम्मेलन ने यह प्रस्ताव तो पास कर दिया परन्तु अर्थाभाव के कारण वैद्यसम्मेलन की स्रोर से एक भी प्रनथ इस पाठ्यक्रमानुसार तैयार न हो सका। इस बृटि को दूर करने के लिये मैंने जब काशी हिन्द-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-विभाग के अध्यक्षस्थान का भार ग्रहण किया। तब विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर परम पूज्य श्रीमान् पं० मदनमोहनमालवीयजी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। ऋौर पाठ्यपुस्तकनिर्माणार्थ विशेष प्रवन्ध करने के लिये आपह भी किया। देववशात अनारोग्यादि कारण से तीन मास के बाद ही मुझे वह स्थान छोड़ना पड़ा। मेरी वहां की उपस्थिति में ही मेरी प्रेरणा से श्रीयुत् पं० राजेश्वर-दत्तजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने इस प्रंथ के लिखने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

इस प्रन्थ में स्वस्थवृत्त विषयक आयुर्वेद के चरक सुश्रुत वाग्भटादि ग्रन्थों के वचनों का तथा मनु आदि स्मृति ग्रन्थों के वचनों का भलीभांति संग्रह कर दिया है। आवश्यक विषय कोई भी छोड़ा नहीं गया। साथ में अवस्य ज्ञातव्य प्रतीच्य चिकित्सा शास्त्र से भी स्वस्थवृत्त के विषयों का संस्कृत में अनुवाद करके संग्रह कर दिया है। इसलिये यह पुस्तक आयुर्वेद-विद्यार्थियों को पठन-पाठन और परीक्षा के छिये अत्युपयुक्त हुई है।

चरक सुश्रुतादि प्रन्थों में स्वस्थवृत्तविषयक वाक्य भिन्न भिन्न कई स्थानों में आये हैं। इन सब वचनों का एकत्र संग्रह हो जाने से पठन-पाठन में बड़ी सुविधा होगी। कई वैद्य महोदय इस प्रकार के संग्रह ग्रन्थ निर्माण के विरुद्ध हैं। परन्तु यह प्रयत्न नया नहीं है। ऐसे प्रयत्न पहिले भी हो चुके हैं। श्रायुर्वेद में माधवनिदान श्रौर व्याकरण में सिद्धान्तकौमुदो इसके अच्छे दृष्टान्त हैं।

श्चन्त में इस प्रयत्न के लिये पं० राजेश्वरदत्तजी को विशेष धन्यवाद देता हुआ आशा करता हूँ कि भविष्य में ऐसे अन्य य्रन्थ तैयार करके आयुर्वेदीयप्रन्थ-भण्डार की वृद्धि करेंगे।

श्रावण शुक्का १२) वैद्य यादवजी, त्रिकमजी आचार्य, सं० १९८७ वि० भूतपूर्व अखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन प्रथम संस्करण) सभापति, बम्बई।

मस्वरुप्ताप

निवेदनम्

मान्या वैद्यवर्थाः ! एति स्वस्थवृत्तसमुच्यस्य द्वितीय संस्करणं भवत्सेवायां समुपस्थापयामीति मे मनिस महान् प्रमोदः । भविद्विराहत उक्तयन्थः भारते वह्वीषु राजकीयासु राजमान्यासु च परीक्षासु पाठ्यरूपेण स्वीकृत इतिज्ञात्वा आत्मश्रमं सफलं मन्ये । सांसारिकयुद्धजन्यभयङ्करे खण्डप्रलयभूते वर्तमानकाले समस्तानि वस्तूनि प्रायेणालभ्यानि महर्घतमानि च जातानि । अतः महत्तम प्रयासेन बहुमूल्येन विलम्बेन च पुस्तक मुद्रणाय शनैः शनैः पत्रं (कागजम्) समुपलब्धम् । अतएव पुस्तकमूल्यसंवर्धन मावश्यकं जातम् । प्रायः समस्त विद्यालय कार्यं प्रत्यब्दं जुलाई मास्त एवारब्धं भवति ततः किञ्चित् पूर्वकालतएव मुद्रणकार्यारम्भात् जूलाईमासस्य प्रथम सप्ताह एव पुस्तकं प्रकाशितं स्यादि स्थान् मुद्रणाय शीव्रता कृता, अतो मुद्रणसंशोधनादि कार्ये यास्तुद्रयः सञ्जातास्तदर्थं भूयोभूयो क्षमां याचे । सुज्ञपाठकाः स्वयमेव संशोध्य विचार्य पठेयुः ।

काशीस्थार्जुनायुर्वेद विद्यालयाध्याकेन दारानगरस्थभास्करा-युर्वेदीयौषधालयाध्यत्तेणायुर्वेदाचार्य पण्डित ताराशङ्कर मिश्र महो-द्येन प्रूफ संशोधनार्थं शीच्र प्रकाशनार्थञ्च समस्तं प्रयत्नमनुष्टितम् , तत्कृते ऽनेकशोधन्यवादाः।

इंस्पेक्टर श्रीश्यामनारायणसिंह महोद्यस्य प्रयत्नेन सप्ताई-आफिसर महोद्यस्यकृपया पत्रम् (कागजम्) समुपळच्धमतस्ताविष धन्यवादाहीं। आर्यभूषणप्रसाधिकारिभिस्त्वरित मुद्रणार्थं महत्प्रयत्नं कृतमतस्तेभ्योऽपि धन्यवादा इति॥

गुरुपूर्णिमा, सं० २००१ वि० विदुषां विषेयस्य-राजेश्वरदत्तमिश्रस्य

Puttut Raj

विषयानुक्रमणिका

विषया:	वृष्टाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मंगलाचरण म्	8	अञ्जनानर्हाः	21
स्वस्थवृत्तस्वरूपम्	37	नस्यम्	:,
त्रारोग्यरोगयोः फलम्	,,	धूमपानम्	88
शरीररत्त्णप्रयोजनम्	33	व्यायामः	88
स्वस्थलद्ग्णम्	२	चङ्क्रमणम्	१५
स्वस्थरक्षणम्	,,	व्यायामदोषाः	22
स्वास्थ्यविधानम्	,,	व्यायामानर्हाः	१६
स्वस्थवृत्तानुष्ठानस्याव-		क्षीरकर्म	,,
श्यकत्वम्	8	ग्रभ्यंगः	,,
(दिनचर्या)	"	शिरोऽभ्यंगगुर्गाः	१७
उत्थानसमयः तदनुशौचा		कर्णाभ्यंगगुगाः	१८
चारश्च	"	पादाभ्यंगगुणाः	,,,
आचमनम् '	4	केश्या	",
दन्तधावनम्	Ę	स्नेहसेकगुणाः	1)
निषिद्धदन्तकाष्ठानि	9	स्नेहावगाहनगुणाः	28
दन्तधावनानर्हाः	5	अभ्यंगानर्हाः	91
जिह्वानिलें खनम्	,,	इारीरपरिमार्जनानि	,,
स्नेहगण्डूषधारणम्	"	स्नानम्	20
शीताम्बुगग्डूषः	9	प्रातःस्नानगुणाः	"
मुखनेत्रप्रचालनम्		स्नानभूमिः	78
	" १०	शीतोष्णभेदेन स्नानगुणा	
ग्रञ्जनम्	10	1 411111111111301	• 27

[२]

विषयाः	पृष्ठाङ्काः		ষ্টাঙ্কা:
स्नाननिषेधः	२२	महानसे राज्ञो वैद्यप्रयोजनम्	88
स्रशक्ती स्नानविधिः	,,	माहानसिकवैद्य:	"
वस्त्रेण तनुमर्दनम्	२३	राजयोग्यं महानसम्	४२
वस्त्रधारणम्	,.	महानसोपयोग्युपकरणानि	88
वस्त्रनिषेधः	,,	सूदकार:	४६
वस्त्राणां शुद्धचशुद्धिविवेव		परिवेषकः	"
उष्णिग्धारणगुणाः	,,	महानसकर्मचारिणः	8.9
अनुलेपनम्	,,,	पाकपात्राणि	86
गन्धमाल्यनिषेवणम्	२५	भोजनविशेषेण पात्रविशेषाः	,,
निषिद्धमाल्यम्	,,,	विभिन्नपात्रगुणाः	88
रताभरणधारणम्	"	जलपात्रम्	,,
पुष्पादिधारणसामान्यगुर	II: ,,	भोजनोपकल्पनम्	99
सन्ध्योपासनम्	२६	पात्रा दीनां शुद्धिः	40
पाद् काधारणम्	,,	प्रयोज्यमशनम्	98
पादत्रधारणम्	"	सात्विकादीनामशनम्	12
छुत्रधारणम्	२७	आहारस्य पट्प्रकारत्वम्	प्र
दग्रडधारणम्	.,	भोजनकाले भोक्तुः कर्तव्यम	Į "
उपस्तम्भाः	"	ऋाहारविधिविशेषायतनानि	ा ५३
ब्राहारः	,,,	द्वादशाशनप्रविचाराः	५८
आहारस्य सामान्यगुणा	: 29	दृष्टिदोषविनाशाय ब्रह्मादी	नां ,,
भोजनकालः	३०	स्मरणम्	49
अशनस्थानम्	३६	भोजनक्रमः	. ,,
पादौ प्रक्षाल्य भोजनम्	३८	भोजनस्यायोगहीनयोगाति	. Tunk
भोक्ता	,,,,,	योगमिथ्यायोगे दोषाः	६१
आसनम्	80	प्रशस्यं भोजनम्	६२

[3]

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भोजनस्य सुस्वादुत्वे मुख-	Toront !	अनुपानम्	७१
प्रश्वालनम्	६२	ग्र <u>न</u> ुपानावश्यकत्वम्	98.
संजातबुमुक्षायामनशने हा	निः ६३	निषिद्धानुपाना रोगिणः	99
निषिद्धं भोजनम्	,,	ग्रनुपानादनुवर्जनीयं कर्म	"
निषिद्धाना जनाः	६४	भोजनोत्तरं कर्म	,,
श्रमादिव्याप्तानां भोजनेहा	निः ;,	भोजनोत्तरं वर्जनीयकर्म	७७
अन्नपानयोः संरक्षणम्	,,	शय्या	,,
कतिपयखाद्यानां भक्षण-		संवाहनम्	७८
विधिविद्योषः	६५	वायुसेवनम्	23
धान्यम्	"	त्रातपवर्जनम्	,,
मांसम्	,,	दिवास्वापविवेकः	७९
क्षीरम्	६६	दिवामैथुननिषेधः	60
द्षितच्चीरजा रोगाः	६७	मध्यन्दिनीयं कर्म	. ,, .
आरोग्यकरक्षीरप्राप्तयुपाय	: ,,	(रात्रिचर्या)	"
दधि	६८	संध्यायां निषिद्धकर्माणि	"
तकम्	६९	ज्योत्स्नादीनां गुणाः	58
नवनीतम्	- ,,	पृथक्पृथक् सर्वयामकर्त-	
घृत म्	>9	ब्यम्	.,
शाकम्	90	रात्रिभोजनम्	"
फलम्	"	शयनासनम्	"
कन्दः	, ,,	व्यवाय:	65
त्राहारयोगिद्रव्याणि	35	विवाह्वयः	59
इत्तुविकारः	"	गर्भाधानकालः	"
मधु	७१	त्र्रत्यथागमने दोषाः	59
मद्यम्	"	निषिद्धव्यवायाः	"

[8]

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्र्यतिब्यवाये हानिः	,,	शिशिरतुंचर्या	१०५
स्त्रीषु संयमे लाभाः	80	वसन्तर्तुचर्या	,,
सुरतान्ते सेवनीयम्	,,	ग्रीष्मर्तुचर्या	१०६
रजस्वलाचर्या	79	वर्षतुंचर्या	१०७
गर्माधानविधिः	98	शरदृतुचर्या	१०८
स्वप्न:	97	ऋतुपरत्वेन पाननियमः	१०९
निद्राहेतुः	,,	ऋतुभेदेन भिन्न-भिन्न-	
निद्राप्रकाराः	९३	रससेवनम्	660
निद्राशक्तिः	,,	ऋतुपरत्वेन हरीतकीसेवनम	Ι,,
युक्तनिद्रागुणाः	1;	सद्वृत्म्	888
श्रयुक्तनिद्रादोषाः	98	(हिताहितविवेकः)	885
मितस्वप्ने लाभः	"	त्र्यधारणीया वेगाः	,,
निद्राविशेषाः	९५	धारणीया वेगाः	११९
निद्रानाशे हेतवः	"	रोगानुत्पत्तिकरा भावाः	१२०
निद्रानाशाद्रोगोत्यत्तिः	,,	रसायनगुणाः	१२२
निद्रानयनोपायाः	"	त्राचाररसायनम्	,,
ऋहितनिद्रावारणोपायाः	९६	त्र्रायुः परीच्णम्	१२४
नियतसमये-		तौलानुसारेणस्वास्थ्य-	
निद्रागमनोपायः	"	परीक्षणम्	१२७
निशान्ते जलपाने गुणाः	,•	नेत्रसंरक्षणपरायणत्वम्	१२९
ब्रह्मचर्यम्	90	प्रकृतिपरिचयपूर्वक-	1,-1
वीर्यरक्षोपायाः	,,,	माहारादिसेवनम्	१३२
ब्रह्मचर्यफलम्	९८	तथैव चरकोऽप्याह	१३६
ऋतुचर्या	"	हिताहितसेवनवर्जनकमः	"
हिमर्तुचर्या	१०३	श्रहितवर्जनेहितसेवनेच विश	रोषः "

[4]

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
निन्दितानिन्दितपुरुपवि-	Fig. 10	एकविधस्याऽपि जलस्य-	
वेचनपूर्वकमाचरणम्	१३८	वहुप्रकारत्वम्	१५८
हिताहितद्रव्यविवेकः	888	नल्रस्योपयोगः	,,
अहितकरं विरुद्धमशनम्	१४५	त्रान्तरीचाम्बुभेदाः	"
विरुद्धाशनस्य वितथत्वे	199190	गाङ्गसामुद्रयोः परीक्षणम्	१५९
कारणम्	१५०	त्रान्तरीचाम्बुग्रहणरीतिः	37
विरुद्धाशनजा रोगाः	,,,	ऐन्द्राख्यं पानीयं जलम्	"
वैरोधिकनिमित्तानांव्या		भौमाग्बुभेदास्तद्वर्णनञ्च	१६०
धीनांप्रतिघातकरोपायाः	,,,	ऋतुपरत्वेन भौमाम्बुसेवन	म् "
उपवासः	848	उत्तमपानीयलक्षणम्	,,
उपवासफलम्	,,	ऋ्तुभेदेनाम्भसो गुणाः	१६१
सर्वत्रतेषु पालनीयाः-		कौपं जलम्	
सामान्यधर्माः	37	स्वास्थ्यकरक्पनिर्माणम्	21
एकादशीव्रतम्	,,	निलकाक्र्यः	१६२
उपवासस्य भेदा विधिश्च	१५२	नादेयं जलम्	१६३
अनुपवास्याः	***	शुद्धनादेयजलप्रहण्रीतिः	१६४
केचिदातुरात्रप्युपवासाहां	,,	जाङ्गलपश्चिमदेशस्थानूपपूर	
प्रागाविरोधिलंघनोपदेशः	१५३	देशस्थसाधारणमध्यदेशस्थ	ानां
सुलंघित लक्षणम्	"	नदीनां गुणाः	31
अतिकृतलंघनदोषाः	,,,	अत्र लघुगुरूदकयोर्विवरण	
मादकद्रव्यागामुपयोग-		शैलादिभेदेन नदीजलगुण	ाः १६५
निषेधः	१५४	सारसं जलम्	. 33
देशः	१५५	ताडागंजलम्	१६६
जलम्	१५६	प्रास्रवणं जलम्	37
दिव्यजलगुगाः	१५७	ग्रौद्भिदं जलम्	,,,

[&]

विषयाः	वृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चौण्ट्यं जलम्	१६७	वातप्रविचारः	१८८
वैकिरादिजलगुगाः	,,	आवश्यकवातप्रावचरणार्थे	NAME OF
त्रान्पादिदेशभेदेनजलगुर	गाः १६८	प्रतिब्यक्त्यभीष्टस्थानम्	१९१
भौमाम्बुग्रहण्कालः	,,	वायुशुद्धिः	१९२
जलस्य निच्चेपग्म्	.,	सभास्थानादिकप्रमाणम्	"
पञ्चनित्तेपणानि भवन्ति	१६९	वासस्थानम्	१९३
जलदूषण्हेतवः तजारोगाः	ध ,,	वास्तुशास्त्रोक्ता ग्राह्मभूमिः	"
दूषितजलशोधनरीतयः	१७१	श्रयाह्यभूमिः	१९४
प्रसादनम्	१७२	भित्तिमूलम् (नीव)	१९६
परिस्नावणम्	१७३	भित्तिः	१९७
वृहद्राशिकजलस्य प्रसादः	नम् "	द्वारवातायनानि	. 31
जलगन्धनाशनोपायाः	१७४	तलम् (फर्श)	,,
नगरेषु शुद्ध जलप्रापणम्	"	गृहवितानम् (छत)	१९८
उष्णोदकम्	१७६	महानसम्	;;
श्वारीतं जलम्	१७७	वर्चोग्रहंप्रस्नावग्रहञ्च	१९९
श्रुतोदकस्य शीतीकरणोपा	याः ,,	स्तिकागारम्	"
शीतोदकम्	208	कुमारागारम्	"
पानीये विशेषविचारः	१७९	गृहभूशुद्धिः	२००
जलस्य वाह्योपयोगः	860	गोशालाश्वशाले	٠,
विषदुष्टमार्गोदकादिज्ञान-		जात्याद्यनुसारेण ग्रामादी	
पूर्वकमात्मरच्राम्	१८१	वासस्थाननिर्माणम्	२०१
(वायुः)	१८२	नगरम्	२०२
वायुसञ्चारप्रयोजनम्	,,	दुर्गाणि	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
दिशाभेदेन वातगुणाः	१८५	पण्यवीथिका	२०३
वायुप्रवाहः	१८६	विद्यालयः	२,५

[0]

ख्रात्रावासः २०६ विद्यार्थिनास्वास्थ्योपदेशः ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,	विषया:	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चिकित्सालयः २०७ जलसंबाह्कमलपात्रम् ,, किट्टनलः २२३ वाह्यरोगिखगडः २०८ गृहमलपथः ,, किट्टवाहः २२४ पिरचारिकाग्यहम् २१० किट्टवाहः २२४ किट्टवाहः १२४ किट्टवाहः १२९ संक्रामकरोगाः १२९ संक्रमणप्रतिपेधोपायाः ,, धोषणा १३४ विशेषः ,, विशेषः ११३ सेक्रमलस्य दूरीकरणम् ,, किट्टमलस्य दूरीकरणम् ,, किट्टमलस्य दूरीकरणम् २१५ सेक्रमलस्य दूरीकरणम् २१५ सेक्रमलस्य दूरीकरणम् २१५ सेक्रमलस्य दूरीकरणम् २१५ सेक्रमलस्य दूरीकरणम् ११५ सेक्रमलस्य ११० सेक्रमलस्य १	छात्रावासः	२०६	जलवाह्नविधिः	२२१
शासकखण्डः २०८ श्रान्तिरुगेगिखण्डः २०८ श्रान्तिरुगेगिखण्डः २०८ श्रान्तिरुगेगिखण्डः २०८ किट्टबाहः २२४ किट्टबाहः १२४ किट्टबाहः १२४ किट्टबाहः १२४ किट्टबाहः १२४ किट्टबाह्गे ११८ संक्रमणप्रकाराः १२३ संक्रमणप्रकाराः १३३ संक्रमणप्रतिषेधोपायाः ११३ शोषणा १३४ शोषणा १३४ शोषणा १३४ शिषणा १३४ विशेषः ११३ विशेषः ११३ विशेषः ११३ विशेषः ११३ संक्रमणस्य दृरीकरणम् ११३ संक्रमणस्य दृरीकरणम् ११४ रोगप्रतिरेथज्ञमता १३८ सङ्घरमलस्य दृरीकरणम् ११५ रोगप्रतिरेथज्ञमता १३८ सङ्घरमलस्य दृरीकरणम् ११५ रोगप्रतिरेथज्ञमता १३९ सङ्घरमलस्य दृरीकरणम् ११५ रोगप्रां वर्णनम् १३९ सङ्घरमलस्य दृरीकरणम् ११५ रोगप्रां वर्णनम् १३९ सङ्घरविधः १४० स्वातपूरणप्रकाराः ११५ प्रान्यकच्यरः १४१ प्रान्यकच्यरः १४३ प्रान्यकच्यः १४३ प्रान्यकच्यः १४३ प्रान्यकच्याकच्याकच्याकच्याकच्याकच्याकच्याकच्	विद्यार्थिनांस्वास्थ्योपदेशः	"	साधनानि	२२२
वाह्यरोगिखगडः २०८ स्त्रम्लपथः ,, क्रिड्वाहः २२४ किड्वाहः २२४ किड्वाहः २२४ किड्वाहः २२४ किड्वाहः २२४ किड्वाहः १२४ किड्याह्यान्तिमो निच्चेपः २२६ संक्रामकरोगाः २२९ संक्रामकरोगाः २२९ संक्रामकरोगाः २३३ संक्रामकरोगाः १३३ संक्रामकरोगाः १३३ संक्रामणप्रकाराः १३३ संक्रामणप्रकाराः १३३ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामणप्रकाराः १३४ संक्रामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, संक्रामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, संक्रामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, संक्रामकरस्य दूरीकरणिष्यः २१३ रोगप्रतिरोधच्लमता १३७ संक्रामलस्य दूरीकरणम् ११५ रोगप्रतिरोधच्लमता १३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् ११५ रोगपणां वर्णनम् १३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् २१७ विषमज्वरः २४० सातपुरणप्रकाराः ,, क्रिड्मलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्वरः २४१ प्रतिप्रपूरणम् ११९ प्रान्तिकज्वरः २४१ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४१ मूत्रालयः ,, श्रोध्यकज्वरः १४३ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४१ स्र्राच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४१ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४१ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४१ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४३ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः २४३ स्र्रेच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः , श्रोच्यकज्वरः , श्रोच्यकज्वरः , श्रोच्यकज्वरः , श्रोच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः , श्रोच्यकज्वरः , श्रोच्यकज्वरः , श्रोच्यालयः ,, श्रोध्यकज्वरः , श्रोच्यालयः ,,	चिकित्सालयः	२०७	जलसंवाहकमलपात्रम्	• "
त्रान्तरिकरोगिखण्डः २०९ किट्टबाहः २२४ परिचारिकागृहम् २१० किट्टस्यान्तिमो निच्चेपः २२६ संक्रामकरोगिगृहम् १, संक्रमण्यतिषेधोपायाः १३३ संक्रमण्यतिषेधोपायाः १३३ संक्रमण्यतिषेधोपायाः १३४ अधिष्ठानादीनि १, धोषणा १३४४ संक्रमण्यतिषेधोपायाः १३४ विशेषः १३५ जीवासुविनाशनम् १, नर्जन्तुकोकरण्विधिः २३५ जीवासुविनाशनम् १, मलसङ्करादिदृरीकरण्विधयः २१३ रोगप्रतिरोधच्मता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् १, किट्टमलस्य दूरीकरणम् ११५ रोगप्रतिरोधच्मता २३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् ११५ रोगप्रां वर्णनम् २३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगप्रां वर्णनम् २३९ सङ्घरमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्वरः २४० स्वातपूरणपकाराः १, किट्टमल्पम् २१९ प्रत्यिकज्वरः २४१ प्रत्यिप्रणम् २१९ प्रत्यिकज्वरः २४१ प्रत्यिकज्वनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४२ स्र्रां प्रत्यालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ स्र्रां प्रत्यालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४२ स्र्रां प्रत्यालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १, स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १४२ स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १४३ स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १४४ स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १४३ स्र्रे रहेष्मकस्यन्तियातः १४३ स्	शासकखण्डः	,,	किट्टनलः	-223
परिचारिकाग्रहम् २१० किष्टस्यान्तिमो निच्चेपः २२६ स्वाय्हं शवपरीच्चाभवनं च ,, संकामकरोगिग्रहम् ,, संकामकरोगिग्रहम् ,, संकामकरोगिग्रहम् ,, संकामकरोगिग्रहम् ,, संकामणप्रतिषेधोपायाः ,, धोषणा २३४ संकामणप्रतिषेधोपायाः ,, धोषणा पृथप्रच्चणम् ,, धोषणा पृथप्रच्चणम् ,, उपदेशः चर्चेषः चर्चेषः ,, जीवाग्रुविनाशनम् ,, संकामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, संकामकर्यादिदूरीकरणम् ,, संकामकर्यादिधिः २३७ रोगप्रतिरोश्चमता २३८ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् २१५ योगाणां वर्णनम् २३९ सङ्घर्यविधः ,, कुष्ठरोगः ,, कालज्वरः २४० स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ प्रत्यक्षकवरः २४१ प्रत्यक्षकवरः २४२ प्रत्यक्षकवरः , १४२ प्रत्यक्षकवरः , र४२ प्रत्यालयः ,, संकामकस्ववरः , र४२ प्रत्यालयः ,, संकामकस्ववरः , र४२ प्रत्यालयः ,, संकामकस्वविपातः ,, संकामकस्ववरः , र४२ प्रत्यालयः ,, संकामकस्ववरः ,, संकामकस्ववरः ,, संकामकस्ववरः ,, संकामकस्ववरः ,, संकामकस्वविपातः ,, संकाम	वाह्यरोगिखग्डः	२०८	गृहमलपथ:	"
शवगृहं शवपरी वाभवनं च ,, संक्रामकरोगिगृहम् ,, विशिष्टगृहाणि २११ संक्रमणप्रतिषेधोपायाः ,, अधिष्ठानादीनि ,, बोषणा २३४ विशेषः ,, विशेषः ,, संक्रामकरोगिगृहसम्बन्धिनियमाः ,, मलसङ्करादिदृरीकरणविधयः २१३ सङ्करमलस्य दृरीकरणम् ,, किट्टमलस्य दृरीकरणम् २१५ सञ्जयविधः ,, किट्टमलस्यान्तमो निच्चेषः २१७ स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालञ्चरः २४१ प्रज्वालनम् २१९ आन्त्रिकज्वरः २४२ मूत्रालयः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्ववारः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्वविवातः ,, हेर्डम्मकस्वविवातः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,, हेर्डम्मकस्विवातः ,,	ब्रान्त रिकरोगिखण्डः	२०९		२२४
संक्रामकरोगिगृहम्	परिचारिकाग्रहम्	. 560		२२६
विशिष्टग्रहाणि २११ संक्रमणप्रतिषेधोपायाः ,, धोषणा २३४ धोषणा २३४ यस्तूनि ,, धोषणा पृथप्रच्याम् ,, यस्तूनि ,, उपदेशः २३५ वशेषः ,, जीवागुविनाशनम् ,, संक्रामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः २१३ रोगप्रतिरोश्चमता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किट्टमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधः ,, कुष्ठरोगः ,, किट्टमलस्यान्तिमो निच्चेषः २१७ विषमज्वरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ प्रत्यालनम् २१९ प्रत्यिष्ट्रपंत्रम् २१९ प्रत्यिकज्वरः २४१ प्रत्यालनम् २१९ प्रत्यिकज्वरः २४२ प्रत्यालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४२ प्रत्यालयः ,, रुलेष्टमकसन्निपातः ,,	शवगृहं शवपरीक्षाभवनं च	,,	संक्रामकरोगाः	२२९
अधिष्ठानादीनि ,, धोषणा २३४ रहिष्णा ११४ रहिष्णा १११ व्यय्पाः ११२ विशेषः ,, जीवागुविनाशनम् ,, मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः २१३ रोगप्रतिरोश्चमता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किंद्रमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सङ्घरमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सङ्घरमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्वरः २४० स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ प्रज्वालनम् २१९ प्रान्यिकज्वरः २४१ प्रज्वालनम् २१९ आन्त्रिकज्वरः २४१ मूत्रालयः ,, रुलेष्मकसित्रपातः ,,	संकामकरोगिगृहम्	,,		२३३
वस्तूनि ,, रोगिणां पृथय्रच्णम् ,, रवश्यः २३५ विशेषः ,, जीवाणुविनाशनम् ,, संक्रामकरोगिगृहसम्बन्धिनियमाः ,, मलस्क्करादिदूरीकरणविधयः २१३ रोगप्रतिरोश्चमता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किद्मलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधः ,, कुष्ठरोगः ,, किद्मलस्यान्तिमो निच्चेषः २१७ विषमज्वरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ प्रज्यालनम् २१९ प्रान्थिकज्वरः २४१ प्रज्यालनम् २१९ प्रान्थिकज्वरः २४१ प्रज्यालनम् २१० आन्त्रिकज्वरः २४२ मूत्रालयः ,, रुष्ठिष्मकसित्नपातः ,,	विशिष्टगृहाणि <u> </u>	२११	संक्रमणप्रतिषेधोपायाः	55
शय्याः २१२ उपदेशः २३५ विशेषः ,, तीवाणुविनाशनम् ,, तीर्जन्तुकीकरण्विधिः २३७ सेकामकरोगिगृहसम्बन्धिनियमाः ,, मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः २१३ सेग्रप्रतिरोयत्तमता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किद्यमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधिः ,, कुष्ठरोगः ,, किद्यमलस्यान्तिमो नित्तेषः २१७ विषमण्वरः २४० स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालच्वरः २४१ प्रत्यप्रणम् २१९ प्रन्थिकण्वरः २४१ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकण्वरः २४२ मूत्रालयः ,, रुलेष्मकसित्रपातः ,,	अधिष्ठानादीनि	"	घोषणा	२३४
शय्याः २१२ उपदेशः २३५ विशेषः ,, जीवागुविनाशनम् ,, संक्रामकरोगिगृहसम्बन्धिनियमाः ,, नर्जन्तुकीकरण्विधिः २३७ गण्यविद्याः २१३ गण्यविद्याः २१३ गण्यविद्याः २१३ गण्यविद्याः २१३ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किद्यमलस्य दूरीकरणम् २१५ गोगणां वर्णनम् २३९ सञ्जयविद्यः ,, कुष्ठरोगः ,, किद्यमलस्यान्तिमो निच्चेषः २१७ विषमज्वरः २४० स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ गर्तप्रपूरणम् २१९ ग्रन्थिकज्वरः २४१ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४२ मूत्रालयः ,, रेलेष्मकसित्रपातः ,, रेलेष्मकसित्रपातः ,, रेलेष्मकसित्रपातः ,, रेलेष्मकसित्रपातः ,, रेलेष्मकसित्रपातः ,,	वस्तूनि	,,	रोगिणां पृथय्रच्णम्	31
संक्रामकरोगिग्रहसम्बन्धिनियमाः ,, मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः २१३ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किद्यमलस्य दूरीकरणम् २१५ सञ्चयविधिः ,, किद्यमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ स्वातपूरणप्रकाराः ,, गर्तप्रपूरणम् २१९ प्रज्वालनम् २१९ मूत्रालयः ,, हेर्डिंग्स्यक्विद्यः ,, हेर्डिंग्स्यक्विद्यः ,, हेर्डिंग्स्यक्विद्यः ,, हेर्डिंग्स्यक्विद्यः ,, हेर्डिंग्सक्विद्यः ,,		२१२	उपदेशः	२३५
मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः २१३ रोगप्रतिरोत्रज्ञमता २३८ सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, किद्यमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधः ,, कुष्ठरोगः ,, किद्यमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्तरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ प्रज्यालनम् २१९ प्रान्यकज्वरः २४२ प्रज्यालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः ,, रुठेष्मकसन्निपातः ,,	विशेष:	,,	जीवागुविनाशनम्	33
सङ्करमलस्य दूरीकरणम् ,, विषयविशिष्टसंकामक- सञ्चयविधिः ,, कुष्ठरोगः ,, विषमण्वरः २४७ स्वातपूरणप्रकाराः ,, कालच्चरः २४९ प्रज्वालनम् २१९ प्रान्यिकण्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकण्वरः २४३ मूत्रालयः , रुठेष्मकसन्निपातः ,,	संक्रामकरोगिगृहसम्बन्धिनिय	भाः ,,	निर्जन्तुकीकरणविधिः	२३७
किट्टमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधिः ,, कुष्ठरोगः ,, किट्टमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्वरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ ग्रात्प्रपूरणम् २१९ ग्रान्थिकज्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः ,, रुलेष्मकसन्निपातः ,,	मलसङ्करादिदूरीकरणविधय	: २१३	रोगप्रतिरोवद्यमता	२३८
किट्टमलस्य दूरीकरणम् २१५ रोगाणां वर्णनम् २३९ सञ्चयविधिः ,, कुष्ठरोगः ,, किट्टमलस्यान्तिमो नित्तेपः २१७ विषमज्वरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ गर्तप्रपूरणम् २१९ ग्रन्थिकज्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः , रुलेष्मकसन्निपातः ,,	सङ्करमलस्य दूरीकरणम्	23.	कतिपयविशिष्टसंक्रामक-	
सञ्चयविधिः ,, कुष्ठरोगः ,, किट्टमलस्यान्तिमो निच्चेपः २१७ विषमज्वरः २४० खातपूरणप्रकाराः ,, कालज्वरः २४१ गर्तप्रपूरणम् २१९ प्रन्थिकज्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः ,, रलेष्मकसन्निपातः ,,		२१५	रोगाणां वर्णनम्	२३९
खातपूरणप्रकाराः ,, कालच्चरः २४१ गर्तप्रपूरणम् २१९ प्रन्थिकज्बरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्बरः २४३ मूत्रालयः , रुलेष्मकसन्निपातः ,,		,,	कुष्ठरोगः	,,
गर्तप्रप्णम् २१९ ग्रन्थिकज्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः , श्लेष्मकसन्निपातः ,	किट्टमलस्यान्तिमो निच्चेपः	२१७	विषमज्वरः	२४०
गर्तप्रपूरणम् २१९ प्रन्थिकज्वरः २४२ प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः , श्लेष्मकसन्निपातः ,	खातपूरणप्रकाराः	,,	कालज्वरः	२४१
प्रज्वालनम् २२० आन्त्रिकज्वरः २४३ मूत्रालयः , श्लेष्मकसन्निपातः ,		288	ग्रन्थिकज्वर:	२४२
मूत्रालयः , श्लेष्मकसन्निपातः ,		२२०	आन्त्रिकज्वरः	२४३
		,,	श्लेष्मकसन्निपातः	19
		२२१	शोषः	58.8

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[6]

विषयाः पृष्	अङ्गः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
क्षयरोगाक्रमणे मुख्यतः-		अन्ये च्यरोगप्रचारहेतवः	२५०
कारणत्रयम्	२४५	हितोपदेशाः	२५२
शरीरे क्षयोत्पादककीटाणूनां-	FR	विस्चिका	२५३
प्रवेशप्रकाराः	"	मसूरिका (शीतला)	२५४
श्वासद्वारा कीटागुप्रवेशः	"	जनपदोद्ध्वंसनेकारगानि	२५५
कासनम्	२४७	रोगारम्भक्षरो जनानां	STHE .
मक्षिकादमनावश्यकता	"	कर्तव्यम्	२६२
श्रशनद्वारा कीटागुप्रवेशः	586	श्चन्त्येष्टिकर्म	२६३
चुम्बननिषेधः	२४९	स्वस्थवृत्तानुष्ठानस्य फलम्	२६४
धार्मिकगोष्टीद्वारा प्रचारः	"	ग्रन्थसमाप्तिकालः	"
त्रग्रद्वारारुधिरे कीटागु प्रवेशः	२४९	ग्रन्थकर्तुः परिचयः	२६५



Billwi Raj Sharma

30

🕸 श्री गणेशायनमः 🏶

स्वस्थवृत्तसमुच्चयः

विश्वेश्वरं सगिरिजं हृद्ये निधाय— नत्वा गुरोर्दुरितहारिपदारिवन्दम्। धर्मार्थकामंयुतमोत्तकमूलमूलम् -स्वस्थस्य वृत्तमिखलं खलु सन्चिनोमि॥

स्वस्थवृत्तस्वरूपम्

उत्थायोत्थाय सततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता। धीमता यद्नुष्ठेयं तद्स्मिन् सम्प्रवक्ष्यते।।

आरोग्यरोगयोः फलम्

धर्मार्थकाममोत्ताणामारोग्यं मृत्रमुत्तमम् रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥ (चरकः)

शरीररत्नणप्रयोजनम्

अतो रुग्भ्यस्तनुं रच्चेत्ररः कर्मविपाकवित्। धर्मार्थकाममोचाणां शरीरं साधनं यतः॥

[2]

न जन्तुः कश्चिद्मरः पृथिव्यां जायते क्वचित्। अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगान्निवारयेत्॥ (शार्क्षधरः)

> सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् । तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥ नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा । स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत् ॥ [च० सू० अ० ५]

स्वस्थलवणम्

समदोषः समाग्निश्च समधातुमठिक्रयः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ [सुश्रुतः]

स्वस्थरक्षणम्

स्वस्थस्य रत्तणं कार्यं भिषजा यह्नतः सदा। आयुर्वेदोदितं तस्मात्स्वस्थवृत्तं प्रचक्ष्यते॥

स्वास्थ्यविधानम्

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा । तमेव कारयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेष्सितम् ॥ दिनचर्या निशाचर्यामृतुचर्या यथोदिनाम् । आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ॥

[भा०प्र०]

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिद्ण्डवत् । किं छोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥ [च०] [3]

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिश्यातिमात्रकः। सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् ॥ रोगस्त दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता। निजागंतुविभागेन तत्र रोगा द्विधा समृताः। तेषां कायमनोभेदाद्धिष्ठानमपि द्विधा ॥ [वा०] निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्त्वभूतगुणेन्द्रियैः। चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यित हि क्रिया: ।। चि०] वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषाः समासतः। कर् विकृताऽविकृता देहं घ्नंति ते वर्तयंति च॥ ते व्यापिनोऽपि हन्नाभ्योरधोमध्योध्वसंश्रयाः। वयोऽहोरात्रिभुक्तांना तेंऽतमध्यादिगाः क्रमात् ॥ तैभवेद्विषमस्तीक्ष्णो मंद्श्चाग्निः समैः समः। कोष्ठः कूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि ॥ शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषिक्रमेः। तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ॥ समधातुः समस्तासु श्रेष्टा निंद्या द्विदोषजाः । [वा॰ सू॰] रुचः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः। 🗸 🥢 विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतः संप्रशाम्यति ॥ सस्नेह्मुणं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु। विपरीतगुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यात ॥ गुरुशीतमृदुस्तिग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः। इलेब्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुगाः ॥ [च०] र्जस्तमञ्ज मनसो द्रौ च दोषावुदाहतौ। [वा०] प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वी दैवयुक्तिञ्यपाश्रयैः। मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः॥ [च०] रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमञ्जाशुकाणि धातवः।

[8]

सप्त दृष्याः मला मूत्रशकृत्सेवदादयोऽपि च ॥
वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरोतैर्विपर्ययः ।
पूर्वो धातुः परं कुर्याद्वृद्धः त्तीणश्च तिद्धधम् ।
दोषा दुष्टा रसेधांत्न् दृष्यंत्युभये मलान् ॥
द्वे अधः सप्त शिरिस खानि स्वेद्मुखानि च ।
मलायनानि वाध्यन्ते दुष्टेमीत्राधिकैमीलैः ॥
रसाः स्वाद्धम्ललवणितकोषणकषायकाः ॥
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः ।
तत्राद्या मारुतं व्नंति त्रयस्तिक्ताद्यः कफम् ॥
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते । [वा॰]
त्रयोदोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ।
देहं संधारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैहिंतैः ॥ [सु॰]

तस्मादात्मवतानित्यमाहाराचारभेषजम् । धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ॥

[वृन्द्माधवः]

स्वस्थवृत्तानुष्ठानस्यावश्यकत्वम्

एवं विज्ञाय मितमान् स्वस्थवृत्तपरो भवेत्। आयुरारोग्यधर्मादि स्वास्थ्यादेव हि जायते॥

(दिनचर्या)

उत्थान समय: – तदनु शौचाचारश्च। त्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेजीर्णाजीर्णं निरूपयन्। रक्षार्थमायुषः स्वस्थो दंपेणेन विचन्नणः। मुखस्याळोकनं कुर्याजातवेगः समुत्सृजेत्॥ ष

उदङ्मुखो मूत्र * शक्रद् दक्षिणाभिमुखो निशा।
वाचं नियम्य प्रयतः संवीनाङ्गोऽवगुण्ठितः ॥
प्रवर्तयेत्प्रचितं नतु यत्नादुदीरयेत् ।
नाऽमेध्यमार्गमृद्भसमगोस्थानाकीर्णगोमये ।
पुरान्तिकाग्निवल्मीकरम्योत्कृष्टचितिद्रमे ॥
न नारीपूज्यगोऽर्केन्दुवाय्वन्नाग्निजलंप्रति ॥
न चातिरस्कृत्य महीं भयाशक्त्योग्तु कामतः ।
निःशल्यादुष्टमृतिण्डीपरिमृष्टमलायनः ॥
अभ्युद्धृताभिः शुचिभिरद्भिमृद्धिश्च योजयेत् ।
लेपगन्धावहं शौचमनुत्पतितविन्दुभिः ॥
(अष्टाङ्गसङ्ग्रह सू० अ० ३)

गुदादिमलमार्गाणांशौचंकान्तिवलप्रदम् । पाविज्यकरमायुष्यमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥ प्रज्ञालनं हि पाण्योश्च पादयोः शुद्धिकारणम् । मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं राक्षसापहृम् ॥ † (योगरत्नाकरः)

आचमनम्।

स्पृष्ट्वा धातून् मळान्श्रुवसाकेशनखांश्च्युतान् । स्नात्वा भोक्तुमना भुक्त्वा सुप्वाक्षुत्वा सुराचने ॥

* तिष्ठन्नमूत्रपुरीषे कुर्यात् (पा॰ गृ॰ सू॰)

उचारे मैथुने चैव प्रस्नावे दन्तधावने ।

श्राह्मे भोजन काले च षट्सु मौनं समाचरेत ॥ [हारीतः]

पे मेध्यं पवित्रमायुष्यमलद्मीकिलनाशनम् ।

पादयोर्मेल मार्गाणां शौचाधानमभीद्गाराः॥ [चरकः]

[६]

रथ्यामाक्रम्य काचामेदुपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राङ्मुखो वा विविक्तस्थो न विह्जानु नान्यहक्।।
अजल्पन्नुत्तरासङ्गी स्वच्छैरंगुष्टमूल्योः॥
नोद्धृतैर्नानतो नोर्ध्यं नाग्निपक्वैनं पृतिभिः॥
न फेनबुद्बुद्शारैनैंकहस्तापिं तैर्जलैः।
नाद्देंकपाणिर्नामेध्यहस्तपादो न शब्दवत्॥
(अ० सं०)

दन्तधावनम्

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम् ।
कानिष्ठिकापरीणाहमृज्वप्रन्थितमत्रणम् ।
अयुग्मप्रन्थि यच्चापि प्रत्यप्रं शस्तभूमिजम् ॥
आपोत्थिताप्रं द्वौ कालौ सायम्प्रातश्च दुद्धिमान् ।
भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यवाधयन् ॥
चि० सू० अ० ५]

अवेक्ष्यर्तुं च दोषं च रसं वीर्यं च सर्वदा ।
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं योजयेत्ररः ॥
निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये ‡बब्बुलस्तथा ।
मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥
[सु० चि० अ० २४]

श्रीत्राश्यापो द्विष्नमृज्य खानयद्भिः समुपस्पृशेत् ।
 अद्भिरतु प्रकृतिस्थाभिहींनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥
 (याज्ञवल्कस्मृतिः)

‡ खदिर इति पाठान्तरम्।

[0]

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासनाः । शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रमाः ॥ [च० सु० अ०५]

श्लौद्रव्योपत्रिवर्गाक्तं सते स्ते स्वे स्व च ।
चूर्णन ते जोवत्याश्च दन्ता क्रित्यं विशोधयेत् ॥
रास्नाते जोवतीधान्यशिदकुष्ठवचान्वितेः ।
रोचनाचन्द्रकं को स्त्रेश्चर्णं दन्ति विशोधनम् ॥
एकैकं घष्येद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन वा ।
दन्तशोधनचूर्णन दन्तमां सान्यवाधयन् ॥
तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु रस्टेष्माणं चापकर्षति ।
वैशद्य मन्नाभिक्षच सौमनस्यं करोति च ॥
[सु० चि० अ० २४]

अलाभेदन्तकाष्ठस्य निषिद्धःदिवसेषुच । अपाद्वादशगण्डूषेर्भुखशुद्धिर्विधीयते ॥ [च्लेमकुतृहलः]

निषिद्धदन्तकाष्ठानि

नैवरलेष्मातकारिष्टविभीतधवधन्वजान् । विल्ववञ्जुलनिर्गुण्डी शिप्नुतिल्वकतिन्दुकान् ॥ 🗸

वटासनार्कखदिरकरंजकरवीरजं,
 सर्जारिमेदापामार्गमालताककुमौद्भवम् । इत्यन्येद्रुमाः ।
 वाप्यत्रिवर्गत्रितमत्तौद्राक्तेन च घर्षयेत् । इतिवृद्धवाग्मटः ।
 दन्तान् पूर्वमयोवर्षेत् प्रातः सिञ्चेच लोचने ।
 तोयपूर्णमुखो ग्रीष्मशरदोः शीतवारिणा । [वृद्धवाग्मटः]

[6]

कोविदारशमीपीलुपिष्पलेड्गुद्गुग्गुॡ्वन् । पारिभद्रकमम्लीकामोचक्यौशाल्मलीशणम् ॥ स्वाद्वम्ललवणं * शुष्कं सुषिरं पृति पिच्छिलम् । पालाशमासनं दन्तधावनं पादुकं त्यजेत ॥ [वृद्धवाग्भटः]

दन्तधावनानहीः

न खादेद्गलताल्वोष्ठजिह्वारोगसमुद्भवे ।
अथास्यपाके स्वासे च कासिहकावमीषुच ॥
दुर्वलोऽजीर्णभक्तश्च मूच्छोर्तो मदपीडितः ।
हिरोहगार्तस्तृषितः, श्रान्तः पाकक्लमान्वितः ।
अदिती कर्णशूली च दन्तरोगी च मानवः ॥
[सु० चि० अ० २४]

ं जिह्वानिर्देखनम्

जिह्वानिर्छेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च । तन्मलापहरं वक्रं मृदुश्लक्ष्णं दशाङ्गुलम् ॥ [सुः चि० अ० २४]

जिह्वामूलगतं यच मलमुच्छ्वासरोधि च । सौगन्ध्यं भजते तेन तस्माजिह्वाँ विनिर्लिखेत् ॥ [च० सू० अ० ५]

स्नेहगण्डूषधारणम्

हन्बोर्डलं खरवलं वदनौपचयः परः। स्यात्परञ्च रसज्ञानमन्ने च रुचिरुत्तमा।।

* झारवृत्त्जमित्यर्थः -

[9]

न चास्य कण्ठशोषः स्यान्नोष्ठयोः स्फुटनाद्भयम् । न च दन्ताःक्षयं यान्ति दृढ्मूला भवन्ति च ॥ न ज्ञूल्यन्ते न चाम्छेन हृष्यन्ते भक्ष्यन्ति च । परानिष खरान् भक्ष्यान् स्नेहगण्डूषधारणात्॥ [च० सू० अ० ५]

शीताम्बुगण्डूषः

गण्डूषमथ कुर्वात शीतेन पयसा मुहुः। कफनुष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारकम्॥

मुखनेत्रप्रक्षालनम्

त्तीरिवृक्षकषायेवां क्षीरेण च विमिश्रितैः ।
भिल्लोदककषायेणतथ्यैवामलकस्य वा ॥
प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेनवा ।
नीलिकां मुखशोषं च पिडकां व्यङ्गमेव च ॥
रक्तपित्तकृतान् रोगान् सद्य एव विनाशयेत् ॥
कुर्याद्वापि कदुष्णेन पयसाऽऽस्य विशोधनम् ॥
कफवातहरं स्निग्धं मुखदोषविनाशनम् ॥
चि० कु०]

अरोचकास्यवैरस्यमलप्रतिप्रसेकजित्। सुखोदगोदकगण्डूषै जीयते वक्त्रलाघवम्।। [अ० सं०]

सुखं लघु निरीक्षेत नेत्रप्रक्षालनान्तरः। [सु० चि० अ० २४]

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः— कालत्रयेऽपि नयनद्वितियं जलेन। [90]

आसिब्चिति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि— रोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः॥ [राजमार्तण्डः]

अञ्जनम्

मतं स्रोतोऽखनं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम् ।
दाह्कण्डूमल्र्ध्नं च दृष्ट्रिकलेद्द्रजापहम् ।
अक्ष्णो रूपावहं चैत्र सहते मारुतातपो ।।
पक्ष्मलं विशदं कान्तममलोज्बलमण्डलम् ।
नेत्रमञ्जनसंयोगाद्भवेद्यामलतारकम् ।।
नेत्ररोगहरं तस्माद्रात्रावञ्जनमाचरेत् ।
ततः रलेष्महरं कम्मं हितं दृष्टः प्रसादनम् ॥
[सु० चि० अ० २४]

यथाहि कनकादीनां मणीनां विविधात्मनाम् । धौतानां निर्मला शुद्धिः तैलचैलकचादिभिः ॥ एवं नेत्रेषु मर्यानामञ्जनाश्च्योतनादिभिः । दृष्टिनिराकुलाभाति निर्मले नभसीन्दुवत् ॥ [च०सू०अ०५]

अञ्जनानर्हाः

भुक्तवान शिरसा स्नातः श्रान्तश्चर्दननावनैः । रात्रौ जागरितश्चापि नाञ्च्याञ्ज्वरित एवच ॥ [सु० चि० अ० २४]

नस्यम् -

प्रतिमर्श्य नस्यार्थं करोति न च दोषवान्। नस्तः स्नेहाङ्गलिं द्यात्प्रातर्निशि च सर्वदाः॥

[88]

नचोत्सिङ्घेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ह्यकृत्। [च० सि०]

आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु वस्तिवत् ॥
तैलमेव च नस्यार्थे नित्याभ्यासेन शस्यते ।
शिरसः श्लेष्मधामत्वात्स्नेहाः स्वस्थस्य नेतरे ॥
वा० सू० अ० २०]

नस्यकर्म यथाकालं यो यथोक्तं निषेवते।
न तस्य चक्ष्नं प्राणं नश्रोत्रमुपहन्यते॥
न स्युः श्वेता न कपिलाः केशाः श्मश्रृणि वा पुनः।
न च केशाःप्रलुप्यन्ते वर्धन्ते च विशेषतः॥
मन्यास्तम्भः शिरःशृलमर्दितं हनुसङ्ग्रहः।
पीनसाधावभेदीच शिरःकम्पश्च शाम्यति॥
शिराः शिरःकपालानां सन्धयः स्नायुकण्डराः।
नावनप्रीणिताश्चास्य लभन्तेऽभ्यधिकं वलम्॥
मुखं प्रसन्नोपचितं स्वरः स्निग्धः स्थिरो महान्।
सर्वेन्द्रियाणां वैमल्यं बलं भवति चाधिकम्॥
न चास्य रोगाः सहसा प्रभवन्त्यूर्ध्वज्ञत्रुजाः।
जीर्यतश्चोत्तमाङ्गे च जरा न लभते वलम्॥
च॰ सू० अ० ५

धूमपानम्-

हरेगुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्। ह्वीवेरं चन्दनं पत्रं त्वनेलोशीरपद्मकम्।। ध्यामकं मधुकं मांसीगुग्गुल्वगुरुशकरम्। न्यप्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लज्ञलोध्रत्वचः शुभाः॥

[१२]

वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले। श्रीवेष्टकं शहकीं च शुकवईमथापि च॥ पिष्ट्वालिम्पेच्छरेषीकांतां वर्तिं यवसन्निभाम्। अङ्गुष्टमम्मितां कुर्याद्ष्टाङ्गुलसमां भिषक् ॥ शुष्कां विगर्भा तां वर्तिं धूमनेत्रार्पितां नरः। स्तेहाक्तामग्रिसम्प्लुष्टां पिवेत्पायोगिकीं सुखाम् ॥ गौरवं शिरसः शूलं पीनसार्धावभेदकौ। कर्णाचिशूलं कासश्च हिक्काइवासौ गलप्रहः ।। द्न्तदौर्वल्यमास्रावः स्रोतोघाणाचिदोषजः। पूर्तिर्घाणास्यगन्धश्च दन्तशूलमरोचकः॥ हनुमन्याप्रहः कण्डू. क्रिमयः पाण्डुता मुखे। ऋहमप्रसेको वैस्वर्यं गलशुण्ड्युपजिह्निका ।। खालित्यं पिञ्जरत्वं च केशानां पतनं तथा। ज्ञवशुरचातितन्द्रा च बुद्धेर्मीहोतिनिद्रता।। धूमपानात्प्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम्। शिरोरुहकपालानामिन्द्रियाणां स्वरस्य च।। न च वातकफात्मानो बलिनोप्यूर्ध्वजत्रु जाः। धूमवक्त्रक पानस्य त्याधयः स्युः शिरोगताः ॥ प्रयोगपाने तस्याष्टी कालाः सम्परिकीर्तिताः। वातश्लेष्मसमुरक्केशः कालेष्वेषुहि लक्ष्यते।। स्नात्वा भुक्त्वा समुङ्ख्यि अत्वा दन्तान् विघृष्य च। नावनाञ्जननिद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत्॥ तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्वजत्रुजाः। रोगास्तस्य तु पेयाः स्युरापानास्त्रस्रयस्रयः ॥ परं द्विकालपायी स्यादहः कालेषुबुद्धिमान्। हत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धि र्रुघुत्वं शिरसः शमः।

[१३]

यथेरितानां दोषाणां सम्यक्पीतस्य छत्तणम् ॥ वाधिर्यमान्ध्यमुकत्वं रक्तपित्त शिरोभ्रमम्। अकाले चातिपीतरच धूमः कुर्योदुपद्रवान् ॥ तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम्। रनेहिकं, धूमजे दोषे वायः पित्तानुगो यदि ॥ शीतं तु रक्तिपत्ते म्याच्छ्लेष्मिपत्ते विरूत्गाम्। परन्त्वतः प्रवक्ष्यामि धूमो येषां विगर्हितः॥ न विरिक्तः पिवेद्धूमं, न कृते वस्तिकर्माण । न रक्ती न विषेणार्ती न शोची न च गर्भिणी ॥ न श्रमे न सदे नामे न पित्ते न प्रजागरे। न मूच्छाभ्रमतृष्णासु न ज्ञीणे नापि चज्ञते ॥ न मद्यदुग्धे पीत्वाच न स्नेहं न च माचिकम्। धुमं न भुक्तवा दहना, च न रूक्षः कुद्ध एवच ॥ न तालुशोषे तिमिरे शिरस्यभिहते न च। न शङ खके न रोहिण्यां न मेहे न मदात्यये ॥ एष धूममकालेषु मोहात्पिवतियो नरः। रोगास्तस्य प्रवर्धन्ते दारुणा धूमविभ्रमात्॥ धूमयोग्यः पिबेद्दोषे शिरोघाणाक्षिसंश्रये। ब्राणेनास्येन कण्ठस्थे, मुखेन ब्राणपो वमेत्।। आस्येन धूमकवलान् पिवन् ब्राणेन नोद्वमेत्। प्रतिलोमंगतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी॥ ऋज्वङ गचक्ष्रसाचेताः सूपविष्टिश्चि गर्ययम् । पिबेच्छिद्रं पिधायैकं नासया धुममात्मवान् ॥ ऋजुत्रिकोषाफलितं कोलास्थ्ययप्रमाणितम्। वस्तिनेत्रसमद्रव्यं धमनेत्रं प्रशस्यते॥ दूराद्विनिर्गतः पर्वच्छिन्नोनाडीतन्कृतः ।

88

नेन्द्रियं वाधते धूमो मात्राकालनिषेवितः।। यदा चोररच कण्ठश्च शिरश्च लघुतां व्रजेत । कफश्च तनुतां प्राप्तः सुपीतं धूममादिशेत् ।। अविशुद्धः स्वरो यस्य कण्ठश्च सकको भवेत्। स्तिमितो मस्तकश्चैवमपीतं धूममादिशेत्।। तालु मूर्घाच कण्ठश्च शुष्यते परितप्यते । तृष्यते मुह्यते जन्तू रक्तं च स्रवतेऽधिकम्।। शिररच भ्रमतेऽत्यर्थं मूच्छी चास्योपजायते । इन्द्रियाण्युपतप्यन्ते भूमेऽत्यर्थं निषेविते ॥ चि० सू० अ० ५

व्यायामः

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था वलवर्धिनी। देह व्यायामसंख्याता मात्रयातां समाचरेत्॥ चिरकः

श्ररीरायासजनकं कर्म व्यायामसंज्ञितम्। तत् कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात् समन्ततः।। शरीरोपचयः कान्तिगित्राणां सुविभक्तता । दीप्रामित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा।। श्रमक्रमिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता। आरोग्यञ्चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥ न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षणम् न चव्यायामिनं मर्त्यं मर्द्यन्त्यर्यो भयात् ॥ न चैवं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति। स्थिरीभवति मांसञ्ज व्यायामाभिरतस्य च ॥

[१५]

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भयामुद्धर्तितस्य च । व्याधयो नोपसपिन्त सिंहं जुद्रमृगा इव ॥ । वयोक्ष्पगुणहींनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् । व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपिभोजनम् ॥ विद्रम्यमविद्रम्यं वा निर्दोपं परिपच्यते । व्यायामो हि सदा पथ्यो विकांक्षिरम्यभोजिनाम् । सर्च शीते वसन्तेच तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥ सर्वेष्ण्यतुष्वहरहः पुम्भिरात्महितैपिभिः । वलस्याद्धेन कर्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा ॥ हृद्स्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते । व्यायामं कुर्वतो जन्तोः तद्वलार्धस्य लक्षणम् ॥ कक्षाललाटनासासु हस्तपादादिसन्धिषु । प्रस्वेदान्मुखशोषाच वलार्थतद्धि निर्दिशेत् ॥

चङ्क्रमणम्

यत्तु चङ्क्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत्। तदायुर्वलमेधाप्रिप्रदमिन्द्रियवोधनम्।। अत्यध्वा विपरोतोऽस्माज्जरादौर्वल्यकृच सः। [सु० चि० अ० २४]

व्यायामदोषाः

वयोवल्हारीराणि देशकालाशनानिच । समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् ॥ व्यायामहास्यभाष्याध्वय्राम्यधर्मप्रजागरान् । नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥

[१६]

एतानेवं विधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते । गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति ॥ [च० सू० अ० ७]

त्त्रयतृष्णाऽरुचिइछर्दिरक्तिपत्तश्रमकृमाः । कासशोपज्वरश्वासा अति व्यायामसम्भवाः ॥

व्यायामानहीः

रक्तिपत्ती कृशः शोषी श्वासकासत्ततातुरः। भुक्तवान् स्त्रीषुच श्लीणो भ्रमार्तश्च विवर्जयेत्।। [सु० चि० अ० २४]

द्यीरकर्म

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचि रूपविराजनम्। केशश्मश्रुनखादीनां कल्पनं सम्प्रसाधनम्॥ [च०सू०अ०५]

त्रिःपक्षस्य कचश्मश्रु नखरोमाणि कर्नयेत्। न स्वह्स्तेन दन्तैर्वा स्नानं चानु समाचरेत्॥

[वृद्धवाग्भटः]

सापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम् । हर्षळाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम् ॥ [सु० चि० अ० २४]

अभ्यङ्गः

अथ जातात्रपानेच्छो माहतव्नैः सुगन्धिभः । यथर्तुसंस्पर्शसुर्वेस्तैलैरभ्यङ्गमाचरेन् ॥ [वृद्धवाग्भटः]

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सजराश्रमवातहा । दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्रसुत्वक्त्वदाहर्यकृत ॥

[26]

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। (वा० सू० अ०२)

सार्पपं गन्धतैलञ्च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ (स्मृतिचन्द्रिका)

स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा कुम्भश्चर्म स्नेह्विमर्द्नात् ॥
भवत्युपाङ्गाद्चश्च हढः क्लेशसहो यथा ।
तथा शरीरमभ्यङ्गाद् हढं सुत्वक् प्रजायते ॥
प्रशान्तमाहतावाधं क्लेशव्यायामसंसहम् ।
स्पर्शने चाधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम् ॥
त्वच्यश्च परमोऽभ्यङ्गस्तस्मात्तं शीलयेत्ररः ।
न चाभिघाताभिहतं गात्रमभ्यङ्गसेविनः ॥
विकारं भजतेऽत्यर्थं वलकर्मणिवा क्वचित् ।
सुस्पर्शीपचिताङ्गश्च वलवान् प्रियदर्शनः ।
भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पजरएव च ॥
(च०स० अ०५)

शिरोऽभ्यङ्गगुणाः

नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते । न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्तिच ॥ वलं शिरःकपालानां विशेषेणाभिवर्धते । दृढ्मूलाश्च दीर्घाश्च कृष्णाः केशा भवन्ति च ॥ इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम् । निद्रालाभैः सुखं चस्यान्मू ध्नितैल्किकिनिषेवणात् ॥

> टि० * - शिरोऽभ्यङ्गार्थं तैलम्-मधुकं चीरशुक्लां च सरलं देवदारुच।

[26]

कर्णाभ्यङ्गगुणाः

न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याह्नुसङ्ग्रहः। नोचेः श्रुतिनेवाधियं स्यान्नित्यं कर्णतपं णात्।। (च० सू० अ०५)

पादाभ्यङ्गगुणाः

खरत्वं शुष्कता रौक्ष्यं श्रमः सुप्तिश्च पाइयोः।
सद्य एवोपशाम्यन्ति पादाभ्यङ्गनिषवणात्।।
जायते सौकुमार्यं च वलं स्थैर्यं च पादयोः।
दृष्टिः प्रसादं लभते मारुतश्चोपशाम्यति।।
न स्युर्गृत्रसीवाताः पादयोः स्फुटनंनच।
न शिरास्त्रायुसङ्कोचः पादाभ्यङ्गने षाद्योः॥
निद्राकरो देहसुखः पादाभ्यङ्गः सदाहितः।
(चः सू० अ० ५

केश्या

केशप्रसाधिनी केश्या रजोजन्तुमलापहा। स्नेहसेकगुणाः

सेकः श्रमध्नोऽनिल्हद्भग्नसन्धिप्रसाधकः। क्षताग्निद्ग्धाभिहतविघृष्टानां रुजापहः॥

चुद्रकं पञ्चनामानं समभागानि संहरेत् ॥
तेषां कल्ककषायाभ्यां चक्रतेलं विपाचयेत् ।
सदैव शीतलं जन्तोर्मूर्ध्नि तैलं प्रदापयेत् ॥
यथालामं गन्धद्रव्यकल्के भृङ्गरसे तथा ।
धात्रीरसे च संसिद्धं तैलं केशहितं परम् ॥
(स० चि• ग्र० २४)

[39]

जलसिक्तस्य वर्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः। तथा धातुविवृद्धिहिं स्नेहिसक्तस्य जायते॥

स्नेहावगाहनगुणाः

शिरामुखे रोमकृपैर्धमनीभिश्च तर्पयन्। शरीरवलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ।। तत्र प्रकृतिसात्म्यतुदेशदोषविकारवित्। तैलं घृतं वा मतिमान् युञ्ज्याद्भ्यङ्गसेकयोः॥ केवलं सामदोषेषु न कथंचन योजयेत्।

अभ्यङ्गानहीः

तरुणज्वर्यजीणींच नाभ्यक्तव्यौ कथञ्चन। तथा विरिक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः॥ पूर्वयोः कुच्छुता व्याधेरसाध्यत्वमथापिवा। शेषाणां तद्हः प्रोक्ता अग्निमान्द्याद्यों गदाः ॥ सन्तर्पणसमुत्थानां रोगाणां नैव कारयेत्।

शरीरपरिमार्जनानि®

दौर्गन्ध्यं गौरवं तन्द्रां कण्डं मलमरोचकम्। म्बेदं वीभत्सतां हन्ति शरीरपरिमार्जनम्।। वातहरं कफमेदोविलापनम्। स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्ष्रसादकरं परम्।।

*—शरीरपरिमार्जकत्वादुद्वर्तनादीनि शरीरपरिमार्जनशब्देनैव गृहीतानि।

[20]

शिरामुखविविक्तत्वं त्ववस्थस्याग्नेश्च तेजनम् । उद्घर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम् ॥ उत्सादनाद् भवेत्स्त्रीणां विशेषात्कान्तिमद्वपुः । प्रहर्षसौभाग्यमृजालाचवादिगुणान्वितम् ॥ उद्घर्षणन्तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम् । देहस्य जनयत्याशु फेनकः स्थैर्यलाचवे ॥ कण्डूकोठानिलस्तम्भमलरोगापहश्च सः । तेजनं त्वग्गतस्याग्नेः शिरामुखविवेचनम् ॥

[सु॰ चि॰ अ॰ २४]

स्नानम्

स्नानं दाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्।।
तन्द्रापापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्ववर्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि मतमग्नेश्च दीपनम्।।
[सु॰ चि॰ अ॰ २४]

बाह्यैश्च सेकैः शीताद्येह्न्हमान्तर्यातिपीडितः। नरस्य स्नातमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः॥ [भा०प्र०]

प्रातःस्नानगुणाः

प्रातः स्नानमलंच पापहरणं दुःखानविध्वंसनम्। शौचस्यायतनं मलाप शहरणं संवर्धनं तेजसाम्।।

*— ऋद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ! विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धि र्ज्ञानेन शुध्यति ॥

[मनुः]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangori क्रिंग्या प्राचीतकरं शरीरसुखदं कामाग्निसंदीपनम्। क्षिणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः॥

स्नानभूमिः

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च। स्नानं समाचरेत्रित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥

[मनुः]

यो० र०।

शीतोष्णभेदेन स्नानगुणाः

शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत्। अशिरस्कं तदुष्णेन* वल्यं वातकफापहम्।।

उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा। शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशेत्।। श्लेष्ममानतकोपे तु ज्ञात्वा व्याधिवलावलम्। काममुष्णं शिरःस्नानं भैषज्यार्थं समाचरेत्॥ अतिशीताम्बु‡ शीते च श्लेष्ममान्नतकोपनम्।

*--६५ शतांशतोऽधिकोष्णता न स्यात्।

‡—शिरित तथाऽङ्गेषु तैलमभ्यज्य शीतोदकस्नानेन शैत्याधिकयं हानिकरं न भवति । तथा स्पर्शजा रोगा न जायन्ते । वल वत्स्वस्थेभ्यः समुद्रोदकस्नानं विशेषहितकरं नतु दुर्वलेभ्यो रोगिभ्यश्च । सलवणंसमुद्रोदकं स्वस्थाङ्गेषु वलमादधाति । भोजनात्पाक् पश्चाच्यसमुद्रजलस्नानमहितकरम् । शिशुभ्यः प्रतिदिनं स्नानार्थं शीतोदकमहितकरं किन्तुत्रिवर्षवयस्कतः स्वापयितुंशक्यते । शिशुभ्यस्तु आर्द्रवस्त्रोणाङ्गपरिमार्जनमेव-कार्यम् । अत्युष्णप्रदेशे तु स्नानं कार्यत एव ।

पाड्य-पुस्तक-विभाग

CC-0. Gulukul Kangri Collection, मुक्कुस कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२२]

अत्युष्णमुष्णकाले च पित्तशोणितवर्धनम् ॥ [सु० चि० अ० २४]

स्नाननिषेधः

तचातिसारज्वरितकर्णशूळानिलार्तिषु । आध्मानारोचकाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥

[सु॰]

"स्नानमर्दितनेत्रास्यरोगे वर्ज्यं हि पीनसे"
नाऽनाष्ठ्रत्य शिरः स्नायात्र जलेऽल्पं न शीतले ।
स्नानोदकावतरणस्वप्नान् नम्रो न चाचरेत् ॥
नात्मानमीक्षेत जले न तटस्थो जलाशयम् ।
न प्रतिस्फालयेदम्बु पाणिना चरणेन वा ॥
स्नात्वा न मृज्याद्मात्राणि धुनुयात्र शिरोस्हान् ।
निवसीतार्द्र एवाशु सोष्णीषे धौतवाससी ॥

[अ०सं०]

न त्वम्बरं पूर्वधृतं न च तैलवसे स्पृशेत्। न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि। न वासोभिः सहाजस्रं नाऽविज्ञाते जलाशये।। [मनु० अ०४]

अशक्तौ स्नानविधिः

अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणम्। आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः॥ [जावाल स्मृतिः]

[२३]

वस्त्रेण तनुमर्दनम्

स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेण तनुमर्दनम् । कान्तिप्रदं रारीरस्य कण्डुत्वग्दोपनारानम् ॥

वस्त्रधारणम्

काम्यं यशस्यमायुष्यमछक्ष्मीव्नं प्रहर्षेणम्। श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मछाम्बर्धारणम्॥

[च० सू० अ० ५]

वासोऽन्यदन्यच्छयने निर्गमे देवतार्चने।

[वृद्धवाग्भटः]

शीतकालेतु कौशेयं काशायं घर्मवासरे।
वर्षासु श्वेतवस्तं स्यादेवं वस्त्राणि धारयेत्।।
वस्तं कौशेयमौर्णवा रक्तं चित्रं तथैव च।
वातश्रुं प्रमहरं नृणां शीतकाले प्रधारयेत्।।
मेध्यं सुशीतं पित्तन्नं काषायं * वस्त्रमुच्यते।
तद्धारयेद्धर्मकाले काषायं वस्त्रमृत्तमम्।।
गुभ्रञ्च सुखदं वस्तं शीत।तपनिवारणम्।
न चोष्णं न च वा शीतं शुक्तं वस्तं च धारयेत्।।

[च्रेमकुतूहलः]

वस्त्रनिषेधः

कदापि न जनैः सद्भिर्धार्थं मिलनमम्बरम्। तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम्॥ [भावमिश्रः]

कुसुम्भपुष्पादिकषायेग् रक्तं वस्त्रं काषायमुच्यते ।

[58]

वासो न धारयेज्जीण मिल्रनं रक्तमुल्वणम्। नैव चान्येन विधृतं वस्नं पुष्पमुपानहो।। [अ०सं०]

उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेवच।

वस्त्राणां शुद्धचशुद्धिविवेकः

सोखेरदकगोमूत्रैः गुद्ध-यत्याविककौशिकम्। सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा॥ [या० व०]

उर्णाकौशेयकुतपपट्टचौमदुकूलजाः।
अल्पाशौचा भवन्त्येते शोषणप्रोच्चणादिभिः।।
तान्येवामेध्ययुक्तानि क्षालयेच्छोधनैः स्वकैः।
तूलकामुपधानम्ञ पुष्परक्ताम्बरं तथा।।
शोषयित्वाऽऽतपे किञ्चित्करैः सम्मार्जयेन्मुहुः।
पश्चाच वारिणा प्रोक्ष्य विनियुज्जीत कर्मणि॥
तान्यप्यतिमलिष्ठानि यथावत्परिशोधयेत्।
[देवलः]

उष्णिग्धारणगुणाः

वाणवारंमृजावर्णतेजोबछिववर्धनम्।
पितर्त्रं केष्यमुष्णीषं वातातपरजोपहम्।।
[सु० चि० अ० २४]

अनुलेपनम्

स्वेददौर्गन्ध्यवैवर्ण्य श्रमध्नमनुलेपनम् । स्नानं येषां निषिद्धं तु तेषामप्यनुलेपनम् ॥ [सु० चि० अ० २४]

[२५]

मुखालेपाद् दृढं चक्षुः पीनगण्डं तथाननम्। अन्यङ्गिदकं कान्तं भवत्यम्युजसिन्नभम्।। कुङकुमं चन्दनं चैव कृष्णागुरुविमिश्रितम्। उष्णभाविमदंश्रेष्ठं शांतकाले तु शोभनम्।। चन्दनं चाम्युना युक्तं कपूरेण विमिश्रितम्। सुगन्धञ्च सुशीतञ्च घमकाले सुशोभनम्।। चन्दनं पुसृगोपेतं मृगनाभिसमायुतम्। न चोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले प्रशस्यते।।

गन्धमाल्यनिषेवणम्

वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिवलप्रदम्। सौमनस्यमलक्ष्मीद्मं गन्धमाल्यनिषेवणम्॥

निषिद्धमाल्यम्

माल्यं न लम्बं न वहिर्न रक्तं जलजाहते। नैव चान्येन विधृतं म्लानं वा धारयेद्वुधः॥ (अ० सं०)

रत्नाभरणधारणम्

धन्यं मङ्गल्यमायुष्यं श्रीमद्त्र्यसनसूद्नम् । हर्षणं काम्यमोजस्यं रत्नाभरणधारणम् ॥

पुष्पादिधारणसामान्यगुणाः

रज्ञान्नमथ चौजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम्। सुमनोम्बररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्॥ (सु० चि० अ० २४)

[२६]

सन्ध्योपासनम्

प्राणायामं प्रकुर्वात सूर्योपासनमेवच ।
गायत्रीं च जपेत्पश्चादिष्टदेवस्य चार्चनम् ॥
"न जातु रोगा जायन्ते फौफुसा भीमसम्मताः
दीर्घञ्चायुर्भवत्येव प्राणायाम* परस्य वै ।"
पूर्वी संध्यांजपंस्तिष्ठेत्स्वकाळे चापरां चिरम् ।
देवगोत्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धान् सदार्चयेत्॥ (वृन्दमाधवः)
प्रश्चा दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥
(मनुस्मृतिः)

प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेद्वित्तमाः । ज्ञान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकाय कारिणः ॥ (मनुः अ ० ५

पादुकाधारणम्

पादुकाधारणं कुर्यातपूर्व भोजनतः परम्। पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चायुषो हितम्।।

पादत्रधारणम्

पाद्रोगहरं वृष्यं रजोध्नं प्रीतिवर्धनम्।
सुखप्रचारमौजस्य सदा पाद्त्रधारणम्।।
अनारोग्यमनामुष्यं चक्ष्रषोरुपघातकृत्।
पाद्।भ्यामनुपानद्भ्यां सदा चङक्रमणं नृणाम्।।
(सु० चि० अ० २४)

टि०% -योग्यगुरुपदिष्ट प्राणायायो ज्ञातव्यः।

[२७]

छत्रधारणम्

ईते: प्रशमनं वल्यं गुप्त्यावरणसङ्करम्। यमानिखरजोऽम्बुब्नं छत्रधारणमुच्यते॥ वि० स्० अ० ५]

दण्डधारणम्

स्वलतः सम्प्रतिष्ठानं शत्रणां च निष्दनम् । अवष्टम्भनमायुष्यं भयद्मं दृण्डधारणम् ॥ [च० सू० अ० ५]

उपस्तम्भाः

त्रय उपस्तम्भा आहारः, स्वप्नो, त्रह्मचर्यमिति । एभिस्त्रिभियुक्तियुक्तैरुपस्तव्धमुपस्तम्भेः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुः संस्कारात् , संस्कारमहितमनुपसेवमानस्य । (च० स् अ०११)

तत्र आहारः

आहारो नाम यदन्नमार्गद्वारा शरीरस्यान्तराह्नियते । तत्र च स परिवर्तितः शरीरावयवान् परिपोषयति सुरत्तति तत्क्षतीः प्रपूरयति शरीरशक्तिं परिवर्धयति जीवयति च ।

भोज्यद्रव्यविषये नास्ति कश्चिन्नियतो नियमः यतः प्रत्ये-केषां मनुष्याणां भोजनं देशजातिवयःप्रकृत्यनुसारेण विविधं

* खाद्यद्रवयाणां रासाय नक विश्लेषणम् -खाद्यपदार्थानां त्रयो विभागाः सन्ति [१] सेन्द्रियम् [२] तिरिन्द्रियम् [३] उपसेचनञ्चेति । तेषु सेन्द्रियस्य । द्वौभेदौः स्तः [१] सनत्रजनम् [२] अनत्रांजनञ्चेति । सनत्र-

रे जत्रजनम् Nitrogen

[26]

भवति । यथा योरोपीया मांसाहारिणो भवन्ति । भारतीयाः प्रायोऽन्नशाकाहारिणश्च । परन्तु शीतदेशवासिनां भोजने स्निग्ध वस्तून्याधिकयेनावश्यकानि भवन्ति । प्रायः कतिपयजना एवं शङ्कन्ते यन्मांसाहारिणः शाकाद्याहारिजनापेच्चया बलवत्तरा दृढ्तराश्च भवन्ति । एतःकारणाच्चेव तदुपरि विजयिनो भवन्ति । परन्त्वेतन्निर्मूळं, नास्यत्रमांसभक्षणं हेतुः । यत इति सिद्धमेव यदेकजातिर्विद्याबुद्धिसाहाय्येनेव द्वियीय जात्युपरि विजयं प्राप्नोति केवलेन शारीरबलेनेव नालं भवति ।

विद्याबुद्धितीव्रता तु मस्तिष्ककार्यस्य शुद्धरीत्या भवनेन,
शुद्धरीत्या मस्तिष्ककार्यभवनम्न स्वास्थ्योपरिनिर्भरम्।
स्वास्थ्यञ्च तदाऽनुवर्तते यदा श्रेष्ठभोजनं यथोचितमात्रं मांसादिक
शाकादिकं वा स्वदेशजात्यादिरोत्यनुसारं नित्यं छभ्येत।
कतिपयदिवसपर्यन्तं यथोचितपरिमाणं भोजनं न प्राप्येत चेद्
यथा दुर्भिच्ते दृश्यते, तर्हि तदानीं पाचनशक्तियन्त्राणां कार्यराहित्येन
तद्दौर्यत्यादये भोजनलाभेऽपि तन्न पक्तु शक्यते। तथा शनैः
शानैर्मृत्युरपि प्राप्यते। अतो भोजनविषये सर्वाषां सर्वादा
ध्यानरक्षणमत्यावश्यकम्।

टिप्पणी

जने यथा प्रतनकः [प्रोटीन], अनत्रजने यथा [क] वसा [ख] कर्बोजः [श्वेतसारः शर्करा च] [ग] जीवनीयम् (Vitamine) [घ] वानस्पतिकाम्लम् इति।

निरिन्द्रिये तु खनिजलवणानां जलस्यच गणना क्रियते। उपसेचने तु बेसवारावलेहमद्यचायादीनां प्रहणं भवति। तद्वम्भूतेष खाद्यद्रव्येषु मुख्यतः पञ्चैववस्तूनि भवन्ति प्रतनक-

¹ Proteins 2 Fats 3 Carbohydrates 4 Starch

[29]

आहारस्य सामान्यगुणाः

आहारः प्रीणनः मद्यो वलकृद् देहभारकः। आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः॥ [सु० चि० अ० २४]

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति ।
वर्णःप्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम् ॥
तुष्टिः पुष्टिवंछं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्टितम् ।
लौकिकं कर्म यद्वतौ स्वर्गतौ यच्च वैदिकम् ॥
कर्मापवर्गे यच्चोक्तं तचाप्यन्ने प्रतिष्टितम् ।
हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराप्तिं समाहितः ॥
अन्नपानसमिद्भिर्ना मात्राकालौविचारयन् ।
आहिताग्निः सदा पथ्यान्यन्तराग्नौ जुहोति यः ॥
दिवसे दिवसे त्रह्म जपत्यथ ददातिच ।
नरंनिःश्रेयसे युक्तं सात्म्यज्ञं पानभोजने ॥
भजन्ते नामयाः केचिद् भाविनोऽप्यन्तराहते ।
षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः ॥
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा सम्मतः सताम् ।
च० स्० अ० २७ वि

ि वर्र सूर अर

हिपाणी

वसाकर्वोजलयगाजलानीति । जीवनीयन्त्वत्यल्पमात्रं भवति । क्व-चिद्द्रव्ये विशेषेणोपलभ्यते । एवं वानस्पतिकाम्लमपि न सर्वत्र किन्तु क्वचित्फलेषुपलभ्यते ।

किंसिश्चित्वाद्यद्रव्ये प्रतनकः, किंसिश्चिद्धसा, किंसिश्चित्कर्वोजः, किच्जलं, क्विचल्लवण्ञ्चाधिक्येन भवति । यद्यपि प्रत्येकभोजने न्यूनाधिकतया सम्पूर्णभागा भवन्ति । तथापि योधिकोभवति [30]

भोजनकालः

सायं प्रातमंनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तरः भोजनं कुर्योदग्निहोत्रसमो विधिः।।
विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघो।
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वातुऽनुसरित।।
तथात्रश्रद्धायां शुदुपगमने कुक्षो च शिथिले।
प्रदेयस्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥
[सु० उ० अ० ६४]

क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽत्रकाल उदाहतः ॥

टिप्पणी

200

तन्नाम्ना तद्द्रव्यं निर्दिश्यते । एत एव सर्वे पदार्थाः शरीरनिर्मापका अत एवम्भूतखाद्येन शरीरस्य वृद्धिः पोषण्डच भवति । तदेव श्रेष्ठ भोजनं मन्यते यच्छरीरचति प्रपूरयेत् । प्रतनकः—प्रतनके नत्रजनः १६, कर्वनः ५४, ओषजनः २२, उद्जनः ७, गन्धकः १ इति भागाः भवन्ति । स्फुरोऽपि लेशमात्रो भवति । क्वचित्स्फुरस्यांशोऽ-धिकोऽपि भवति ।

अयं वानस्पतिकजान्तवेषूभयप्रकारसाद्येषूपलभ्यते । जान्तव-प्रतनकस्यात्मीकरणं सत्वरं भगति । परन्त्वेतद्विपरिणामेन ये पदार्था उत्पद्यन्ते ते शरीरात्सरलत्या वहिर्न निर्गच्छन्ति किन्तु शर्रारे एकत्रीभूय नानाप्रकारविषात्मिकाः धातुदोषजन्याश्चावस्था उत्पाद्यन्ति । यथा आमवातोयकृद्वृक्कविकाराश्चेति । परन्तु वानस्पतिकप्रतनके नैवं भवति ।

प्रतनकः शरीरावयवनिर्माणेऽत्यावश्यकः । मांसं प्रतनके-

[3?]

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः । छघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य छज्ञणम् ॥ [यो० र०]

अर्घरात्रेऽपि भुञ्जानः परमार्थं वुभुज्ञितः। श्रुधी वैद्यपरित्यागी व्याधिभिर्नाविभूयते॥ [वृन्दमाधवः]

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्। याममध्ये * रसोद्वेगो युग्मेऽतीते वलज्ञयः।। [क्षे० कु०]

टिप्पणी

नैव निर्मीयते। यसिम्नाहारे प्रतनको न्यूनो भवति तद्भोजिनो निर्वला एव सदा भवन्ति। तेषां पेश्यः तनव्योनिर्वलाश्च भवन्ति। अयंशक्तिं वर्धयति। मस्तिष्कवैभवजीविनामध्यापकवैद्यादीनां विद्यार्थिनाञ्चात्युपयोगी। अनेनैवशारीराः पाचकरसाः निर्मीयन्ते। कार्योधिक्योत्पन्नं हासं प्रपूरयति। सम्यगोषज्ञनं सङ्गृह्यश्ररीरकार्ये प्रवर्तयति। अतः प्रतनको भोजनेऽवश्यं भवेत् विशेषतः वर्धनकाले [पञ्चविंशति वषवयः पर्यन्तम्]। अन्यथा सम्यग्वर्धनं न भवति। गर्भवतीप्रसूताभ्यः च्रयरोगिभ्योऽन्यक्रच्छरोगिभ्यश्च साधारणपरिमाणतोऽधिकः प्रतनको देयः। युवकानां भोजने ४५—५० माषकभयो न्यूनः प्रतनको न भवेत्। प्रतनकस्य कार्यं वसा कर्वोजश्च न कर्तुशक्तुतः। किन्तु तथोरभावे प्रतनकः कार्यं करोति कदाचित्। या जातयः प्रतनकमपर्याप्तं सेवन्ते ताः दुर्वला भवन्ति।

[#] अरसोत्पत्तिरिति भावप्रकाशे।

[३२] अतीवायतयामास्तु जपा येष्ट्रतुषु स्मृताः। तेपुतत्प्रत्यनीकाढ्यंभुञ्जीत शातरेव तु।। येषु चापि भवेयुश्च दिवसा भृशमायताः। तेषु तत्कालविहितमपराह्वे प्रशस्यते।। रजन्योद्वसार्चैव येषु चापि समाः स्मृताः।

टिप्पगी

सचिवशेषेण मांसे कुक्कुटाण्डे चीरे सूपे गोध्मवातामाक्षोटकादौ-चोपलभ्यते।

वसाकर्वोजौ - इमाविप प्रतनकवदावश्यकौ । शरीर शक्ति-वृद्धचर्थमुष्णतावृद्धचर्थञ्च परमोपयोगिनौ । यद्यपि प्रतनकोऽपि शक्तिमुत्पाद्यति परन्तु यथेमौ न तथा स उपयोगो गृह्यते शरीरा-वयवैः [सेलैः]। मानसिकपरिश्रमकत्रेपेत्तया शारीर परिश्रम-कर्तृभ्यः [सैनिकमह्रश्रमजीविभ्यः] अतिहितकरौ । शीततौँ शरीरतापर चार्थमेतयो रुणातोत्पादकपदार्थयो यीष्म कालापेच्याऽ धिकावश्यकता भवति। वसाकर्वोजावन्यान्ययोरभावे मिथः प्रयोक्तुं शक्येते। यदि भोजने वसा न्यूना स्यात्कर्वोजश्चाधिकः स्यात्तर्हि शरीरे काचिद्धानिन भविष्यति। एवं कवौँजन्यूनतायां वसाधिक्येऽपि न काचिद्धानिः, शरीरञ्च स्वास्थ्यमनुवर्तते । वसा कर्वीजापेत्तया विलम्बेन पच्यते। तथा न ताबद्भोक्तुं शक्यते यावच्छर्करादि कर्वोजम्। वसा [घृततैलादिस्नेहः] दीनजनैर्न प्रायः प्राप्यते तेषां कार्यममहर्घस्य कर्वों जस्यैव भक्षणेन चलति । वसा तथा कर्वोजः कर्वनाभिद्रवजनौषजनै निर्मीयते । घृते वसाऽऽ धिक्येनास्ति किन्तु म्रचणे प्रतनकः । कर्वोजस्तु तण्डुलगोधूमयबालु-कादौ विशेषेणोपलभ्यते।

[33]

कृत्वा सममहोरात्रं तेषु भुञ्जीत भोजनम्।।
नाप्राप्तातीतकालं वा हीनाधिकमथापि वा।
अप्राप्तकालं भुञ्जानः शरीरे हालघौनरः।
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं वा नियच्छति।।
अतीतकालं भुञ्जानो वायुनोपहतेऽनले।
कुच्छाद्विपच्यते भुक्तं द्वितीयं च न कांच्चति।।
प्रातराशेत्वजीणेंऽपि सायमाशो न दुष्यति।

[सु॰ सू॰ अ० ४६]

टिप्पणी

जीवनीयम्—द्रवयेषु प्राकृत एकः पदार्थः। यः पुष्टयर्थं मत्यावश्यकः। किन्तु स उष्णीकरणेन विनष्टो भवत्यतो यावच्छक्यं नित्यं किञ्चिद् द्रव्यम् (फलादिकम्) अपक्रमेव भज्ञणीयम्। अतएव धोरोष्णक्षीरस्य महागुणवत्त्वं प्रतिपादितमायुर्वेदे तथा मध्वपि न कदाचिदुष्णीकृत्य संसेव्यत इति।

वानस्पतिकाम्मम्—तत्क्षणाकृष्टशकादिषु नागरङ्गनिम्बु द्राक्षाचि-श्चाकलादौ च प्राप्यते । इदं द्रव्येषु स्वातन्त्र्येण क्षारेण साकं वा भवति। इदं पाचनिक्रयाकाले कर्वनितं निर्मापयित यश्च रक्तस्यान्येषां वा शारीरद्रवाणां चारतास्थितयेऽति साहाय्यं करोति। यदीदं खाद्यभ्यः पृथक्कृतं स्यात्तर्हि क्षिरन्यूनता शीताङ्गरोगश्च प्रायः सम्भवेत्।

लवणम् — अस्य शरीरे महत्यावश्यकता । एतद्विनाऽपि स्वास्थ्यमसमीचीनं तिष्ठति । साधारणलवणानि रक्तारान् तथाऽन्यशारीरद्रवान् द्रवावस्थायामवस्थापयन्ति । खटिकपो-टाशियम् मन्नादीनां प्रस्फुरिताः (लवणरूपाः) अस्थिनिर्माणा

[38]

दिवा प्रबुध्यतेऽर्केण हृद्यं पुण्डरीकवत् ॥
तिस्मन् विवुद्धे स्रोतांसि स्फुटत्वं यान्ति सर्वश ।
व्यायामाच विचाराच विचिप्तत्वाच चेतसः ॥
नक्लेद्यपगच्छन्ति दिवा तेनाऽस्यधातवः।
अक्टिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेषु न दुष्यिति ॥

टिप्पणी

योपयुजन्ते । लोहक्षारो रक्तागुरञ्जकद्रव्यनिर्माणस्य प्रधान हेतुः । खनिजलवणासेवनादस्थीनि दुर्वलानि जायन्ते । सजीवपदार्थेष्वपि कचिल्लवणं प्राप्यते तद्प्यत्युपयोगि भवति ।

जलम्—इरमेकं माध्यमं येन शरीरस्यनिखिलावयवपुष्टिसम्ब-निधरासायनिकपरिवर्तनं भवति । शरीरतापरक्षार्थं घनपदा-र्थानां द्रवीकरणार्थं मलपदार्थानां वहिष्करणार्थञ्च परमोपयोगि । जीवनं तर्पणं स्वास्थ्यायानिवार्यञ्चेति ।

वेसवार। दिभोजनद्रव्याणि—वेसवार (मसाता) चायकहवा-कोकाप्रभृतीनि जीवनार्थं नात्यावश्यकानि । एतानि न शक्ति-मुत्पादयन्ति नच मांसादिकं पोषयन्ति । वेसवारेण भोजनं मुस्वादु जायते यच शीघं पच्यते । किन्त्वधिकवेस वारविशिष्टं न जीणं भवति ।

भारते चायस्य सेवनं प्रयहं वर्धत एव श्रान्तिमीषद्यनयित किन्तु स उत्तेजकः। अनावश्यकतायामुत्तेजकद्रव्यस्य सेवनं हानिकरम्। जठे समुत्कवाथ्य चायो न पेयः अन्यथा तस्य हानि कारकांशा जठे समाविशन्ति। अतः चायस्य फाण्टं कृत्वा सेवनं कार्यं, किन्तु मिनटचतुष्ट्याद्धिकमुष्णोद्के न प्रचेष्यम्। अस्मि-

[३५]

अविदग्ध इव श्लीरे क्षीरमन्यद्विमिश्रितम्। नैथ दुष्यति तेनैय समं सम्पद्यते यथा॥ रात्रौ तु हृद्ये स्नाने संवृतेष्वयनेषु च। यान्ति कोष्ठेच विक्लेदं संवृते देहधातवः॥

टिप्पणी

न्नेवेषत्काले तस्योत्तेजकांशाः काथे सम्मिलिता भवन्ति परन्तु हानिकारकांशःस्वल्पतमा एव आयान्ति । चायादीनि जाठरानलं मन्दीकुर्वन्ति । अतो भोजनकाले तत्पानमनुचितम् । श्लीरेण साकमीषद्दोषकराणि भवन्ति । अधिककंहवासेवनादनिद्रा शिरः शृलापस्मारहृदयकम्पादयो रोगा जायन्ते ।

प्रामाणिकभोजनम् – यद्यपि भोजनमात्रा प्रत्येकमनुष्याणां पृथकपृथग्भवति तथापि विशेषतो तस्य शारीरभारः पादोन द्विमणपरिमितिः स्यात्तेन नत्रजनीयांश ऽ=॥ पादोनत्रिकळाः, वसांशः ऽ—॥ सार्द्धककळा, कर्वोजीयांशः ऽ।≅। सार्द्ध सप्तकलाः, खनिजपदार्थाशः किञ्चिन्मात्राः (पण्माषकादन्यूनः) अर्थात् सर्वं सम्मेल्य ऽ॥ द्वादशकळामानमहोरात्रे भोक्तव्यम्। दशैकादश वा कळा जळमात्रा दृदपदार्थे भवति ततोतिरिक्तं सपादसेटकं पश्चारपेयमहोरात्र इति।

केषाञ्चिद्वैज्ञानिकानां मते ऽ = कलाद्वयाद्धिकः प्रतनकांशो न भवेदितिः। 'किलोरी' इत्युष्णताया एकं मानं वर्तते। साधारण-परिश्रमकत् णां २५०० किलोर्युष्णतायाः, अधिकपरश्रमिणां ३६०० कि० उष्णताया आवश्यकता भवति।

१ माषकमितेन प्रतनकेन ४०१ कि० उष्णता लभ्यते।

१ माषकवसया ९०१ कि० तथैकमाषककर्वोजेन ४०१ कि० उच्चता समुपलभ्यतेः

[38]

क्विन्नेष्वन्यद्पक्वेषु तेष्वासिक्तं प्रदुष्यति । विद्रश्वेषु पयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्ववार्पितम् ॥ नैशेष्वाहारजातेषु नाविपक्वेषु बुद्धिमान् । तस्मादन्यत्समञ्जीयात् पालयिष्यन् वलायुषी ॥ चि चि अ १५]

अशनस्थानम्

आहारन्तु रहः कुर्यान्निर्हारमि सर्वदा। उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशो हीयते श्रियाः।

[भावमिश्रः]

गौरीमतादितिखिताखिळपाकसम्पद्, व्यापारितौदिनिकसंश्रमदर्शनीयम्। स्वप्नेऽपिवैरिजनगोचरतामयातं, चंद्रद्रवै सुरभितंभुजिकमधाम।।

[चे० कः]

टिप्पणी

साधारणकार्यकर्तृभ्यः प्रतनकस्य माषकशतम्, वसायाः षष्टिमाषकानि कर्वोजस्य च चतुःशतमाषकानि स्युः । विशिष्टकार्य-कर्तृम्यः १६० मा० प्रतनकस्य, ९८ मा० वसायाः, ५२० मा० कर्वोजस्य च भवेयुः । इत्येकपाश्चात्यवैद्यस्य मतम् । परन्तु वस्तुतः एतावद्वसाकर्वोजीयांशा न प्राह्याः ।

केचित्तु सार्धेकमणभारवत्पुरुषार्थे ७०—८५ मा० प्रतनकस्य, ८५ मा० वसायाः, २२०—२५० मा० कर्बोजस्य देयानि, लवण-जलयो विशेषपरिमाणस्यावश्यकता नास्तीति मन्यन्ते ।

* चन्द्रः कपूरः तद्द्रविक्ति महानसे मित्त्का रोगोत्पादक-कीटाणवश्च न स्रायान्ति विनष्टा वा भवान्त ।

[30]

आप्तान्वितमसङ्कीर्णं शुचि कार्यं महानसन् । तत्राप्तेर्गुणसम्पन्नमन्नं भक्ष्यं सुसंस्कृतम् ॥ भोक्तारं विजने रमये निःसंवाधे समे शुचौ। सुगन्धिपुष्परचिते समे देशेऽथ भोजयेत्॥

(सु॰ सू॰ अ॰ ४६)

टिप्पणीं खाद्यद्रव्याणि

नाम	प्रतनकः	वसा	कर्बोजः	खनिज पदार्थः	जलम्
गोधूमः	११.80	2.08	७०,९०	3.88	११.८३
गोध्मपिष्टम्		in the second			
(गालितम्)	80.0	8.8	७५.४	0.4	
गोधूममर्दितम्			5.13		
(मैदा)	٥.9	4.8	υ ξ.8	0.4	
गोधूमत्वक्	65 13	3.4	४३.६	ξ.o	१२.५
(चोकर)	१६.४	4.4	84.4	9.0	1.4.0
यवः	८.९२	8.90	७६.१०	२—३	१२.३
जूर्णा	९.५२	8.88	६८.९	3.09	११.५०
गवेधुका -	७.६७	२.७७	६७.२६	9 11 11 11	
लघुगवेधुका	८.७२	४.७६	७३.४०	१.५-२.०	११-१२
तण्डुलः	६.६२	0.40	८१.٥७	2.08	११.०५

अन्नवर्गेषु कर्बोजःइवेतसाररूपेगाोपलभ्यते ।

[36]

प्रादौप्रक्षाल्यभोजनम्

भार्द्र पादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्। आर्द्रपाद्स्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाष्नुयात्।। (मनु० अ० ४)

भोक्ता

स्नातः सुधौतमृदुसुन्द्रशुक्कवासा -स्तत्काल्रधौतचरणः प्रियपुत्रमित्रैः ।

टिप्पणी सूपवर्गः

नाम	प्रतनकः	वसा	कर्बोजः	· Sealen
आढकी	२१.७०	२.५०	५४.०६	
मुद्गः	२३.६२	२.६९	५३.४५	एषु १०—११%जलम्,
मसूरः	२५.४७	3.00	५५.०३	३-४% खनिजपदार्थी
चणकः	१९.९१	४.३४	,५४.२२	भवति । निस्तुष सूपानि
कलायः	२२.०१	१.९६	. ५३.९७	सतुषसूपापेक्षया शीघ्रं
माषः	२२.३३	१.९५	५५.२२	पच्यन्ते ।

[39]

स्रग्वी प्रसन्नहृदयो रसपाकवेद्यां-भोक्ता प्रविश्य हितसात्स्यसमानवेद्यैः ॥

(चे॰ कु॰)

टिप्पणी		शाकवर्ग	:	188	* * *
नाम	प्रतनकः	वसा	कर्बोजः	खनिज पदार्थः	जलम्
कर्मकला	₹.⊏	0.8	4.2	१,३	८९.६
पुष्पकोबी	* २.२	0.8	8.9	0.5	90.0
रक्तवृताकम्	१. ३	0.2	4.0	0.0	98.9
(टोमाटो) त्रपुसः	0.5	0.8	२.१	0.8	94.9
त्र् <u>या</u> लुक म्	7.7	9.0	१५.७२०.६	१.0	७८.३
इत्रितकलायः	8.0	0.4	१६.०	0.9	७८.१
मूलकम्	₹•₹	0.0	१४.५	१.0	د۶.۶ ا
कदली	٤.३	0.8	२२.०	0.6	७५.३
वृन्ताकम्	0.59	0.98	₹.४८	०.२६	90.96
भिगडी	१.९६	8.8	५.७२	2.0	80.8
त्र्यलायू	0.90	9.0	₹.९६	0.0	\$3.80
पलाण्डुः	१.६	१.३	90.8	0.5	८७.६
गर्जरः	0.4	0.3	20.8	0.8	८६.५

80]

आसनम् 🏶

मृदुतूलमयेस्थूले चारुवस्त्रावगुण्ठिते । आसने प्राप्रङ्मुखो भोक्तोपविशेद्वाप्युदङ्मुखः॥ (क्षे० कु०)

टिप्पणी मांसवर्गः

नाम	प्रतनकः	वसा	कर्बोज।	लवणम्	जलम्
आजं मांसम्	86.0	9.0	4	2.0	υ ξ.0
सौकरम	१९.९	६. २	0.8	8.8	७२.६
हारिणम्	89.0	१. 9		8.8	৩'৭.৩
शाशम्	२२.३	8.8		8.8	v8.0
कौक्कुटम्	२२.७	8.8	१.३	8.8	8.00
कुकुट्यंडः सावरणः	१३.५०	११.६०		8.20	७३.५०
तस्य श्वेतभागः	12.20	०.२५		0.63	८५.५०
पीतभागः	१६.१२	₹१.३९		8.08	48.0
मत्स्यमांसम्	१८.३	0.0	0.9	0.6	७९.३

मुखमुच्चैः समासीनः समदेहोन्नतत्परः । बुभुच्चितोन्नमश्नीयादिति

[88]

महानसे राज्ञो वैद्यप्रयोजनम्

राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं निवेशयेत्। सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्रैवाऽप्रमादवान्॥ अन्नपानं विषाद्रचेद्विशेषेण महीपतेः। यस्माच चेतोऽनित्यत्वमश्ववत्प्रथितं नृगाम्। न विश्वसेदतो राजा कदाचिदपि कस्यचित्॥

(च्रे॰ कु॰)

माहानसिकवैद्यः

आयुर्वेदकताभ्यासः सर्वत्र प्रियदर्शनः। युक्तिहेतुसमायुक्त एष वैद्योऽभिधीयते ॥

[चे० कु०]

टिप्पणी **चीरवर्गः**

नाम	प्रतनकः	वसा	(शर्करा क)	लव णम्	जलम्
स्त्रीचीरम्	१.२	2.60	4.90	0.78	८९.८१
गव्यम्	રુ. લ	8.0	3.4	0.04	८७.२५
आजम्	8.3	8.66	४.४६	0.04	८५.७१
माहिषम्	६. ११	७.४५	8.80	0.60	८१.४०

वच्यमाणसुश्रुतोक्तपाठेनाधुनिकमञ्चटेबुलोपर्युपविशय भोजनकरणं सिद्धं भवति ।

[82]

कुलीनं धार्मिकं क्रिग्धं सुभृतं सततोत्थितम्।
अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम्।।
क्रोधपारुध्यमात्सर्यमदालस्यविवर्ज्जितम् ।
जितेन्द्रियं क्षमावन्तं शुचि शीलदयान्वितम् ।।
मेधाविनमसंश्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम्।
पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं मायाविवर्ज्जितम्।।
पूर्व्वोक्तेश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम्।
महानसे प्रयुद्धीत वैद्यं तद्विद्यप्जितम्।।
सि० क० अ० १

राजयोग्यं महानसम्

प्रशस्तिद्ग्देशकृतं ग्रुचिभाण्डं महच्छुचि । सजालकं गवाज्ञाढन्यमात्मवर्गनिषेवितम्॥

टिप्पणी चीरविकारवर्गः

Dett or transfer	नाम	प्रतनकः	वसा	कर्बीजः । (शर्करा)	ख्व ग्गम्	जलम्
CARRIED STATE	म्रक्ष्णम्	2.00	८५.००	* 7-7	2.00	१२.९५
-	घृतम्		800.00	1 8		
-	द्धि	२४.०६	२.५	49.		अवशिष्टांश:
	मस्तु	७.८२	0.78	8.44	०.६५	९३.६४
-	सन्तानिका	રં.4	२०-६५ सामान्यतः ४५	४.५	0.4	अवशिष्टांश;

पृष्ठ ४२ टिप्पणी]	आर्द्रफलवर्गः			. [83]
नाम	प्रतनकः	स्नेहः (वसा)	कर्बोजः	लवणाम्ले	जलम्
सेव्यम	0.4	0.4	१२.५	4.8	८२.५
नासपाती	0.4	0.8	११.4	8.8	८३.९
आरुकम्	0,4	0.2	4.6	2.3	66.6
बदरीफलम्	2.0		88.6	9.4	67.8
सतूदम्	0.3	epi e e a	88.88	2.8	28.9
द्राचा (अंगूरः)	۶.٥	8.0	१५.५	2.0	٥٩.٥
नारिकेलमजा	५.२	३५.९	۲۰8	2.0	४६.६
नारिकेळजळम्	0.4		9.0	THE PROPERTY OF	९०.३
खर्बुजम्	0.0	0.3	७.६	0.8	96.6
कालिङ्गम्	७.३	0.8	६.५	0.2	९२.९
नागरङ्गकम्	.०९	0.8	6.0	२.0	८६.७
निम्बुकम्	۲.٥	0.9	6.3	0.4	८९.३
बहुचक्षुः	0.8	0.3	9.6	0.3	८९.३
दाडिमम्	१.५	१.६	१६.७	0.6	७६.८
अञ्जीरम्	8.4		10.6	0.8	७९.१

[88]

विकत्तसृष्टसंसृष्टं * सवितानं कृतार्घनम् । परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेद्यापि महानसम् ॥ तत्राध्यक्षं नियुञ्जीत प्रायोवेद्यगुणान्वितम् । सुरु क० अ० १]

महानसोपयोग्युपकरणानि

वस्तूनि भोजनाहाँ ए विविच्यानि पुनः पुनः । सर्वाणि गुण्युक्तानि स्थापितानि महानसे ।।

टिप्पणी शुक्कफल वर्गः

नाम	त्रतनकः	स्नेह: वसा	कर्बोजः	खनिज पदार्थ:	जलम्
मृद्वीका	2.2	3.0	Ę8. 0	२,२	२७.९
लघुद्राक्षा	२.५	8.6	৩৪.৩	8.8	88.0
आचोटकः	१५६	६२.६	6.8	२.७	४.६
वातामः	28.0	48.0	१०.0	\$.0	ξ. 0
अभिषुकः (पिस्ता)	28.0	48.0	88.0	3.3	8.8
नारिकेल गिरिगोलक	Ę.0°	५७.४	३१.८	8.3	3.4
मुद्गफली	२७.५	88.4	१५.७	२.५	હ.પ

विगततृग्स्थानसम्पर्कमित्यर्थः

[84]

दास्याप्ता मार्जनी वाटी पूतहण्डी सुकूर्चिका।
घर्षणी वैणवं पात्रं जलपूर्णस्विल्खरः ॥
शलाका विहाननी कुद्दालं सुकुठारकः ।
दारुखण्डानि शुष्काणि हस्तमात्रकृतानिच ॥
शजीर्णान्यतिस्थूलान्यजन्तून्यमलानि च ।
तत उचालनी पीठो सुसलं चाप्युल्खलम् ॥
सूर्पलोष्ठं शिला द्वीं चतुरस्र च पट्टिका ।
संदंशकं तु युगलं वस्रखण्डचतुष्ट्यम् ॥
नालिका छूरिका चैव सुशूल्यं सुकटाहकम् ।
वाहिसञ्चालनार्थाय द्वीं दीर्घा सुलोहजा ॥
इत्यादि वस्तुजातं हि युज्यते च महानसे ।

[च्ले॰ कु॰]

टिप्यणी उदाहरणार्थं — कतिपयखाद्यद्रव्यसंयोगः (१)

भोजनम् (अहोरात्रे) मूलावयवा:—
तण्डुलम् १० कलाः (छटांकः) प्रतनकः ५० माषकानि
सूपम् २ क्र० कर्वोजः ५०० मा०
घृतं तैलंवा ै क० वसा ३३ मा०
शाकम् ईषत

अस्मिन्नाहारे प्रतनकस्य वसायाश्च भागौ न्यूनतरो, वसायाः, कार्यं कर्वोजेन सम्पत्स्यते । भोजनिमद् श्रमजीविभ्यः श्रेष्टम् । मानसिककार्यकर्यभ्योऽवरम् ।

🕸 वहिसञ्जननयाव इति मूलपाठः।

[88]

सूदकारः

पितृपैतामहो द्त्तः शास्त्रज्ञः स्वादुपाचकः। शौचयुक्तोऽथ भक्तश्च सूदकारः प्रशस्यते ।। भवेयुर्धार्मिका स्निग्धाः सूदकाराः क्रमागताः। कृतोष्णीषाश्च शुचयस्तथा वैद्यवशस्थिताः॥

परिवेषकः

स्नातश्चन्दनचर्चितः सुवसनः स्रग्वी प्रसन्नाननः। स्पष्टात्मा सुभगः प्रसन्नहृद्यः श्रीकान्तपूजारतः।। स्वाभिस्तेहपरः सुपाकनिपुणः प्रौढो वदान्यः शुचिः। विप्रो वा परिवेषकः सुकुलजश्चान्योऽपि वा भूपतेः॥

टिप्पणी मूलावयवाः-भोजनम् (त्र्रहोरात्रे) .३ कलाः तण्डलम गोधूमपिष्टम् ३ क० सपम १ क० ६१ मा० प्रतनकः सूपम् ५० मा० वसा ८क० ३३० मा० चीरम् कर्वोजः ने क०. घृतम १ क० शकरा ईषत् शाकम्

साधारणमानसिकशारीरिकपरिश्रमिभ्यो हितम् । प्रतनक वसयोर्भागावस्मिन्नपि न्यूनौ स्तः ।

सूदकारपितस्तत्र प्रायो वैद्यगुणान्वितः। तत्रत्यजनतत्वज्ञस्तत्प्रशासनतत्परः।।

(चे॰ कु)

[80]

स्नाता विशुद्धवसना नवधूपिताङ्गी। कर्एसौरभमुखीनयनाभिरामा। बिम्वाधरा शिरसि बद्धसुगन्धिपुष्पा ॥ सन्दिस्मता चितिभृतां परिवेषिका स्यात ॥ चि० क०]

महानसकर्मचारिणः

शुचयो द्विणा द्वा विनीताः प्रियद्शेनाः । संविभक्ताः सुमनसो नीचकेशनखाः स्थिराः॥

दिप्पणी

(3)

भोजनम् (अह	होरात्रे)	ो मूला	वयवाः—
गोधूमपिष्टम्	७ कलाः	in the same	
तण्डुलम्	२ क०	mere force	
सूपम्	२ क०	प्रतनकः	१०५ मा०
घृतम् ।	१ क०	वसा	९६ मा०
चीरम्	१२ क०	कर्बोजः	५१४ मा०
शकरा	१ क०		
शाकम्	ईषत्		Chie

भोजनिमद्ं १८ तः २५ वर्षवयोऽभ्यन्तरीययुवकेभ्यो येषां शरीरभारः १॥ मणिमतः स्याद् दीयते । किन्त्वत्रकर्वोजस्य मात्रा किञ्चिद्धिका वर्ततेऽतः पिष्टतण्डुलयोः ९ कलास्थाने ७ कलाः तथा घृतस्य १ कछास्थाने १। कछा इति प्रदानेन श्रेष्ठतमंस-(ह० श॰ र०) (पा० स्वस्थवृत्त०) मपद्यते।

[86]

स्नाता दृढं संयमिनः कृतोष्णीषाः सुसंयताः । तस्य चाज्ञाविधेयाः स्युविविधाः परिकर्मिभ्णः॥ आहारस्थितयश्चापि भवन्ति प्राणिनो यतः । तस्मान्महानसे वैद्यः प्रमादरहितो भवेत् । माहानसिकवोढारः सौपौदनिकपौपिकाः । भवेयुवैद्यवश्गा ये चाप्यन्ये तु केचन ॥ [सु० क० अ० १]

पाकपात्राणि

मृत्मयादीनि भाण्डानि ज्ञालितानि च वारिणा।
तेषु तत्पच्यते द्रव्यं गुण्यव्सर्वसन्मतम्।।
मृद्भावे पचेल्लोहे चक्षुरशों विकारनुत्।
कांस्यजे पाचितं यद्धि तद्धितं मितदं शुचि।।
यच्च ताम्रमये सिद्धं न रुच्य त्वम्लिपत्तकृत्।
सौवर्णे राजते पाच्यमाल्यभूमिभृतां गृहे।।
तत्पात्रं सर्वदोषःनं धिषणोत्सवदायकम्।
[चे० कु०]

भोजनविशेषेण पात्रविशेषाः

घृतं काष्णांयसे देयं पेया देया तु राजते।
फलानि सर्वभक्ष्याश्च प्रदद्याद्वैदलेषुच।।
परिशुक्तप्रदिग्धानि सौवर्णेषु प्रकल्पयेत्।
प्रद्रवाणि रसांश्चैव राजतेषूपहारयेत्।।
कट्टराणि खडांश्चैव सर्वान् शैलेषु दापयेत्।
दद्यात् ताम्रमये पात्रे सुशीतं सुश्रृतं पयः।।
पानीयं पानकं मद्यं मृन्मयेषु प्रदापयेत्।

[89]

काचस्फटिकपात्रेषु शीतलेषु शुभेषु च ॥ दद्याद्वैहूर्यपात्रेषु रागषाडवसट्टकान् । [सु०स्०अ०४६]

विभिन्नपात्रगुणाः

दोषहृद् दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजनभाजनम्।
रोष्यं भवति चक्षुष्यं पित्तहृत्कफवातकृत्।।
कांस्यं वुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तिपत्तप्रसादनम्।
पैनलं वातकृदू न्तुष्णं कृमिकफप्रगुत्।।
आयसे काचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम्।
शोथपाण्डुह्रं वल्यं कामलापह्मुत्तमम्।
शोलेये मृन्मये पात्रे भोजनं श्रोनिवारणम्।
दारुद्भवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारि च।।
पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत्।

[भा०प्र०]

जलपात्रम्

जलपात्रन्तु ताम्रस्य तदभावे मृदो हितम्। पवित्रं शीतलं पात्रं रचितं स्फटिकेन यत्।। काचेन रचितं तद्वत्तथा वैद्वर्यसम्भवम्।।

[भा०प्र०]

भोजनोपकल्पनम्

पुरस्ताद्विमले पात्रे सुविस्तीर्णे मनोरमे। सूदः सूपौदनं दद्यात् प्रदेहांश्च सुसंस्कृतान्॥

[40]

फलानि सर्वभक्ष्यांश्च परिशुष्काणि यानि च ।
तानि द्विणपार्श्वेतु भुञ्जानस्योपकल्पयेत् ॥
प्रद्रवाणि रसांश्चेव पानीयं पानकं पयः ।
खडान् यूषांश्च पेयांश्च सन्ये पार्श्वे प्रदापयेत् ॥
सर्वान् गुडविकारांश्च रागषाडवसट्टकान् ।
पुरस्तात्स्थापयेत् प्राज्ञो द्वयोरपि च मध्यतः ॥
एवं विद्याद्धि मितमान् भो जनस्योपकल्पनम् ।

स० स० अ० ४६]

पात्रादीनां शुद्धिः

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गन्धादिकर्षणात् । वाक्शस्तमम्बु निर्णिक्तमज्ञातं च सदा शुचि ॥ [या० व०]

तैजसानां मणीनांच सर्वस्याश्ममयस्यचं।

सस्मनाद्भिष्ट्वा चैव ग्रुद्धिरुक्ता मनीषिमिः।।

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति।
अञ्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम्।।
अपामग्नेश्च संयोगाद्धमं रौप्यं च निर्वभौ।
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः।।
ताम्रायःकास्यौत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च।
शौचं यथाई कर्तव्यं चाराम्रोदकवारिभिः।।
द्रवाणां चैव सर्वेषां ग्रुद्धिराप्नवनं स्मृतम्।
भोत्तृणं संहतानां च दारवाणां च तत्त्वणम्।।
मार्जनं यञ्चपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।
चमसानां प्रहाणां च ग्रुद्धिः प्रचालनेन तु।।
चरुणां स्रक्सुवाणां च ग्रुद्धिरुष्णेन वारिणा।
स्म्यपंशकटानांच मुसलोळ्खलस्य च।।

[48]

अद्भिस्तु प्रोक्तणं शौचं वहूनां धान्यवाससाम्। प्रकालनेन त्यल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ चैलवच्चर्मणां ग्रुद्धिर्वेदलानां तथेव च। शाकमूलफलानांच धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ चौमवच्छङ्खशृङ्काणामस्थिदन्तमयस्य च। ग्रुद्धिर्विजानता कार्या गोमृत्रेगोदकेन वा॥ प्रोक्षिणाचृणकाष्टं च पलालं चैव शुध्यति। मार्जनोपाञ्जनवेरम पुनः पाकेन मृन्मयम्॥ मद्यमूत्रेः पुरीषेवां ष्टविनैः पृयशोणितैः। संरपृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम्॥

[मनु: अ० ५]

प्रयोज्यमशनम्

विषक्तरगदैः स्पृष्टं प्रोत्तितं व्यजनोदकैः। सिद्धैर्मन्त्रहेतविषसिद्धमन्नं निवेदयेत्॥ विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टे रसादिभिः। मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यप्रमञ्चनं हितम्॥

[सुश्रुतः]

सात्विकादीनामशनम्

आयुःसत्ववलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारः स्नात्विकप्रियाः॥
कट्वम्लल्वणत्युष्णतीक्ष्णक्विविद्यहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पृति पयुषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥
भगवदगीता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[42]

मिताः स्युः सात्विकाहारा राजसाः पूर्णभोजनाः । तामसा स्वधिकाहारा विज्ञेयाः सात्विकादयः ॥

आहारस्य षट्प्रकारत्वम्

आहारं षड्विधं *चूष्यं पेयं लेहां तथैव च। भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरु विद्याद्यशोत्तरम्।। [भा०प्र०]

भोजनकाले भोक्तुः कर्तव्यम्

सदैवाशनवेलायां कुर्यान्माङ्गल्यदर्शनम् । चित्तप्रमोदनं नित्यमायुर्धन्मविवर्धनम् ॥ छोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । पुष्पं स्वक्सपिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥

भावमिश्रः]

पूजयेदशनं नित्य मिद्य। च्चैतद्कुत्स्यन्। हृष्या हृष्येतप्रसीदेच प्रतिनन्देच सर्वशः॥ पूजितं तु ह्यशनं नित्यं वलमूर्जं च यच्छित्। अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

[मनुः]

सु॰

नारत्नपाणिनीस्नातो नोपहतवासा नाजिपत्वा नाहुत्वा देवताभ्यो नानिरूप्य पितृम्यो नादत्वा गुरुभ्यो नातिथिभ्यो

भ-भक्ष्यं भोज्यं लेखं पेयिमित्याहारचतुष्ट्यम् ।
 चतुर्विधेष्वेवाहारेषु षटद्रकारत्वसम्भवा
 द्विशेषज्ञानार्थं भाविमश्रस्यैव वचो लिखितम् ।
 †-भुज्ञानोनवहुत्रयान्निन्देदि कञ्चन ।
 जुगुक्तितां कथां नैव श्रुणुयादिष वा वदेत् ॥

[43]

नोपाश्रितेभ्यो नापुण्यगन्धो नामाळी नाप्रचालितपाणिपाद्वद्नो नाशुद्धमुखो नोद्इमुखो न विमना नाभक्ताशिष्टाशुचिक्षुधित-परिचरो न पात्रीष्वमेध्यासु नादेशे नाकाळे नाकाणे नाऽदत्वाऽप्र-मग्नये नाप्रोचितं प्रोचणोदकेन मन्त्रेरनिभमन्त्रितं न कुत्सयन्त कुत्सितं न प्रतिकूलोपिहतमन्नमाददीत । न पर्युषितमन्यत्र मांसहरितशुष्कशाकफळभक्ष्येभ्यः । नाशेषभुक्स्यादन्यत्र दिधम-धुलवणसिळसमन्तुसर्पिभ्यः ।

(च० सू० अ०८)

आहारविधिविशेषायतनानि क्रिया भाग

तत्र खिल्वमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति । तद्यथा —प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयागसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि भवन्ति ।

तत्रे प्रकृतिरुच्यते—स्वभावो यः, स पुनराहारोषधद्रव्याणां स्वाभाविको गुर्वादिगुणयोगः, तद्यथा—मापमुद्गयोः, श्करणयोश्च। करणं पुनः—स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः, संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते । ते गुणाश्च तोयाग्निसंनिकर्षशौचमन्थन-देशकालवशेन भावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्चाधीयन्ते ।

संयोगस्त द्वयोर्बहूनां व द्रव्याणां संहतीभावः, स विशेष-मारभते यन्नैकशो द्रव्याण्यारभन्ते, तद्यथा—मधुसर्पिषोः, दिष्य मधुमत्ययपयसां च संयोगः जिल्ला

राशिस्तु—सर्वेष्ठहपरिष्रहो मात्रामात्राफळविनिश्चयार्थः प्रकृतः; तत्रः सर्वेस्याहारस्य प्रमाण्यहणमेकपिण्डेन सर्वेष्ठहः, परिप्रहस्र पुनः प्रमाण्यहणमेकैकत्वेनाहारद्रव्याणां; सर्वेस्य हि ष्रहः सर्वेष्ठहः, सर्वेतश्च ष्रहः परिष्रह उच्यते ।

[48]

देशः पुनः—स्थानं, द्रव्याणामुत्पत्तिप्रचारौ देशसात्म्यं चाचष्टे।

कालो हि—नित्यगश्चावस्थिकश्च तत्रावस्थिको विकारमपेश्चते, नित्यगस्तु खुल्वृतुसात्स्यापेत्तः।

उपयोगसंस्था तु—उपयोगनिययः, स जीर्णलच्चणापेक्षः।
उपयोक्ता पुनः—यस्तमाहारमुपयुंक्ते, यदायत्तमोकसात्म्यम्।
इत्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्तिः, एषां विशेषाः
शुभाशुभफलप्रदाः परस्परोपकारका भवन्तिः, तान् बुभुत्सेतः,
वुद्ध्वा च हितेष्मुरेव स्यात् , न च मोहात्प्रमादाद्वा प्रियमहितमसुखोदर्कमुपसेव्यं किञ्चिदाहारजातमन्यद्वा।

तत्रेदमाहारविधिविधानमरोगाणामातुराणां च केषांचि, त्काले प्रकृत्येव हिततमं भुञ्जानानां भवति—उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रतं नातिविल्लाम्बतं न जल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीतात्मानमभिस-मीक्ष्य सम्यक्।

तस्य साद्गुण्यमुपदेक्ष्यामः—उष्णमश्नीयात्; उष्णं हि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तं चाम्रिमौदर्यमुदीरयति, चिप्रं च जरां गच्छति, वातं चानुलोमयति, श्लेष्माणं च परिशोषयति, तस्मा-दुष्णमश्नीयात्।

स्निग्धमश्नीयात्—स्निग्धं हि भुज्यमानं स्वद्ते भुक्तमौ-द्र्यमग्रिमुद्दीरयति, चिप्नं जरां गच्छति, वातमनुलोमयति, हृद्धीकरोति शरीरोपचयं, बलाभिवृद्धिं चाभिजनयति, वर्णप्रसाद-मपि चाभिनिर्वर्तयति, तस्मात्स्निग्धमश्नीयात्।

मात्रावदश्नीयात्-मात्रावद्धि भुक्तं वातपित्तकफानप्रपीड-

12 24 27 25 May - - 27 (213) 2

[44]

यदायुरेव विवर्धयति केवलं, सुखं गुद्रमनुपर्येति, न चोष्माण-मुपहन्ति, अव्यथं च परिपाकमेति, तस्मान्मात्रावदश्नीयात्।

(च० वि० अ०१)

मात्राशीक्षस्यात् । आहारमात्रा पुनरिप्तवलापेक्षिणी । याव-द्धःचस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छतिः तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति ।

तत्र शालिषष्टिकमुद्गलावकपिञ्जलैणशशशरभशम्बरादीन्या-हारद्रव्याणि प्रकृतिलघून्यपि मात्रापेचीणि भवन्तिः; तथा पिष्टेक्षक्षी-रविकृतिमाषान्पोदकपिशितादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृतिगुरूण्यपि मात्रामेवापेक्षन्ते ।

न चैवमुक्ते द्रव्ये गुरुलाघवमकारणं मन्येत । छघूनि हि द्रव्याणि वाय्विप्रगुणबहुलानि भवन्ति, पृथिवीसोमगुणबहुल्लानीतराणि; तस्मात्स्वगुणादिष लघून्यिससंधुक्षणस्वभावान्यन्त्रिपि चोच्यन्तेऽपि सौहित्योपयुक्तानि, गुरूणि ‡ पुनर्नागिन

मात्राशी सर्वकाल स्थान्मात्रा हाग्ने: प्रवर्तिका ।
 मात्रा द्रव्यायय पेच्न्ते गुरुण्यपि लघूनि च ॥
 गुरूणामधंसौहित्यं लघूनां नातिनृप्तिता ।
 मात्राप्रमाणंनिर्दिष्टं सुखं याबद्विजीर्यति ॥ (वा०)
 यच्छुक्यं प्रसित्तं प्रस्यं प्रस्तं परिण्मेच यत् ।
 हितंच परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥

(महाभारतः)

्री मन्दानलो नरो द्रव्यं मात्रागुरु विवर्जयेत् । स्वभावतश्च गुरु यत्तथाः संस्कारतो गुरु ॥ मात्रागुरुस्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः । संस्कारगरु पिष्टान्नं प्रोक्तमित्युपलक्षणम् ॥

(भा०प०)

[44]

संधुक्ष्णस्वभावान्यसामान्याद्तश्चातिमात्रं दोषवन्ति सौहित्यो-पयुक्तान्यन्यत्र व्यायामाग्निबलात्; सेषा भवत्यग्निबलापेक्षिणी मात्रा।

न च नापेक्षते द्रव्यम्। द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्य-मर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिइयते। लघूनामपि च नातिसौहित्य-मग्नेर्युक्त्यर्थम्। मात्रावद्धचशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं बलवर्ण-सुखायुषा योजयत्युपयोक्तारसवश्यमिति । (च० सू० अ०)

त्रिविधं * कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः तद्यथा — एकमवकाशाशं मूर्तानामाहारिवकाराणां एकं द्रवाणां, एकं पुनर्वातिपत्तरहेष्मणाम् । एतावतीं ह्याहारमात्रामुपयुञ्जानो नामात्राहारजं किचिदशुभंप्राप्नोति ।

त च केवलं मात्रावत्त्वादेवाहारस्य कृत्स्नमाहारफलसौष्ठ-एमवाद्वं शक्यं, प्रकृत्यादीनामष्टानामाहारविधिविशेषायतनानां

प्रविभक्तफलत्वात्।

तत्र ताबद्दाहारराशिमधिकृत्य मात्रामात्राफळविनिश्चयार्थः प्रकृतः; पृतावानेव ह्याहारराशिविधिविकल्पो; यावन्मात्रावत्त्व-ममात्रावत्वं च ।

तत्र मात्रावत्वं पूर्वमुपदिष्टं कुक्ष्यंशिवभागेन, तद्भूयो विस्तरेणानुव्याख्यास्यामः; तद्यथा कुत्तेरप्रपीडनमाहारेण, इदयस्यानवरोधः, पाश्वयोरविपाटनं, अनितगौरवमुद्रस्य, प्रीणनिमन्द्रियाणां, क्षुत्पिपासोपरमः, स्थानासनशयनगमनप्र-

*त्रन्नेन कुत्तेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेद् । त्राश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ॥

(वाग्भटः)

[40]

श्वासोच्छ्वासहास्यसंकथासु च सुखानुवृत्ति , सायं प्रातश्च सुखेन परिएमनं, बळवर्णोपचयकरत्वं चेति मात्रावतो छन्नणमाहारस्य भवति ।

अमात्रावत्त्वं पुनिद्विधिमाचक्षते — होनमधिकं चेति ; तत्र होनमात्रमाहारराशि वलवर्णीपचयच्चयकरमृतृप्तिकरमुदावर्तकर-मृहृष्यमनायुष्यमनौजस्यं शरीरमनोबुद्धोन्द्रियोपघातकरं सारविध-सन्मलक्ष्म्यावहम्शीतेश्च वातिकार।णामायतनमाच्चते ।

अतिमात्रं 🗘 पुनः सर्वदोषप्रकोपण्मिच्छन्ति सर्वेकुश्लाः।

(च०)

जीर्णे श्रीयात् – अजीर्णे श्र हि भुञ्जानस्याभ्यवहृतमाहारजातं पूर्विस्याहारस्य रसमपरिणतमुत्तरेणाहाररसेनोपसृ जनसर्वात् दोषात् प्रकोपयत्याशु, जीर्णे तु भुञ्जानस्य स्वस्थानस्येषु दापेष्वग्नौ चोदीर्णे जातायां च बुभुज्ञायां विवृतेषु च स्नोतसां मुखेषूद्गारे विशुद्धे विशुद्धे च हृदये वातानुछोम्ये विसृष्टेषु च वातमृत्रपुरीषवेगेष्व-भयवहृतमाहारजातं सर्वश्रारीरधातूनप्रदृषयदायुरेवाभिवर्धयति केवछं तस्माज्ञीर्णेऽइनीयात्।

वीर्याविरुद्धमद्गीयात्—अविरुद्धवीर्यमद्गन् हि न विरुद्ध-वीर्योहारजैर्विकारैरयमुपसृज्यते, तस्माद्वोर्याविरुद्धमर्गीयात्। इष्टे देशेऽरनीयात्—इष्टे हि देशे भुझानो नानिष्टदेशजैर्म-

[‡] अनात्मवन्तः पशुवद् भुक्षते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णः प्राप्नुवन्ति हि॥
(माघवकरः)

^{*} ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढ्ता । विवन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ (मा० नि०)

[46]

नोविघातकरैभाविर्मनोविघातं प्राप्नोति, तथेष्टैः सर्वोपकर्णैः, तस्मादिष्टे देशे तथेष्टसर्वोपकरणं चाइनीयात्।

नातिद्रुतमरनीयात्—अतिद्रुतं हि भुञ्जानस्योत्स्नेहनं, अवसद्नं, भोजनस्याप्रतिष्ठानं, भोज्यदोषसाद्गुण्योपल्लिधदच न नियता, तस्मान्नातिद्रुतमरनोयात् ।

नातिविल्लिम्बतमश्नीयात्—अतिविलिम्बतं हि भुञ्जानो न तृप्तिमधिगच्छति, बहु भुंक्ते, शीतीभवति चाहारजातं विषमपाकं च भवति, तस्मान्नातिविल्लिम्बतमश्नीयात्।

अजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत—जल्पतो हसतोऽन्यमनसो वा भुञ्जानस्य त एव हि दोषा भवन्ति य एवातिद्रुतमञ्जतः, तस्माद-जल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत ।

आत्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक्—इदं ममोपशेते, इदं नोपशेत इति, विदितं ह्यस्य आत्मन आत्मसात्म्यं भवति, तस्मा-दात्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यगिति ।

(च० वि० अ०)

द्वादशाशनप्रविचाराः

तत्र शीतोष्णस्मिन्धरू जद्वशुष्कैकका लिकद्विकालिकौष्धयुक्त-मात्राहीनदोषप्रशमन्वरूयर्थाः ।

तृष्णोष्णमददाहार्तांन् रक्तपित्तविषातुरान्।
मूर्च्छार्तान् स्त्रीषु च ज्ञीणान् शातौरन्नैरुपाचरेत्॥
कफवातामयाविष्टान् विरिक्तान् स्नेहपायिनः।
प्रक्षिन्नदेहांदच नरानुष्णेरन्नैरुपाचरेत्॥
वातिकान् रक्षदेहांदच व्यायामोपहतांस्तथा।
व्यायामिनश्चापि नरान् स्निग्धेरन्नै रुपाचरेत्॥

[49]

मेदसाभिपरीतांस्तु स्त्रिग्धान् मेहातुरानि ।
कफाभिपन्नदेहांश्च रुक्षेरन्ने रूपाचरेत ॥
गुष्कदेहान् पिपासार्तान् दुवंलानिप च द्वेः ।
प्रिक्तन्नकायान् त्रिण्तः गुष्किमेहिनमेवच ॥
एककालं भवेद् देयो दुवंलाग्निविग्रद्धये ।
समाग्नये तथाऽऽहारोदेयः कालमथोभयम् ॥
औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः ।
मन्दाग्नये रोगिणे च मात्राहीनः प्रशस्यते ॥
यथुर्तुदत्तरचाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः ।
अतः परन्तु स्वस्थानां वृत्यर्थं सर्वमेव च ॥
प्रविचारानिमानेवं द्वादशात्र प्रयोजयेत् ।
(सु० उ० अ० ६४)

दृष्टिदोषविनाशायब्रह्मादीनां स्मरणम्

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः । इति सिञ्चन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न वाधते ॥ अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम् । दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं नमाम्यहम् ॥

(भा०प्र०)

भोजनक्रमः 🕸

पूर्वं मधुरमश्नीयान्मध्येऽम्ललवणौ रसौ।
पश्चाच्छेषान् रसान् वैद्यो भोजनेष्ववचारयेत्।।
आदौ फळानि भुडजीत दांडिमादीनि बुद्धिमान्।
ततः पेयांस्ततो भोज्यान् भक्ष्यांश्चित्रांस्ततः परम्॥

मधुरमधुरमादौ मध्यतोऽम्लैकभावः,
 कद्रकद्रकमथान्ते तिक्ततिक्तं तथैव।

[६0]

घनं पूर्वं समश्नीयात् केचिदाहुर्विपर्यंयम् । आदावन्ते च मध्ये च भोजनस्य तु शस्यते ॥ निरत्ययं दोषहरं फलेष्वामलकं नृणाम् । मृणालविषशाल्यककन्देक्षप्रभृतीनि च ॥ पूर्वा योज्यानि भिषजा नतु भुक्ते कदाचन ।

(सुव)

गुरु पिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि । न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्वुभुक्षितः ॥

(चरकः)

घृतपूर्व समश्रीयात्किठिनं प्राक् ततो मृदु । अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलाद्रोगेण मुञ्जति ॥ (भाविमश्रः)

भोजनामे सदा पथ्यं लवणार्हकभक्षणम्। अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्नाकण्ठविशोधनम्।। कुर्यात् क्षीरान्त * माहारं न द्ध्यन्तं कदाचन। छवणासुकदूष्णानि विदाहीन्यत्ति यानि तु॥ तदोषहर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत्।

(भावमिश्रः)

यदि सुखपरिणामं वाच्छिति त्वं हि राजन्, त्यं खलजनसङ्गं भोजनं मा कदाचित्।

(च्रे॰ कु॰)

* भोजनान्ते पिवेत्तकं बासरान्ते पयः पिवेत्। निशान्ते च पिवेद्वारि त्रिभी रोगो न जायते॥

(स्वा॰ शि॰ पा॰)

रात्रीचीरं न सेवेत यदि सेवेत न स्वपेत्। (व॰ यो॰ त॰)

[\$\$]

मवात

यद्यत्यादुतरं तत्तद्विद्ध्यादुत्तरोत्तरम्।

[सु॰ सू॰ अ० ४६]

भोजनस्यायोगहीनयोगातियोगमिथ्यायोगे दोषाः 🗥 🐚

नाभोजनेन कायाग्निर्दीष्यते नातिभोजनात्। यथानिरिन्धनो वहनिरल्पो वातीन्धनावृतः॥

चरकः]

हीनमात्रमसन्तोषं करोति च वल्रज्ञयम्। आलस्यगौरवाटोपसांदांश्च कुरुतेऽधिकम्॥

[सुश्रतः]

भोजनं हीनमात्रन्तु न वलोपचयौजसे। सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते॥ अतिमात्रं पुनः सर्वमाशु दोषं प्रकोपयेत्।

चे॰ क॰

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्। अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।

[मनुः]

पथ्यापथ्यमिहैकत्र भुक्तं समशनं मतम्। विषमं बहु वाऽल्पं वाष्यप्रप्रातीतकालयोः॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। नचातिस्वप्रशीलस्य जाप्रतो नैव चार्जुन॥ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

[भगवद्गीता]

[६२]

भुक्तं पृवीत्रशेषे तु पुनरध्यशनं मतम्। त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन् सृजन्तिवा।। [च० चि० अ० १५]

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ [यो०र०]

प्रशस्यं भोजनम् ।

तस्मात् सुसंस्कृतं युक्त्या दोषेरेतैर्विवर्जितम् । यथोक्तगुणसम्पन्नमुपसेवेत भोजनम् ॥ विभज्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि । सुखमुचैः समासीनः समदेहोऽन्नतत्परः ॥ काले सात्म्यं लघु स्निग्धं चित्रमुष्णं द्रवोत्तरम् । बुभित्ततोऽन्नमञ्नीयात् मात्रावद्विदितागमः ॥ काले भुक्तं प्रीणयति सात्म्यमन्नं न वाधते । लघुशीव्रं व्रजेत् पाकं स्निग्धोष्णं वलविद्वदम् ॥ चित्रं भुक्तं समंपाकं यात्यदोषं द्रवोत्तरम् । सुखं जीर्यति मात्रावद्धातुसाम्यं करोति च ॥

[सº]

भोजनस्य सुस्वादुत्वे मुखप्रदालनम्

प्रज्ञालयेदद्भिरास्यं भुञ्जानस्य मुहुर्मुहुः । विशुद्धरसेन तस्मे रोचतेऽत्रमपूर्ववत् ॥ स्वादुना तस्य रसनं प्रथमेनातितर्षितम् । न तथः स्वायेदन्यत् तस्मात् प्रक्षाल्यमन्तरा ॥

[६३]

सौमनस्यं वलं पुष्टिमुत्साहं हर्षणं सुखम् । स्वादु संजनयत्यन्नमस्वादु च विपर्ययम् ॥ भुक्त्वाऽपि यप्पार्थयते भूयस्तत् स्वादु भोजनम् ॥ (सु० स्० अ० ४६)

सञ्जातबुभुद्गायामनशने हानिः

बुभुिश्ततो न योऽइनाति तस्याहारेन्धनक्षयात् । मन्दो भवति कायाग्नि यथा चाग्निर्निरिन्धनः ॥ आहारं पचिति शिखी दोषानाहारवर्जितः पचिति । दोषक्षयेऽपि धातून् पचित च धातुक्षये प्राणान् ॥ (से० क०)

भोजनेच्छाविघातात्स्यादंगमदोऽरुचि भ्रमः। तन्द्रा लोचनदौर्वल्यं धातुदाहो वलक्षः॥ (भा० प्र०)

निषिद्धं भोजनम्

अचोक्षं दुष्टमुत्सृष्टं पाषाण्तृणलोष्ठवत्। द्विष्टं न्युषितमस्वादु पूति चान्नं विवर्जयेत्॥ चिरसिद्धं स्थिरं शीतमन्नमुष्णी कृतं पुनः। अशान्तमुपदिग्धं च तथा स्वादु न लक्ष्यते॥ (सू० सृ० अ० ४६)

विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम् । शाकावरात्रभूयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ॥ (वा० सू० अ० ८)

न चैकरससेवायां प्रसच्येत कदाचन । अत्युष्णान्नं वलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरम् ॥

(सु॰)

[88]

अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं बलप्रदम् । (च्ते॰ कु॰)

निषिद्धान्ना जनाः

नान्नमद्यान्मुमूर्ण्णां मृतानां दुःखजीविनाम् । स्त्रीजितक्छीबपतितकूरदुष्कृतकारिणाम् ।। गणारिगणिकासत्रधूर्तान्नापणिकञ्च न । (अ० सं०)

श्रमादिव्याप्तानां भोजने हानिः

श्रमात्तु भोजनं यो हि पानं वा कुरुते नरः। ज्वरः संजायते तस्य छर्दिवां तत्क्ष्रणाद्भवेत्।। नश्रान्तो भोजनं कुर्यात्र व्यायामसमाकुछः। विषमासने न भोक्तव्यं करोति विवधान् गदान्।। (आत्रेयसंहिता)

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच सन्धारणात्स्वप्रविपर्ययाच । कालेऽपि सात्स्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ईर्घ्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥

अन्नपानयोः संरत्नणम्

सिद्धभोजनं तथा पानार्थं जलादिकं न कदापि विवृतं स्थाप्यं किन्त्वावृतपात्र एव सदा रक्षणीयम् । यतस्तत्र सूक्ष्म-कीटाणवस्तथा रोगोत्यद्कपदार्थवाहिकामिक्षकादयो नाऽऽविशेषु र्थूल्यादयश्च नाऽऽपतेयुः । यद्यधिष्ठानाद्धस्तद्वयोचाधारे स्थाप-येत्तर्हि अधिकवरं स्याद् भूमिष्ठजीवाणूनामप्रवेश्यत्वा त्।

[६५]

कतिपयखाद्यानां भक्षणविधिविद्योषः

धान्यम्

शृकधान्यं शमीधान्यं समातीतं प्रशस्यते । पुराणं प्रायशो रूक्षं प्रायेणाभिनवं गुरु ॥ यद्यदागच्छति चिप्रं तत्तल्ळघुतरं स्मृतम् ।

(च० सू० अ० २७)

सुधौतः प्रस्नुतः स्विन्नोऽत्यक्तोष्मा चोदनो लघुः । विपरीतो गुरुः चीरमांसाद्यैर्यः साधितः ॥

(वा॰ सू॰ अ० १६)

निस्तुषं युक्तिभ्रष्टं तु सूप्यं लघु विपच्यते।

(च०)

कुकूळकपरभ्राष्ट्रकन्द्रङ्गरविपाचितान् । एकयोनींक्षपून् विद्यादपूपानुत्तरोत्तरम् ॥

(वा०)

न सक्तूनेकानश्नीयात्र निशि न भुक्त्वा न वहूत्र— द्विनीदकान्तरितात्र छित्वा द्विजैमक्षयेत्।।

(च० सू० अ०८)

मांसम्

मांसं सद्योहतं शुद्धं वयस्थं च भजेन्नरः। (वा०) मृतं कृशातिमेदां च वृद्धं वालं विषेह्तम्।। अगोचरभृतं व्याडसूदितं मांसमुत्सृजेत्। अतोऽन्यथा हितं मासंक्ष्यंहणं वलवर्धनम्।

नातिशीतगुरुस्तिग्धं मांसमाजमदोषलम् ।
 शरीरधातुसामान्यादनभिष्यन्दि वृंहणम् ॥

[६६]

त्रीणनः सर्वधातूनां हृद्यो मांसरसः परम्।। व्यायामनित्याः स्त्रीनित्या मद्यनित्याश्च ये नरा । नित्यं मांसरसाहारा नातुराः स्युर्ने दुर्वछाः॥ शरीरवृंहणे नान्यत् खाद्यं मांसाद्विशिष्यते । [च० सू० अ० २७]

क्षोरम्⊛

पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं युक्त्या । "वर्जीयत्वा स्त्रियाः स्तन्यमाममेव च तद्धितम्"

[सु॰]

धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि । चटकानां च यानि स्युरण्डानि च हितानि च ॥ रेतः श्रीगेषु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च। मधुराण्यवपाकीनि सद्यो वलकराणि च ॥ गुरूष्णमधुरा वल्या वृंहणाः पवनापहाः। मत्स्याः स्निग्धाश्च वृष्याश्च बहुदोषाः प्रकीर्तिताः ॥ शैवलाहारभोजित्वात्स्वप्रस्य च विसर्जनात् । रोहितो दीपनीयश्च लघुपाको महावलः॥ (चरकः) स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं वहलं शलदणपिच्छलम् । गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः ॥ तदेवं गुणमेवीजःसामान्यादभिवर्धयेत् । प्रवरं जीवनीयानां चीरमुक्तं रसायनम् । (च० सू०)

बल्याः किलाटपीयूषकूर्चिकामोरणादयः। शुक्रनिद्राकफकरा विष्टम्भि गुरु दोषलाः॥ † याद्यां जीरमदात्वे समुपलभ्यते ताद्यं विन। कथनेन न कदापि Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and e Cantottimalism.

[&] Aslhume Goult

भवेद् गरीयोऽतिशृतं धारोष्ण मसृतोपमम्।।

वा॰ सु॰ श्र॰ ४

व्याध्योषधाध्यभाष्यस्रीलंबनातपकर्मभिः। क्षीणे वृद्धे च वाले च पयः पथ्यं यथामृतस् ॥ अनिष्टगंधमम्लं च विवर्णं विरसं च यत्। वर्ज्य सलवणं क्षीरं यच विष्यितं भवेत॥

दूषितवीरजा रोगाः

क्षुब्धक्षीराद्रिमान्यातिसार्यमनाध्मानपिटिकामुखपाकादिरोगा उत्पद्यन्ते । तथा च प्रायेण दृषितक्षोरादेव विस्वचिका यक्ष्ममन्थ-रज्वरा दिसंक्रामकरोगा जायन्ते।

आरोग्यकरक्षीरप्राप्त्यपायाः

(१) ज्ञतस्तनानां रुग्णगवां क्षीरं न प्राह्यं तथा सद्यः प्रसूताया अपि । अत्यावश्यकतायां द्वादशदिवसानन्तरं प्रस्तागोः क्षीरं गृहीतुं शक्यते ।

पेयम् । तत्रानेके जीवाण्वो भवन्ति त एकदा कथनेन नश्यन्ति । परन्त्वधिकं न कथनीयंयतस्तत्रस्थाः सप्तफर्मेटाःपाचनहितकारका नष्टा भवन्ति । ८० शतांशतो न्यूनोष्णतायां कथनेन जीवाण्वोऽपि विनश्यन्ति फर्मेंन्टा ऋषि न नष्टा भवन्ति । प्रायः १२० शतांशोष्णतायां जनाः कथ-यन्ति तन्न श्रेष्ठम् । जलोष्ण्यन्त्रेक्षयने न फर्मेन्टान नश्यन्ति जीवाण्यवोऽपि मियन्ते ।

🕇 धारोष्णाचीरे जीवनीयांशः अधिको भवति ।

[86]

(२) विश्रुद्धीकृतपात्रे चीरं दोहनीयम्।

भूमावनावृतपात्रे न कदापि स्थाप्यं जीवागुध्र्ल्यादि पतन-भयात । द्थ्यादिकमप्येवं रक्षणीयम् ।

ताम्रयशद्नागपात्रेषु यत्र च रासायनिकपरिवर्तनस्य सम्भावना स्यात् क्षीरं न स्थाप्यम् ।

(३) स्तनं प्रचाल्य दोहनीयम्।

- (४) दोग्धाऽरोगसमाक्रान्तो निर्मलाम्बरः दोहनकाले सम्मा-जितहस्तश्च स्यात्।
- (५) पश्चव आरोग्यकरशालायां रक्ष्णीयाः, तेभ्य आरोग्य करखाद्यपानप्रदानस्य पूर्णप्रवन्धः कार्यः।
- (६) वस्त्रपूर्वं युक्तिपूर्वकं परिकाश्य क्षीरं पेयम्। यतः कथनं जन्तुनाशनस्य श्रेष्ठ उपायः।
- (७) अस्वस्थपशूनां श्लीरस्य तथाऽन्यप्रकारेण दूषितस्यक्षीरस्य विक्रयार्थं नगरसभाधिकारिभिनीऽऽज्ञा देया। तद्विक्रेतारश्च दण्डनीयाः स्युः।

*द्धि

न नक्तं दिधि भुङ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्। नाऽमुद्गसूपं नाऽक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ।।

(च०)

न नित्यं नैव चामन्दं वसन्तोष्णशरत्सु न।

(वा०)

हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दिध शस्यते ॥

(सु०)

#—त्रिदोषं मन्दकं जातं, वातष्नं दिध शुक्रलम् । सरः श्लेष्मानिलष्नस्तु मण्डः स्रोतोविशोधनः ॥ (च०)

[88]

ज्वरासृक्षित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वासयश्रमान् । प्राप्तुयात् कामलां चोष्रां विधि हित्वा दिधिप्रियः ॥ (च० सू० अ० २७)

तक्रम्

न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्रतक्रद्रग्याः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं हिताय तथा नरागां भुवि तक्रमाहुः ॥

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम् । पिवेत्तक्रं कफे चापि व्योपक्षारसमायुतम् ॥ (सु० सू० अ० ४५)

नवनीतम्

संग्राहि दीपनं हृद्यं नवनीतं नवोद्घृतम्। (च०) तद्धितं वालके वृद्घे विशेषादमृतं शिशोः॥ (यो०र०)

घृतम्

स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम्। सहस्रवीयं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत्॥

(वा०)

भोजने तच योक्तञ्यं सद्यस्तप्तं सद्यजनैः।

ससरं निर्जलं घोलं, मथितं स्वसरोदकम्। तकः पादजलं प्रोक्तमुदश्विदर्धवारिकम्॥ छिद्धिका सारहीना स्वात् स्यच्छा प्रचुरवारिका।

(भा०प०)

[00]

शाकम्

क्रिमिवातातपहतं शुष्कं जीर्णमनार्तवम् । शाकं निःस्नेहसिद्धं च वर्ज्यं यच्चापरिस्नुतम् ॥ (च०)

फलम्

पुराणमामं संक्लिष्टं क्रिमिन्याडहिमातपैः। अवेशकालजं क्लिन्नं यत्स्यात्फलमसाधु तत्।। (च०)

कन्दम्

वालं ह्यनार्तवं जीर्णं व्याधितं क्रिमिमचितम्। कन्दः विवर्जयेत्सर्वं यो वा सम्यङ् न रोहति।। (सु०)

आहारयोगिद्रव्याणि

मरिचाजाजिहिङ्गादि सार्षपादिकतैलकम्। अन्यत्संस्कारकं द्रव्यं रुच्यं शुक्तादिकं तथा।। अल्पमात्रं प्रयोक्तव्यं यावत्स्वास्थ्यस्यरचणम्।

इत्तुविकारः

नातिश्लेष्मकरो धौतः सृष्टमूत्रशकृद् गुडः । प्रभूतिक्रिमिमज्जासृङ् मेदोमांसकफोऽपरः ॥ हृद्यः पुरागाः पथ्यञ्च नवः श्लेष्माप्रिसादकृत् ।

वृष्याः चतक्षीणहिताः रक्तपित्तानिलापहाः। मत्स्यण्डिकाखण्डसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः॥ (वा० स०)

मधु

गुरुक्त्वकषायत्वाच्छैत्याचाल्पं हितं मधु । (च०) उष्णमुष्णातमुष्णे च युक्तं चोष्णे र्निहन्तितत् ॥ (वा०)

मद्म

मद्यं स्याद्मृतं युक्त्या * पीतं ‡ विषवद्न्यथा । गुरु त्रिदोषजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा।। पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः। नात्यर्थतीक्षणमृद्वल्पसम्भारंकलुषं नच।। (अ० ह०) MOVE BOUNTION

अनुपानम्

त्र्यशितश्चोदकं युक्त्या भुञ्जानश्चान्तरा पिवेत्। (सु॰ सु॰ अ० ४६) जीवनं जीविनां जीवो जगत्सवं तुत्रन्मयम्। नाऽतोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्यते ॥

* विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथावलम् । प्रहृष्ट्रो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ (मा० नि॰)

‡ सात्विकैरिति चरकः।

[65]

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनो । तस्माद् देयं तृषार्तीय पानीयं प्राणधारणम् ॥ (भा० प्र०)

भक्तादौ सलिलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् ।
 मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् ।।
 (क्षे० कु०)

तृषितस्तु न चाइनीयात्क्षुधितो न पिवेज्जलम् ।
तृषितस्तुभवेद्गुल्मी क्ष्मितस्तु जलौदरी ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति ।
तस्मात्मवास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते ॥
अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच स एव दोषः।
तस्मान्नरो वन्हिविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिवेदभूरि ॥
(क्षे० क०)

अतियोगेन सिललं तृष्यतोऽपि प्रयोजितम् । प्रयाति इलेष्मपित्तत्वं ज्वरितस्य विशेषतः ॥ वर्धयत्यामतृण्निद्रातन्द्राध्मानाङ्गगौरवम् । कासाग्निसादहृह्णासप्रसेकश्वासपीनसान् ॥

(ऋ० सं०)

अध्वश्रान्ते क्षुधाक्रान्ते शोकक्रोधातुरेषु च । विषमासनोपविष्टे च पीतं वारि रुजाकरम् ॥ तस्मात्प्रसन्नेमनसि पानीयं मन्द्रमाचरेत् ॥ (श्रा० सं०)

अथानुपानकर्म प्रवक्ष्यामि—अनुपानं तर्पयति, प्रीणयति, ऊर्जयति, पर्याप्तिमभिनिवर्तयति, भुक्तमवसद्यति,

[60]

अन्नसंघातं भिनत्ति, मार्दवमापादयति, जरयति, सुखपरिखामितामाशुज्यवायितां चाहारस्योपजनयतीति यदाहारगुणैः पानं विपरीतं तदिष्यते । अन्नानुपानं धातूनां दृष्टं यन्न विरोधि च ॥ (च० सू० अ० २७)

अम्लेन केचिद्रिहता मनुष्यामाधुर्ययोगे प्रणयी भवन्ति । तथाम्लयोगे मधुरेण तृप्तास्तेषां यथेष्टं प्रवद्नित पथ्यम् ॥ शीतोष्णतोयासवमद्ययूषफलाम्लथान्याम्लपयोरसानाम् । यस्यानुपानं तु हितं भवेद्यत्तस्मे प्रदेयन्त्विह मात्रया तत् ॥ व्याधिञ्च कालं च विभाव्य धारेद्रव्याणि भोज्यानि च तानितानि ।

सर्वानुपानेषु वरं वद्नित,

मेध्यं यद्म्भः अधि भाजनस्थम्।
लोकस्य जन्मप्रभृतिप्रशस्तं,
तोयात्मकाः सर्वसारहच दृष्ट्वाः॥

सङ्चेप एषोऽभिहितोऽनुपानेष्वतः परं विस्तरतोऽभिधास्ये। उष्णोदकानुपानं तु स्नेहानामथ शस्यते। ऋते भहातकस्नेहात् स्नेहात्तौवरकात्तथा।। अनुपानं वदन्त्येके तैले यूषाम्लकाञ्जिके। शितोदकं माक्षिकस्य पिष्टान्नस्य च सर्वशः।। दिधिपायसमद्यार्तिविषजुष्टे तथैव च।

केचित् पिष्टामयस्याहु रनुपानं सुखोदकम्। पयोमां सरसो वाऽपि शालि मुद्गादिभोजिनाम्॥

* श्रन्नपाने सिललमेव श्रेष्ठं सर्वरसयोनित्वात् सर्व भूतसात्म्या-जीवनादिगुणयोगाच । (वा०)

[08]

युद्धाध्यातपसन्तापविषमद्यरुजासु च।
माषादेरनुपानन्तु धान्याम्लं दिध मस्तु वा।।
मद्यं मद्योचितानां तु सर्वमांसेषु पूजितम्।
अमद्यपानामुद्दकं फलाम्लं वा प्रशस्यते।।
सीरं धर्माध्यभाष्यस्रीक्षान्तानाममृतोपमम्।
सुरा कृशानां स्थूलानामनुपानं मधूदकम्।।
निरामयाणां चित्रन्तु भक्तमध्ये प्रकीर्तितम्।
स्मिग्धोष्णं मारुते पथ्यं कफे रूचोष्णमिष्यते।।
अनुपानं हितञ्चापि पित्ते मधुरशीतलम्।
हितं शोगितपित्तिभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा।।
अर्कशेलुशिरीषाणामासवास्तु विषार्तिषु।

(सु० सू० अ० ४६

सर्जीषामनुपानानां माहेन्द्रंतोयमुत्तमम्।
सात्म्यं यस्य तु यत्तोयं तत् तस्मै हितमुच्यते ।।
उष्णं वाते कफे तोयं पित्ते रक्ते च शीतलम्।
दोषवद् गुरु वा भुक्तमितमात्रमथापि वा ।।
यथोक्तेनानुपानेन ह सुखमन्नं प्रजीय्यति ।
रोचनं बृंहणं वृष्यं दोषसङ्घातभेदनम् ।।
तपणं मार्वकरं श्रमक्लमहरं सुखम्।
दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम् ।।
बल्यं वर्णकरं सम्यगुनपानं सदोच्यते ।
तदादौ कश्येत्पीतं स्थापयेन्मध्यसेवितम् ।।
पश्चात्पीतं वृह्यित तस्माद्वीक्ष्य प्रयोजयेत ।

अनुपानावश्यकत्वम्

स्थिरतां गतमञ्जित्रमञ्जमद्रवपायिनाम । भवत्यावाधजननमनुपानमतः पिवेत्।।

[64]

निषिद्धानुपाना रोगिणः

न पिवेच्छ्वासकासार्त्ता रोगे चाष्यूर्ध्व जत्रुगे। क्षतोरस्कः प्रसेकी च यस्य चोपहतः स्वरः॥

अनुपानादनुवर्जनीयंकर्म

पीत्वाऽध्वभाष्याध्ययनगेयस्वप्रान्न शीलयेत्। प्रदूष्यामाशयं तद्धि तस्य कण्ठोरसि स्थितम्। स्यन्दाग्निसादच्छ्यादीनामयान् जनयेद्वहून् ॥ गुरुलाववचिन्तेयं स्वभावं नातिवर्त्तते। तथा संस्कारमात्रां न कालांश्वाप्युत्तरोत्तरम् ॥ मन्दकम्मानलारोग्याः सुकुमाराः सुखोचिताः। जन्तवो ये तु तेषां हि चिन्तेयं परिकीर्त्तिता॥ विलनः खरमक्ष्या ये ये च दीप्ताप्रयो नराः। कम्मनित्याश्च ये तेषां नावस्यं परिकीर्त्त्वते॥ सुश्रम्

भोजनोत्तरं कर्म

एवं भुक्त्वा समाचामेचूषप्रहणपूर्व कम्।
भोजने दन्तलप्रानि निर्हत्याचमनं चरेत।।
दन्तान्तर्गतं चान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः।
कुर्यादनिर्हतं तद्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम्।।
दन्तलप्रमनिर्हार्यं लेपं मन्येत दन्तवत्।
नतत्र बहुशः कुर्यादात्रं निर्हरणं प्रति।।

[७६]

१ आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत्। 3 भुक्तवा च समरेन्नित्यमगस्यादीन् सुखाव्हान्।। 2. अनिशेषा च तहारि तिभिश्तिर व्यप्तिकां० प्र०) जीर्णेऽन्ने वर्द्धते वायुर्विद्ग्धे पित्तमेव तु। भुक्तमात्रे कफश्चापि तस्माद् भुक्ते हरेत्कफम्।। धूमेनापोद्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः। प्राककोलकपूरलवङ्गसुमन:फलै: ॥ ताम्बूलपत्रसहितैः सुगन्धैर्वा विचच्णः। भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्रमो गतः॥ कर्पूरजातिककोललवङ्गकटुकाह्वयैः। सचूर्णपूराखदिरं पत्रं ताम्बूलजं शुभम्।। मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम्। ह्नुद्न्तस्वरमलजिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ प्रसेकशमनं हृद्यं गलामयविनाशनम्। प्रभाते पूरामधिकं मध्यान्हे खदिरं तथा।। निशासु चूर्णमधिकं ताम्बूलं भक्षयेत्सदा । आद्यं विषोपमं पोतं द्वितायं भेदि दुर्जरम् ॥ तृतीयाद्नुपातव्यं सुधातुल्यं रसायनम्। पथ्यं सुप्तोत्थिते भुक्तें स्नाते वान्ते च मानवे ॥ रक्तपित्रक्षतक्षीणतृष्णामूच्छोपरीतिनाम्। रूक्षदुर्वलमत्योनां न हितं चास्य शोषिणाम्।। विज्ञेयं च तथा दन्तदुर्बलेक्षणरोगिणाम्। ताम्बूळं नातिसेवेत न विरिक्तो बुसुन्नितः॥ देहद्दकेशद्नताग्निश्रोत्रवर्णवलत्त्यः। शोषः पित्तानिलासं स्याद्तिताम्बूलभन्नणात् ॥ (भा०प्र०)

[00]

ततः पदशतं गत्त्रा वामपार्श्वे≉ तु संविशेत् । शब्दरूपरसान् गन्धान् स्पर्शाश्च मनसः प्रियान् । भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठिति ।।

भोजनोत्तरं वर्जनीयं कर्म /

शयनं चासनं चाति न भजेन्न द्रवाधिकम्। नाग्न्यातपो न प्लवनं न यानं नापि वाहनम्।। (सु०) व्यायामं च व्यवायं च धावनं यानमेव च। युद्धंगीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवांस्त्यजेत।।
(भाविमश्रः)

भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता । आयुरचङ्कममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥

(यो० र०)

शय्या

सुशय्याशयनं हृद्यं पुष्टिनिद्राघृतिप्रदम् । श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ त्रिदोषशमना खट्वा तूली वातकफापहा । भूशष्या वृंहणी वृष्या काष्टपट्टी तु वातला ॥

(भाप्र०)

*—श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्खे तुदक्षिणे । ततस्तद्द्विगुणान् वामे पश्चात्स्वप्याद्यथासुखम् ॥ वामदिशायामनलो नाभेरुध्वैंऽस्ति जन्त्नाम् । तस्मात्तु वामपाश्वैं शयात भुक्तप्रपाकार्थम् ॥ (भा० प्र०) [00]

संवाहनम्

संवाहनं मांसरक्तत्वकप्रसादकरं परम्। ग्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम्।। (भा० प्र०)

वायुसेवनम्

प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद् दाहपक्तिनृत् । स्वेदमूर्च्छापिपासाःनंमप्रवातमतोऽन्यथा ॥ सुखं वातंप्रसेवेत प्रीष्मे शरिद मानवः । निर्वातमायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वादा ॥ (सु० चि० अ० २४)

व्यजनस्यानिलो दाहरवेदमूच्छाश्रमापहः। तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोपशमको मतः॥ वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः। चामरो वस्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा॥ एते दोषजिता वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपृजिताः।

वालव्यजनमौजस्यं मित्तिकादीनपोहिति ॥ (सु० चि० अ० २४)

आतपवर्जन्म्

आतपः पितत्तृष्णाग्निस्वेदमूच्छाभ्रमास्रकृत । दाह्वैवर्ण्यकारी च छाया चैतानपोहति ॥ [सु० चि० अ० २४]

[68]

दिवास्वापविवेकः

दिवास्त्रापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः। मीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वाप्नो निषिध्यते॥

भा० प्र०]

योष्मे चादानस्त्ताणां वर्धमाने च मास्ते।
रात्रीणां चातिसङ्त्रेपादिवास्वप्नः प्रशस्यते॥
प्रोष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वप्नात्प्रकुप्यतः।
रलेष्मिपत्ते, दिवास्वप्नस्तस्मात्तेषु न शस्यते॥
मेदस्वनः स्नेहनित्याः रलेष्मलाः रलेष्मरोगिणः।
दूषीविषार्ताश्च दिवा न शयीरन् कदाचने॥
हलीमकः शिरःशूलं स्तैमित्यं गुरुगात्रता।
अङ्गमर्दोऽग्निनाशश्च प्रलेपो हृद्यस्य च॥
शोथारोचकहृलासपोनसार्धाव भेदकाः।
कोठोऽरुः पिडकाः कण्डूस्तन्द्रा कासो गलामयाः॥
स्मृतिबुद्धिप्रमोहश्च संरोधः स्रोतसां ज्वरः।
इन्द्रियाणामसामध्ये विषवेगप्रवर्तनम्॥
भवेन्नृणां दिवास्वप्नस्याहितस्य निषेवणात्।
तस्माद्धिताहितं स्वप्नं बुद्ध्वा स्वप्यात्सुखं बुधः॥

[चरकः]

भोजनात्प्रागदिवास्वापात्पाषाग्गमपि जीर्यति । भोजनान्ते दिवास्वापाद्वातपित्तकफोद्भवः ॥

[यो० र०]

गीताध्ययनमद्यस्त्रीकर्मभाराध्वकर्षिताः । अजीर्णिनः चताः चींग्णां वृद्धाः बालास्तथाऽवलाः ॥ तृष्णातीसार्श्वलाताः श्वासिनो हिक्किनः कृशाः । पतिताभिहतोन्मत्ताः क्लान्ता यानप्रजागरैः ॥

[60]

क्रोधशोकभयक्षान्ता दिवास्त्रप्नोचिताश्च ये। सर्व एते दिवास्त्रप्तं सेवेरन् सार्वकालिकम्।। धातुसाम्यं तथा होषां बलं चाप्युपजायते। श्लेष्मा पुष्णाति चाङ्गानि स्थैयं भवति चायुषः॥ [च० सू० अ० २१]

दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा सात्म्यीकृता तु यै: । न तेषां स्वपतां दोषो जाम्रतां चोपजायते ॥ [सु०]

उचितो हि दिवास्वापो नित्यं येषां शरीरिगाम्। वातादयः प्रकुष्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥ [भा०प्र०]

दिवामैथुन निषेधः

अवशो यदि सेवेत तदा प्रीष्मवसन्तयोः ॥
[भा० प्र०]

मध्यन्दिनीयंकर्म

धर्मोत्तराभिरर्थ्याभिः कथाभिस्त्रिगुणात्मभिः । मध्यंदिनस्य गमयेदिष्टशिष्टसहायवान् ॥

[अ० सं०]



सन्ध्यायां निषिद्धकर्माणि

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेदुधः । आहारं मेथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि ॥

[63]

भोजनाजायते व्याधिमें थुनाद् गर्भवैकृतिः। निद्रया निःस्वता पाठादायुर्हानिगते भेयम्॥

[भा०प्र०]

ज्योत्स्नादीनां गुणाः

ज्योत्स्ना शीता स्मरानन्दप्रदा तृट्पित्तदाहहृत्। ततो हीनगुणः कुर्यादवश्यायोऽनिलं कफम्॥ तमो भयावहं मोहदिङ्मोहजनकं भवेत्। पित्तहृत्कफहृत् कामवर्धनं कृमकृत्र तत्॥

[भा० प्र०]

पृथकपृथक् सर्वयामकर्तव्यम्

प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत्। प्रहरद्वयं शयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

[दत्तसमृति:]

रात्रिभोजनम्

रात्रौ तु भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे । किञ्चिदूनं समदनीयाद्दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥

िभा० प्र०]

शयनासनम्

भुक्त्वा पूर्वोक्तमाचारं कृत्वा हृष्टमनाः शुचि :। देशे शुचावनाकीर्णे द्वित्राप्तपरिचारकः ।। युक्तोपधानं स्वास्तीर्णे विस्तीर्णविषमं सुखम् । जानुतुल्यं मृदु शुभं सेवेत शयनासनम् ॥

[(2]

प्राग्दिज्ञण्हिराः पादावकुर्वाणो गुरून् प्रति । पूर्वापरिदशो भागे धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ [अ० सं०]

निशि स्वस्थमनास्तिष्टेन्मौनी दण्डी सहायवान् । एवं दिनानि मे यान्तु चिन्तयेदिति सर्वदा ॥ [च्रे॰ कु॰]

व्यवायः

शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा। अव्यवायान्मेहमेदोष्टुद्धिः शिथिलता तनोः॥ [भा० प्र०] रात्रौ व्यवायं कुर्वीत योषिता निजया सह। (स्रे० कु०)

विवाहवयः 🔊 🦘

अथास्मे पञ्चिवंशतिवर्षाय द्वादशवर्षा पत्नीमावहेत् , पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्त्यतीति । स्रि० शा० अ० १० ो

गर्भाधानकालः

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्यौ तो जानीयात्कुशलो भिषक्।। ऊनषोडशक्षवर्षीयामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ‡। यदा धत्ते पुमान् गर्भे कुत्तिस्थः स विपद्यते॥

* 'ऊनद्वादशवर्षायाम्' इति इस्तलिखितपुस्तकस्थः पाठः । [निर्णयसागरीयडल्हणटीकोपेतसुश्रुतटिप्पणी]

सङ्गमनविषये वाग्भटमतम्

‡ पूर्णपोड्शवर्षा स्त्री पूर्णविशेन सङ्गता ।

शुद्धे गर्भाशये मार्गेरक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥

[८३]

जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्वेलेन्द्रियः। तस्माद्त्यन्तवालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

(सुश्रुतः)

ऋते वै पोडशाद्वर्षात्तथातिकान्तसप्ततेः।
स्त्रियं कामयमानस्य जायते हि वलत्तयः॥ (स्ते० कु०)
वालेति गीयते नारी यावद्वर्पाणि षोडशः।
ततस्तु तरुणी ह्रोया द्वात्रिशद्वत्सराविधः॥
तदूष्वमधिरुढा स्यात्पञ्चाशद्वत्सराविधः॥
वृद्धा तत्परतो ह्रोया सुरतोत्सववर्जिता॥

(भा०प्र०)

अभिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामळङ्कृताम्। अभिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामळङ्कृताम्।। सेवेत प्रमदां भुक्त्या वाजाकरण्यहितः। (सु० चि० अ० २४)

निदाधशरदोर्बाला हिता विषयिणी मता। तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः॥ (भा०प्र०)

वाला नवीनसुरते सुदिता तमिस्रे. सञ्जायते ३थ तरुणी महति प्रकाशे।

वीर्यवन्तं सुतं सुते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः । रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥ [वा॰ शा॰ श्र॰ १]

* कुलं च शीलंच सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च ।

एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या वुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

(ब्या॰ स्मृ॰)

[88]

प्रौढ़ा प्रकाशतमसोः समुपैति सौख्यं, वृद्धा तु न कचित जीवितहारिणी सा ॥ (वात्सायनः)

नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम् ।
तरुणी हासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयते जराम् ॥
सद्योमांसं नवं चान्नं बाला स्त्री द्वीरभोजनम् ।
घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणकराणि षट् ॥
पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धा वालाकस्तरुणं दिध ।
प्रभाते मेथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥
वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुण्य्वमवाप्नुयात् ।
वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुण्यः स्थविरायते ॥

(भा०प्र०)

ऋतुकाले तु सुरतमवश्यं कारयेद्ध्यः। स्त्रीनिःश्वासहतो ना हि दुर्भगत्वमवाप्नुयात्॥

(भा०प्रक)

त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदां नरः। सर्वेष्वृतुषु घर्मे तु पक्षात्पक्षाद् व्रजेद् बुधः॥ (सु॰ चि० अ० २४)

सेवेत कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे। प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे॥ ज्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः।

(चरकः)

शोते रात्रौ दिवा प्रीष्मे वसन्ते तु दिवा निशि। वर्षासु वारिद्ध्वाने शरत्सु सरिस स्मरः॥

(भा०प्र०)

[64]

कुचेलां च कुशीलां च विधवां च परिश्लयम्। नारीं नीचकुलोद्भूतां त्यजेत्सम्यग्विचच्हणः॥

(च्ले॰ कु॰)

रजस्वलामकामाञ्च मिलनामित्रयां तथा। वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम्।। हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमिन्वताम्। सगोत्रां गुरुपत्नीञ्च तथा प्रत्रजितामित्।। सन्ध्यापर्वस्वगम्याञ्च नोषेयात्प्रमदां नरः। गोसर्गे चार्धरात्रे च तथा मध्यन्दिनेषु च। लज्जासमावहे देशे विवृतेऽशुद्ध एव च।। क्षुधितो व्याधितश्चैव क्षुव्धिचत्तश्च मानवः। वातविण्मूत्रवेगी च पिपासु रतिदुर्बलः।।

(सु० चि० अ० २४)

नामेध्यां नाशस्तां नानिष्टक्तपाचारोपचारां नादत्तां नादिक्षणां नाकामां नान्यकामां नान्यक्षियं नान्ययोनि नायोनौ न चैत्य चत्वरचतुष्पथोपवनश्मशानाधातनसिळ्ळौषधिद्विजगुरुसुराळयेषु न सन्ध्ययोः नातिथिषु क्ष नाशुचिर्नाजग्धभेषजा नाप्रणीत सङ्कल्पो नानुपिथतप्रहर्षोनाभुक्तवान् नात्यिशतो न विषमस्थो न मूत्रोचारपीडितो न श्रमञ्यायामोपवासक्रमाभिहतो नाऽरहिस ज्यवायं गच्छेत्। (चरकः)

नाजग्धभेषजोऽत्रवाक्ये भेषजशब्देन वाजीकरणौषधं प्राह्मम्। उक्तञ्चतथा भगवता चरकेणः—

अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
 ब्रह्मचारी भवेज्ञित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥

(भनु० अ० ४)

[८६]

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषोनित्यमात्मवान् । तदायत्तौ हि धर्मार्थौ प्रीतिश्च यश एव च ॥ अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यःसंप्रप्रहर्षणम् । वाजीवातिवलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियः ॥ भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते । जीर्यतोऽप्यक्षयं शुक्रं फलवद्येन दरयते ॥ प्रभूतशाखः शाखीव येन चैत्यो यथा महान् । भवत्यच्यो बहुमतः प्रजानां सुबहुप्रजः ॥ सन्तानमूलं येनेह प्रत्य चानन्त्यमर्नुते । यशः श्रियं वलं पुष्टिं वाजीकरणमेव तत्।। पुत्रस्यायतनं होतद् गुणाश्चेते सुताश्रयाः। बाजीकरणमत्रयं च त्तेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी।। हृष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्थाः परं प्रीतकराः स्मृताः । किं पुनः स्त्रीशरीरे ये सङ्घातेन व्यवस्थिताः ॥ सङ्घातो हीन्द्रियार्थानां स्त्रीषु नान्यत्र विद्यते । स्त्र्याश्रयो हीन्द्रियार्थो यः स प्रीतिजननोऽधिकम् ॥ स्त्रीषु प्रीति विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम् । धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ सुरूपा यौवनस्था या लत्त्रणैर्या विभूषिता। या वश्या शिविता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता ।। नानाभुक्त्या तु लोकस्य दैवयोगाच योषिताम्। तं तं प्राप्य विवर्धन्ते नरं रूपाद्यो गुणाः ॥ वयोरूपवचोहावैर्या यस्य परमाङ गना। प्रविशत्याञ्च हृद्यं दैवाद्वा कर्मणोऽपि वा।। हृदयोत्सवरुपा या या समानमनोरमा । समानसत्त्वा या वश्या या यस्य प्रीयते प्रिये ॥

[00]

या पाश्भूता सर्वेषामिन्द्रियाणां परेर्गुणैः। यया वियुक्तो निस्नीकमरतिर्मन्यते जगत्। यस्या ऋते शरीरं ना धत्ते शून्यमिवेन्द्रियै: । शोकोद्वेगारतिभयैर्यां दृष्ट्रा नाभिभूयते ॥ याति यां प्राप्य विस्नम्भं हृष्ट्रा हृष्यत्यतीव याम् । अपूर्वामिव यां याति नित्यं हर्षातिवेगतः ॥ गत्वा गत्वाऽपि बहुशो यां तृप्तिं नैव गच्छति । सा स्त्री वृष्यतमा तस्य नानाभावा हि मानवाः ॥ अतुल्यगोत्रां वृष्यां च प्रहृष्टां निरूपद्रवाम् । शुद्धस्नातां व्रजेव्नारीमपत्यार्थी निरामयः।। अच्छायश्चैकशाखश्च निफलश्च यथा द्रमः। अनिष्टगन्धश्चैकश्च निर्पत्यस्तथा नरः॥ चित्रदीपः सरः शुष्कमधातुर्धातुसन्निभः । निष्प्रजस्तृणपूळीति ज्ञातञ्यः पुरुषाकृति:॥ अप्रतिष्ठश्च नम्रश्च शून्यश्चैकेन्द्रियश्च ना । मन्त्रवयो निष्क्रियश्चेत्र यस्यापत्यं न तिद्यते ॥ वहुमूर्तिबहुमुखो बहुव्यूहो बहुक्रियः। वहुचक्ष्वहुज्ञानो वह्नात्मा च बहुप्रजः॥ मङ्गल्योऽयं प्रशस्तोऽयं धन्योऽयं वीर्यवानयम्। बहुशाखोऽयमिति च स्त्यते ना बहुप्रजः।। प्रोतिर्बलसुखं वृत्तिर्विस्तारो विपुलं कुलम्। यशो लोकाः सुखोदकीस्तुष्टिश्चापत्यसंश्रिता ॥ तस्मादपरयमन्विच्छन् गुणांश्चापत्यसंश्रितान् । व जीकरणनित्यः स्यादिच्छन् कामसुखानि च ॥ रजस्वलां प्राप्तवतो नरस्यानियनात्मनः ॥ दृष्टचायुस्तेजसा हानिरधर्मश्च ततो भवेत्।

[66]

लिङ्गिनीं गुरुपतीश्च सगोत्रामथ पर्वसु। वृद्धाञ्च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवितत्त्यः ॥ गर्भिण्यां गर्भपीड़ा स्याद् व्याधितायां वलत्त्यः ॥ हीनाङ्गी मलिनां द्वेष्यां कामं बन्ध्यामसंवृते । देशेऽशुद्धे च शुक्रस्य मनसश्च त्तयो भवेत्।। क्षुधितः क्षुब्धचित्तश्च मध्यान्हे तृषितोऽवलः। स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपञ्च विन्द्ति ॥ व्याधितस्य रुजा प्लीहा मृत्यर्मूच्छी च जायते। प्रत्यूषस्यर्द्धरात्रे च वातिपत्ते प्रकुप्यतः ॥ तिर्य्यग्योनावयोनौ च दुष्टयोनौ तथैव च। उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रस्य च त्तयः ॥ उचारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे। उत्ताने च भवेच्छीघं शुक्राश्मर्य्यास्तु सम्भवः॥ रेतसश्चातिमात्रन्तु मूर्द्वावरणमेव च। स्थितावुत्तानशयने विशेषेणैव गर्हितम् ॥ क्रीड़ायामपि मेधावी हितार्थी परिवर्जयेत्। सर्वं परिहरेत्तस्मादेतह्रोकद्वये हितम । शुक्रं चोपस्थितं मोहान्न सन्धार्य्यं कथञ्चन ।।

(सु० चि० अ० २४)

न च न्युब्जां पार्श्वगतां या संसेवेत, न्युब्जाया वातो बल-वान् स योनि पीडयति पार्श्वगताया दक्तिणे पार्श्वे इलेष्मा संच्युतोऽपिद्धाति गर्भाशयं, वामे पित्तं पार्श्वे; तस्याः पीडितं विदहति रक्तशुक्तं; तस्मादुत्ताना सती बीजं गृह्वीयात्, तस्या हि यथास्थानमविष्ठन्ते दोषाः। पर्याप्ते चैनां शीतोदकेन परि-षिद्धेत्। तत्रात्यशिता श्रुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्ता क्रुद्धाऽन्यं च पुमांसमिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा

[68]

नारी गर्भ न धत्ते विगुणां वा प्रजां जनयित । अतिवालामितवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत ; पुरुषेऽत्येत
एव दोषाः अतः सर्वदोषवर्जितौ संसृज्येयातां संजातहर्षो मैथुने
चानुकूलाविष्टगन्धं स्वास्तीणं सुखं शयनमुपककल्य मनोज्ञं हितमशनमशित्वा; नात्यशितौ दिज्ञणपादेन पुमान वामपादेन स्त्री
चारोहेत्; तत्र मन्त्रं प्रयुक्षीत—अहिरिस आयुरिस सर्वतः
प्रतिष्ठाऽसि धाता त्वा दधातु विधाता त्वा दधातु ब्रह्मवचसा
भवेदिति।

"ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ । भगोऽथ मित्रावरुणौ पुत्रं वीरं द्धातु मे ॥" इत्युक्त्वा संवसेताम् ॥ (चे॰ शा० अ० ८)

अन्यथागमने दोषाः

भ्रमक्कमोरुदौर्बल्यबलधात्विन्द्रियत्तयः । अपर्वमरणं च स्यादन्यथागच्छतः स्त्रियम् ॥

(वा०)

निषिद्धव्यवायाः

अत्याञ्चितोऽघृतिः क्षुद्वान् दुःश्थिताङ्गः पिपासितः। बालोवृद्धोऽन्यवेगार्तः त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ (अ० हृ०)

अतिव्यवाये हानिः

अतिस्त्रीसम्प्रयोगाच रचेदात्मानमात्मवान् ॥ शूळकासन्त्ररश्वासकारयपाण्ड्वामयच्चयाः ॥

[90]

अतिव्यवायाजायन्ते रोगाश्चाचेपकादयः । अतिप्रसंगाद्भवति शोषः शुक्रक्षयावहः ॥ (सु० चि० अ० २४)

स्त्रीषुसंयमेलाभाः

समृतिमेधायुरारोग्यपृष्टीन्द्रिययशोबलैः । अधिका मन्द्जरसो भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ (वा०)

सुरतान्ते सेवनीयम् /

स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डखाद्य-शीताम्बुदुग्धरसमूषसुराप्रसन्नाः । सेवेत चानुशयनं विरती रतस्य-तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेतिधाम ।।

(वाग्भटः)

रजस्वलाचर्या

मासि मासि रजःस्रोणां रसजं स्रवित त्र्यहम् । वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः च्रयम् ।। (वा०) आर्तवस्रावदिवसादृतुः षोडशरात्रयः । गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः ।। (भा० प्र०) पीनप्रसन्नवद्नां प्रक्षिन्नात्ममुखद्विजाम् । नरकामां प्रियकथां स्नस्तकुक्ष्यक्षिमूर्धजाम् ।। स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुज्ञघनस्फिचम् । हर्षोत्सुक्यपराञ्चापि विद्यादृतुमतीमिति ।। (स० शा० अ०३)

[9?]

ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वाप्राञ्जनाश्रु-पातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदनप्रधावमहसनकथनातिशब्दश्रव-णावलेखनानिलायासान् परिहरेत्। किङ्कारणं १ दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलोऽञ्जनादन्धो रोदनादिकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद्दुःख-शीलस्तैलाभ्यङ्गात् कुष्ठी नखापकर्त्तनात् कुनखी प्रधावनाच-ञ्चलो हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठतालुजिह्नः प्रलापी चातिकथनादृति-शब्दश्रवणाद्विघरोऽवलेखनान्खलितमारुतायाससेवनादुन्मतो गर्भी भवतीष्येवमेतान् परिहरेत्। दर्भसंस्तरशायिनीं करतल-शरावपणान्यतमे हविष्यभोजिनीं त्यहच्च भर्त्युः संरचेत्। ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवाससमलङ्कृतां कृतमंगलस्वस्तिवा-चनां भर्त्तारं दर्शयेत्। तत् कस्य हेतोः १

पृर्वे पश्येद्यतुस्नाता यादशं नरमङ्गना । तादशं जनयेत पुत्रं भक्तीरं दर्गयेदतः ॥ ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत् । कम्मीन्ते च क्रमं ह्येनमारभेत विचन्नणः ॥

गर्भाधानविधिः

ततोऽपराह्वे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः स्निग्धः सर्पिः श्ली-राभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमा-षोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य विकल्प्यै-वब्चतुर्थ्या षठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः।

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च । प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं वल्रञ्च दिवसेषु वै ॥

अतः परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवस्यामेकादश्याञ्च स्त्रीकामः । त्रयोदशीप्रभृतयो निन्दाः । युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथावला । पुष्पकालेशुचिस्तस्मादपत्यार्थीस्त्रियंत्रजेत् ॥

(सु०)

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां भवति।
यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते। द्वितीयेऽप्येवं
सूतिकागृहे वा। तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुर्वा भवति।
चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दोर्घायुश्च भवति। न च प्रवर्तमाने रिक्ते
बीजं प्रविष्टं गुण्करं भवति। यथा नद्यां प्रतिस्रोतःप्राविद्रव्यं
प्रित्तितं प्रतिनिवर्तते नोर्ध्वं गच्छित तद्वदेव द्रष्टव्यम्। तस्मान्नियमवती त्रिरात्रं परिहरेत्। अतः परं मासादुपेयात्।

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यम्बुजं यथा । ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिःसंत्रियते यथा ।।

(सु० शा० अ० २)

स्वप्नः

निद्राहेतुः

यदा तु मनिस क्लान्ते कर्मात्मानः क्रमान्विताः । विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्विपिति मानवः ॥

(चरकः)

देहं विश्रमते यस्मात्तस्मान्निद्रा प्रकीर्तिता ।

निद्रान्तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति सा स्वभावत एव सर्व्वप्राणिनोऽभिरष्टशति॥

तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी सा प्रलयकाले। तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति। रजोभूयिष्ठानामनिमिन्तम्। सत्वभूयिष्ठानामर्घरात्रे। चीणश्लेष्मणामनिजवहुळानां मनः शरीराभितापवताश्च नैव सा वैकारिकी भवति।।

[83]

भवन्ति चात्र । हृदयञ्चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनां । तमोऽभिभूते तस्मिस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ निद्राहेतुस्तमः सत्वं बोधने हेतुरुच्यते । स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥

(सु॰ शा॰)

िनिद्राप्रकाराः

तमोभवा ऋष्मसमुद्भवा च मनः शरीरश्रमसंभवा च। आगन्तुकी व्याघ्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा॥ रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवद्नित निद्राम्। तमोभवामाहुरघस्य मूळं, शेषं पुनर्व्याधिषु निर्दिशन्ति॥

निद्राशक्तिः

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कारर्यं वलावलम् । वृषता क्षीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ॥ (चरक सू० अ० २१)

युक्तनिद्रागुणाः

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्धचा सत्या बुद्धिरिवागता॥
(चरक सु० अ० २१)

पुष्टिवर्णवलोत्साहमग्निदीप्तिमतन्द्रिताम्। करोति धातुसाम्यञ्च निद्रा काले निषेविता।।

(सु॰ चि॰ अ॰ २४) देहवृत्तौ यथाऽऽहारः तथा स्वप्नः सुखो मतः । (चरक सू॰ श्र॰ २१)

[98]

यथाकालमतो निद्रां रात्री * सेवेत सात्म्यतः ॥ (वा० सू० अ० ७)

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरित पित्तहत्। कफं करोति वपुषः पुष्टिसौख्यं तनोति हि॥ (भा० प्र०)

अयुक्तनिद्रादोषाः

अकालेऽतिप्रसंगाच नच निद्रा निषेविता । सुखायुषी परा कुर्यात्कालरात्रिरिवापरा ॥ (च० सू० अ० २१)

अकालशयनान्मोहञ्बरस्तैमित्यपीनसाः। शिरोरुक्शोफह्रहासस्रोतोरोधाग्निमन्दताः।

(वा० सू०)

भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः। (मा० नि०)

मितस्वप्ने लाभः

तस्मान्नजागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्रव्च वर्जयेत्। ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत्।। अरोगः सुमना द्येवं बलवर्णान्वितो वृषः। नातिस्थूलकृशः श्रीमान् नरो जीवेत् समाः शतम्।। (सु० शा० अ० ४)

*—श्रहोरात्रे विभजते सूर्योमानुप्रदैविके । रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायैकर्मणामहः ॥

(मनुः)

[94]

निद्राविशेषाः

रात्रो जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा। अरूक्षमनभिष्यन्दित्वासीनप्रचलायितम् ॥ (च० सू० अ० २१) शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मद्नम्।

कफमेदोविषार्तानां रात्रौ जागरणं हितम्। (सु० शा० अ०४)

असात्म्याज्ञागराद्धें प्रातः सुप्याद्भुक्तवान् । (वा० सू० अ० ७)

निद्रानाशे हेतवः

निद्रानाशोऽनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयाद्पि । सन्भवत्यभिघाताच प्रत्यनीकैः प्रशाम्यति ॥ (सु० शा० अ० ४)

निद्रानाशाद्रोगोत्पत्तिः

निद्रानाशादङ्गमर्दशिरोगौरवजृम्भिकाः । जाङ्यं ग्लानिभ्रमापक्तितन्द्रारोगाश्च वातजाः ॥ (वा० सू० अ० ७)

निद्रानयनोपायाः

कान्तावाहुलतारलेघो निर्वृत्तिः कृतकृत्यता । (वा० **स्**०)

अभ्यंगोत्सादनं स्नानं प्राम्यान् पौदका रसाः । शाल्यन्नं सद्धि श्लीरं स्नेहो मद्यं मनः सुखम् ॥

[98]

मनसोऽनुगुणा गन्धाः शब्दाः संवाहनानि च । चक्षुषस्तर्पणं लेपः शिरसो वदनस्य च ॥ स्वास्तीर्णं शयनं वेश्म सुखं कालस्तथोचितः । आनयन्त्यचिरान्निद्रां प्रनष्टा या निमित्ततः ॥ (च० सू० अ० २१)

एतान्येव च भूयिष्ठं निद्रालुः परिवर्जयेत् । (अ० सं० सू०)

अहितनिद्रावारणोपायाः

(निद्रानाशहेतवो वा)

कायस्य शिरसञ्जैव विरेकश्छर्दनं भयम् । चिन्ता क्रोधस्तथा धूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥ उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमोजयः । निद्राप्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम् ॥ एत एव च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः । कार्यं कालो विकारश्च प्रकृतिर्वायुरेह च ॥ (च० सू० अ० २१)

नियतसमयेनिद्रागमनोपायः

ब्रह्मचर्यरते र्याम्यसुखनिस्पृहचेतसः । निद्रासन्तोषतृप्तस्यस्वंकाळं नातिवर्तते ॥ (वा० सू० अ० ७)

निशान्ते जलपाने गुणाः

कासश्वासातिसारज्वरपिडककटीकुष्ठकोठप्रकारान् , मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगळशिरःकर्णशूलाचिरोगान् ।

[90]

ये चान्ये वातिपत्तत्तत्तत्तकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः, तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः॥ (भा० प्र०)

ब्रह्मचर्यम्

आहारशयनब्रह्मचर्येंर्युक्तचा प्रयोजितैः। शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः॥ (वा०सू०अ०७)

आहारो वर्णितः पूर्वं शयनञ्चापि वर्णितम् । स्वास्थ्यप्रदं सदा सेव्यं ब्रह्मचर्यन्तु वर्ण्यते ॥ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेच्चणं गुह्मभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्चं क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥ एतन्मेथुनमष्टाङ्गं प्रवद्न्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यम् — (या० व०) आयुरारोग्यसौख्यदम् ॥

वीर्यरचोपायाः

"प्रोक्तं मैथुनमष्टाङ्गं त्यजेद्ब्रह्मपरोऽथवा।" ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारानिरतः सदा। पर्ववर्जं ब्रजेचेनां तद्ब्रतो रतिकाम्यया॥

(मनुः)

तीक्ष्णाम्नाद्यतिसेवाश्च जह्यान्नित्यमतिन्द्रतः । एवं रज्ञितवीर्यः स्यात्स्वस्थवृत्तपरायणः ॥

*-अम्भसः प्रस्तीरष्टौरवाबनुदिते पिबेत् । वातपित्तकफान् जिल्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ [30]

ब्रह्मचर्यफलम्

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् । अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मेलम् ॥ (वा० सू०)

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः। क्षये द्यस्य वहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति।। नैव देवा न गन्धर्वो न पिशाचा न राज्ञसा। न चान्ये स्वयमिष्ठिष्टमुपष्ठिश्यन्ति मानवम्।।

(च०)

ऋतुचर्या

अथात ऋतुचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः । कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भूरनादिमध्यनिधनोऽत्र रसव्यापत्संपत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते स सूक्ष्मामिष कलां न लीयत इति कालः संकलयित कालयित वा भूतानीति कालः । तस्य संवत्सरात्मनोभगवानादित्यो गितविशेषेणाचिनिमेषकाष्ठाकलामुहुत्तीहोरात्रपक्षमासत्त्वयनसंवत्-सरयुगप्रविभागं करोति । तत्र लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽचिनिमेषः । पञ्चदशाक्षिनिमेषाः काष्ठा । त्रिंशत्काष्ठाः कलाः । विश्वतिकलोमुहुर्तः कलादशभागश्च । त्रिंशनमुर्हुर्त्तमहोरात्रम् । पञ्चद्दशाहोरात्राणि पन्नः । स च द्विविधः शुक्क कृष्णश्च तौ मासः ॥

[99]

शीतोष्णवर्षल्च्याश्चन्द्रादित्ययोः कालविभागकरत्वाद्यने हे भवतो द्विणमुत्तरञ्च । अथ खल्वयने हे युगपत्संवत्सरो भवति । ते तु पञ्च युगमिति संज्ञालभन्ते । स एप निमेषादियुगपर्यन्तः कालश्च-कवत्परिवर्तमानः कालचक्रमुक्तैयत इत्येके ।

(सु० सू० अ०६) तस्याशिताद्यादाहारद्वालं वर्णश्च वर्धते। यस्यर्तुसात्म्यं विदितं चेष्टाहारत्यपाश्चर्यम्।।

इह खलु संवत्सरं षडंगमृतुविभागेन विद्यात्। तत्रादित्य-स्योदगयनमादानं च त्रीनृतून् शिशिरादीन् प्रीष्मान्तान् व्यवस्येत् वर्षादीन् पुनर्हेमन्तान्तान् दक्षिणायनं विसर्गं च।

विसर्गे च पुनर्वायवो नातिरूक्षाः प्रवान्तीतरे पुनरादाने, सोमश्चान्याहतवलः शिशिराभिर्भाभिरापूरयञ्जगदाप्यायति राख-दतो विसर्गः सौम्यः आदानं पुनराग्नेयं, तावेतावर्कवायू सोमश्च कालस्वभावमार्गपरिगृहीताः कालर्तुरसदोषदेहबलनिर्वृत्तिप्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते ।

तत्र रविभीभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीत्ररूज्ञाश्चोप-शोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मेष्ट्युषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो रूज्ञान् रसान् तिक्तकषायकटुकांश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्वल्यमा-वहन्ति ।

वर्षाशरद्धेमन्तेष्वृतुषु तु दक्षिणाभिमुखेऽर्के कालमार्गमेघवा-तवर्षाभिहतप्रतापे, शशिनि चाव्याहतवले, माहेन्द्रसिललप्रशान्त-संतापे जगत्यरूक्षा रसाः प्रवर्धन्तेऽम्ललवणमधुराः; यथाक्रमं तत्र बलमुपचीयते नृणामिति ॥

भवन्ति चात्र मध्ये मध्यबलं, त्वंते श्रेष्ठमग्रे च निर्दिशेत्। आदावन्ते च दौर्बल्यंविसर्गादानयोर्नृशाम्॥ (च० सू० अ०६)

पाढ्य - पुस्तनः। वसाग्

[१००]

इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रायृषःषडृतवोक्ष्मवन्ति दोषोपचयप्रकोषोपश्चमिनिमत्तम्। ते तु भाद्रपदाद्येन द्विमासिकेन व्याख्याताः । तद्यथा । भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षा । कार्त्तिकमार्गशीषौंशरत् । पौषमायौ हेमन्तः । फाल्गुनचैत्रौ वसन्तः । वैशाखज्येष्ठौ प्रीष्मः । आषाद्ध्रावणौ प्रावृहिति । तत्र वर्षास्वोषधयस्तरुण्योऽल्प्चीर्थ्या आपश्चाप्रसन्नाः चितिमलप्रायास्ता उपयुज्यमाना नभिस मेघावते जलप्रक्षिन्नायां भूमौ क्षिन्न-

टिप्पणी-

*—चयकोपशमा यिसम् दोषाणां सम्भवन्ति हि । ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु सङ्क्रमात् ॥ श्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृड् मिथुनकर्कयोः । सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥ धनुर्प्राहौ च हेमन्तौ वसन्तः कुम्भमीनयो ।

(शा० सं०)

संशोधनमधिकृत्येते वर्षाद्य ऋतवः सञ्चयादिज्ञानार्थे पृथगुक्ता भगवता सुश्रुतेन । तथैव चरकेणाऽपि रोग भिषग्जितीये विमाने—

'हेमन्तो प्रीष्मो वर्षा चेति शीतोष्ण्वर्षस्यास्त्रय ऋतवो भवन्ति । तेषामन्तरेष्वितरे साधारण स्रक्षणास्त्रय ऋतव प्रावड्शरद्वसन्ता इति । प्रावृडिति प्रथमः प्रविष्टः कालः तस्यानुबन्धो हि वर्षा, एवमेते संशोधनमधिकृत्य षड् विभज्यन्ते ऋतव इति ।

(च० वि० स्था० अ०८)

शिशिरादयस्तु रसं वल्रञ्चिधकृत्योक्ताः। अन्ये त्वन्यथा व्याख्यानयन्ति—गङ्गाया दक्षिणे कूले

[303]

देहानां प्राणिनां शीतवातिबष्टव्यामीनां विद्ह्यन्ते विदाहात् पित्त-सञ्चयमापादयन्ति स सञ्चयः शरिद् प्रविरलमेघे वियत्युपशुष्यति पञ्केऽकेकिरणप्रविलापितः पेत्तिकान् व्याधीन् जनयित । ता एवौ षधयः कालपरिणामात् परिणानवीर्व्या वलवत्यो हेमन्ते भवन्त्यापश्च प्रसन्नाः स्निग्धा अत्यर्थं गुर्व्यस्ता उपयुज्यमाना मन्द्किरण त्वाद्भागेः सतुपारपवनोपस्तिम्भतदेहानां देहिनामविद्ग्धाः स्नेहा-च्छत्याद्गौरवादुपलेपाच श्लेष्मणः सञ्चयमापादयन्ति स सञ्चयो वसन्तेऽकरिशमप्रविलापित ईषत्स्तव्यदेहानां देहिनां श्लेष्मकान् व्याधीन् जनयित । ता एवौषधयो निदाघे निःसारा रूजा अतिमात्रं लष्ट्यो भवन्त्यापश्च ता उपयुज्यमानाः सूर्य्य प्रतापोपशोषितदेहानां देहिनां रौक्ष्याञ्चयुत्वाद्वशेद्याच्च वायोः सञ्चयमापादयन्ति स सञ्चयः प्रावृषि चात्यर्थं जलोपिक्वत्रायां भूमौ क्विन्नदेहानां प्राणिनां शीतवातवर्षेरितो वातिकान् व्याधीन् जनयित । एवमेष दोषाणां सञ्चयप्रकोपहेतुरुक्तः।

तत्र वर्षाहेमन्तत्रीष्मेषु सञ्चितानां दोषाणां शरद्वसन्तप्रावृट्

टिप्पणी

वर्षा बहुं भवति तेन तत्र प्रावृहादिक्रमः। गङ्गोत्तरे कूले शीतं वहु भवति तेन तत्र हेमन्त शिशिरौ भवतः। उक्तं हि काश्यपेन —

भूयो वर्षति पर्जन्यो गङ्गाया दिन्तणे जलम्। कित प्रावृङ्वर्षाख्यौ ऋतू तेषां प्रकल्पितौ ॥ गङ्गाया उत्तरे कूले हिमवदम्बुसङ्गमे। भूयः शीतमतस्तेषां हेमन्तिशिशावृत्॥ इति॥ अयंगयदासाचार्युण दूषित इति डल्ह्गाः।

[१०२]

सु च प्रकृपितानां निर्हरणं कर्त्र व्यम् । तत्र पैत्तिकानां व्याधीना-मुपशमो हेमन्ते रलैक्मिकाणां निदाघे वातिकानां घनात्यये स्वभा-वत एव त एते सञ्चयप्रकोपोशमा व्याख्याताः ।

तत्र पूर्विह वसन्तस्य लिङ्गं मध्याहे प्रीष्मस्यापराहे प्रावृपः प्रदोषे वार्षिकं शारदमर्छरात्रे प्रत्यूषमि हैमन्तमुपलक्षयेत्। एवमहोरात्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षलक्षणं दोषोपचयप्रकोपो पशमेर्जानीयात्।

त्त्राव्यापन्नेष्वृतुष्वव्यापन्ना ओषधयो भवन्त्यापश्च ता उप-

युज्यमानाः प्राणायुर्वेलवोय्यौं जस्कर्यो भवन्ति ।

ऋतूनामतं अध्वमव्यापन्नानां छत्तणान्युपदेक्ष्यामः । वायुर्वात्युत्तरः शीतो रजोधूमकुठा दिशः । छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जठाशयाः ॥ दर्पिता ध्याङ् ज्ञुख्डगाह्ममहिषोरभ्रकृञ्जराः । रोध्रियङ्गपुत्रायाः पुष्पिता हिमसाह्ये ॥ ६०००

रिश्ति शिशिरे शीतमधिकं वातनृष्ट्याकुला दिश । । शेषं हेमन्तवत् सन्व विज्ञेयं लक्षणं बुधैः ॥

वश्यतः दिशो वसन्ते विमलाः काननैरुपशोभिताः ।
किंशुकाम्भोजवकुळचूताशोकादिपुष्पितैः ।।.
कोकिळाषटपदगणरुपगीता मनोहराः ।
दक्षिणानिलसंवीताः सुमुखाः पल्वलोङ्ज्वलाः ॥
श्रीष्मे तीक्ष्णांशुरादित्यो मारुतो नैऋताऽसुखः ।
भूस्तमा सरितस्तन्व्यो दिशः प्रज्विळता इव ॥
भ्रान्तचकाह्वयुग्लाः पय पानाकुला मृगाः ।
ध्वस्तवीरुत्तृणलता विपर्णाकितपादपाः ॥
प्रावृष्यम्बरमानद्धं पश्चिमानिलकर्षितैः ॥
श्रम्बुदैविंचदुद्योतप्रस्नुतैस्तुमुलस्वनैः ॥

[१०३]

कोमलश्यामराष्पाल्या शक्रगोपोञ्च्यला मही।
कदम्यनीपुकुट जसञ्जूकेतिकभूषिता।।
तत्र वर्षासु नयम्भः पूरोद्धम्रतटद्रमाः।
वाष्यः प्रोत्फुल्लकुमुदनीलोत्पलविराजिताः॥
भूरव्यक्तस्थलश्वभ्रा बहुशस्योपशोभिता।
नातिगर्जतस्थवन्मेयनिकद्धार्कं प्रहं नभः॥
वश्रुरुणः शरयकः रवेताभ्रविमलं नभः।
तथा सरांस्यम्बुरुहैर्भान्ति हंसांसयद्वितेः॥
पङ्कशुष्कद्रमाकीणां निम्नोन्नतसमेषु भूः।
वाणसप्ताह्ववन्यूककाशासनविराजिता॥
स्वगुणेरतियुक्तेषु विपरीतेषु वा पुनः।
विषमेष्विप वा दोषाः कुप्यन्त्यृतुषु देहिनाम्॥
हरेद्वसन्ते रलेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत्।
वर्षासु शमयेद्वायुं प्राग्विकारसमुच्छ्यात्॥
(सु० सू० अ० ६)

हिमर्तुचर्या

शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बिलनां बली।
पक्ता भवित हेमन्ते मात्रा द्रव्यगुरुक्तमः।।
स यदा नेन्धनं युक्तं लभते देहजं तदा।
रसं हिनस्यतो वायुः शीतः शीते प्रकुष्यित।
(च० सू० अ० ६)

अतोहिमेऽस्मिन्सेवेत*स्वाद्वम्लठवणान् रसान् ॥ (वा० सू० अ० ३)

^{*—}हेमन्तेलवणचारितक्ताम्लकदुकोत्कटं, ससर्पिस्तैलमहिमशनंहितमुच्यते ।

[808]

वर्जयेदन्नपानानि छघूनि वातलानि च । प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे ॥ (च०सू० अ०३)

> दैर्ध्यात्रिशानामेतर्हि प्रातरेव वुभुचितः। अवश्यकार्यं सम्भाव्य यथोक्तं शोलयेदनु ॥ वातन्नतेलैरभ्यंगं मूर्धिन तैलं विमर्दनम्। नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः ॥ कषायापहृतस्नेहस्ततः स्नातो यथाविधि । कुंकुमेन सद्पेंगा प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः। रसान् स्निग्धान् पलं पृष्टं गौडमच्छसुरां सुराम्। गोधूमिषष्टमाषेक्षु चीरोत्थविकृतीः शुभाः ॥ नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम्। प्रवाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचयास्तृतम् ॥ उष्णस्वभावैर्रुघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत्। युक्त्यार्किकरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥ पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः । हरंति शीतमुष्णांग्यो धूपकुं कुमयौवनैः ॥ अंगारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिएः। शीतपारुष्यजनितो न दोषो जातु जायते ॥ (वा॰ सू॰ अ॰ ३)

अग्निर्वातकप्रस्तम्भशीतवेपथुनाशनः। आमाभिष्यन्दजरणो रक्तपित्तप्रदूषणः॥

(सु० चि० अ० २४)

[🗘] त्र्यौदकान्पविलेशयपसहानां मांसानीत्यर्थः। (पृ० १०३ टिप्पण्याः प्रमास्मिदम्)

[१८५]

शिशरर्तुचर्या

हेमन्तशिशिरे तुल्ये शिशिरेऽल्पं विशेषणम्।
रौक्ष्यमादानजं शीतं मेयमारुतवर्षजम्।।
तस्माद्धैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते।
निवातमुष्णमधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत्।।
कदुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च।
वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च॥
(च०स्० अ०६)

वसन्तर्तुचर्या

हेमन्ते श्र निचितः इलेक्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम्।

श्रीक्याद्वसन्ते कुपितः कुकते च गदान् बहुन्।।

ततोऽम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरूणि च।

वर्जयेद्वसनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत्।।

षष्टिकान्नं यवान् शीतान् मुद्गान् नीवारकोद्रवान्।

लावादिविक्किररसेद्दाद्यपश्च युक्तितः।।

पटोलिनम्बवार्ताकृतिक्तकेश्च हिमात्यये।

भजेन्मध्वासवारिष्टान् सीधुमाध्वीकमाधवान्।।

व्यायाममञ्जनं धूमं तीक्ष्णञ्च कवलप्रहम्।

सुखाम्बुना च सर्व्वार्थान् सेवेत कुसुमागमे।

तीक्ष्णकृत्तकदुक्षारकषायं कोष्णमद्रवम्।।

यवमुद्गमधुप्रायं वसन्ते भोजनं हितम्।

*अत्रहेमन्तान्तभू तत्वािच्छिशिरस्यहेमन्तशब्देन शिशिर एव बोध्यः । तथाहवाग्मटःकफिल्चतोहिशिशिरेबसन्तेर्काशुतािपतः इति ।

[१०६]

व्यायामोऽत्र नियुद्धाध्वशिलानिव्वीतजो हितः । उत्सादनं तथा स्नानं वनिताः काननानि च ॥ सेवेत निर्हरेचापि हेमन्तोपचितं कफम् । शिरोविरेकवमननिरूहकवलादिभिः ॥ वर्ज्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्त्रप्रगुरुद्रवान् । (सु० उ० अ० ६४)

वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्

(भा०प्र०)

दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलवाहिषु । श्रदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुद्दिमकातिषु ॥ परपुष्टविषुष्टेषु कामकर्मातभूमिषु ॥ विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु । गोष्ठीकथाभिदिचत्राभिर्मध्याहं गमयेतसुखी ॥

(वा० सू०)

ग्रीष्मर्तुचर्या

तीक्ष्णांश्चरिततीक्ष्णांशुर्गीष्मे संक्षिपतीव यत्।
प्रत्यहं क्षीयते रलेमा तेन वायुक्च वर्धते ॥
अतोऽस्मिन् पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत्।
भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।
सुशीततोयसिक्तांगो लिह्यात्सक्तून् सशकरान् ॥
मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं सुबहुवारि वा ।
अन्यथा शोफशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत् ॥
कुन्देन्दुधवलं शालिमश्नीयाज्ञांगलैः पलैः ।
पिवेद्रसं नातिघनं रसालां रागखांडवौ ॥
पानकं पंचसारं वा नवमृद्वाजनस्थितम् ।

[800]

मोचचोचद्छैर्युक्तं ाम्छं समृन्मयश्किभि :॥ पाटलावासितं चांभः सकंपूरं सुशीतलम्। शशांकिकरणान् भक्ष्यान रजन्यां भक्ष्यन् पिवेत् ॥ ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम्। अभ्रंकषमहाशालतालरुद्धोष्णरिम् ॥ चनेषु माधवी शिलष्टद्राक्षास्तवकशालिषु । सुगंधिहिमपानीयसिच्यमानपटाछिके ॥ कायमाने चिते चूतप्रवालफळळुं विभिः। कदलीद्रकहारमृगालकमलोत्पलैः॥ कल्पिते कोमलैस्तल्पे इसत्क्रसुमप छने। मध्यंदिनेऽर्कतापार्तः स्वप्याद्धारागृहेऽथवा ॥ पुस्तस्त्रीस्तनहस्तास्यप्रवृत्तोशीरवारिणि। निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्टे निशासु च ॥ आसना स्वस्थचित्तस्य चंदनार्द्रस्य माळिनः। निवृत्तकामतंत्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥ जलाद्रीस्तालवृंतानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः । उत्त्रेपाश्च मृदूत्त्रेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥ कर्पूरमिक्कामाला हाराः सहरिचंदनाः। मनोहरकठाळाषाः शिञ्चवः सारिकाः शुकाः ॥ मृणालवलयाः कांताः प्रोत्कृलकमं लोज्ज्वलाः । जंगमा इव पद्मिन्यो हरंति द्यिताः क्रमम् ॥ (वा॰ सू॰ अ॰ ३)

वर्षतुंचर्या

श्रादानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति । वर्षासु दोषैः दुष्यंति तेम्बुलंबांबुदेऽम्बरे ॥

[208]

सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च ।
भूवाष्पेणाम्लपाकेन मिलनेन च वारिणा ।
विह्नेन च मंदेन तेष्वित्यन्योन्यदृषिषु ।
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ।।
आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसान् कृतान् ।
जांगलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरंतनम् ।
सस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पंचकोलावचूर्णितम् ।
दिव्यं कौपंश्वतञ्चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने ।।
व्यक्ताम्ललवणस्तेहं संशुष्कं क्षौद्रवस्त्रघु ।
अपाद्चारी सुर्भिः सत्तं धूपिताम्बरः ।।
हर्म्यपृष्ठे वसेद्वाष्पशीतशीकरवर्जिते ।।
नदीजलोदमन्थाहः स्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ॥
(वा॰ सू॰ अ०३)

प्रचर्षोद्धर्तनस्नानगन्धमाल्यपरो भवेत्।

लघुशुद्धाम्बरः स्थानं भजेदङ्केदि वाषर्किम् ॥ (च० सू॰ अ०६)

शरदृत्चर्या

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करिशमिः । तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरिद् कुप्यति ।। तत्रात्रपानं मधुरं छघु शीतं सतिक्तकम् । पित्तप्रश्नमनं असेव्यं मात्रया सुप्रकाङ् चितेः ।। छावान् कपिञ्जलानेणानुरश्लाव्छरभाव्छशान् । शालीन् सयवगोधूमान् सेव्यानाहुर्घनात्यये ।।

शालिमुद्गसिता धात्रीपटोलमधुजाङ्गलम् ।
 (वा० स्० अ० ३)

[808]

तिक्तस्य सर्पिपः पानं विरेको रक्तमोज्ञणम् ।
धाराधरात्यये कार्यमातपस्य च वर्जनम् ॥
वसां तैल्लमवश्यायमौद्कान्पमामिषम् ।
चारं दिध दिवास्वप्नं प्राग्वातं चात्र वर्जयेत् ॥
दिवा सूर्योशुसंतप्नं निश्च चन्द्रांशुशीतल्यम् ।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्येनाविषीकृतम् ॥
हंसोद्कमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि ।
स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथाऽमृतम् ॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च ।
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च ।
शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥
इत्युक्तमृतुसात्म्यं यच्चेष्टाहारच्यपाश्रयम् ।
उपदेशे यदौचित्यादोकसात्म्यं तदुच्यते ॥
देशानामामयानां च विपरीतगुणं गुणैः ।
सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यज्ञाश्चेष्टितं चाद्यमेव च ॥
(च० सू० अ० ६)

ऋतुपरत्वेन पाननियमः

वर्षामु न पिबेत्तोयं पिबेच्छरिद मात्रया।
वर्षामु चतुरो मासान्मात्रावदुदकं पिबेत्॥
उष्णे हैमे वसन्ते च कामं श्रीष्मे तु शींतलम्।
हेमन्ते च वसन्ते च सीध्वरिष्टौ पिबेत्ररः॥
इटतशीतं पिबेद् श्रीष्मे प्रावृट्काले रसं पिबेत्।
यूषं वर्षति तस्यान्ते प्रपिबेच्छीतलं जलम्॥
स्वस्थ एवमतोऽन्यस्तु दोषाहारमतानुगः।
(सु० चि० अ० २४)

[380]

ऋतुमेदेन भिन्नभिन्नरससेवनम्

यस्मिन् यस्मिनृतौ ये ये दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्तेते विजानता ॥ (सु० चि० अ० २४)

शितं वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत् । स्वादुं निदाये शरिद स्वादुतिक्तकषायकान् ।। शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः । श्रे अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा । नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ।। श्रुत्वोरंत्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः । तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ।। असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात् । (वा० सू० अ० ३)

कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावियहण्स्य च । यमदंष्ट्रा *समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति ॥ (शाङ्गधरः)

ऋतुपरत्वेनहरीतकीसेवनम्

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी। कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।

Echunan Mair

(भा०प्र०)

*—वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः । यमदंष्ट्रा स्वसा प्रोक्ता हितसुङ्मितसुप्रिरः ॥

[\$88]

प्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैन्धवयुतां मेवावनद्धाम्बरेन सार्थं शर्करया शरद्यमलया शुण्ट्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये ज्ञौद्रेण संयोजितां-राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ (म० वि० नि०)

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्तते नरः। घोरानृतुकृतात्रोगात्राप्नोति स कदाचन॥

(सु० उ० अ० ६४)

सद्वृत्तम्

तत्रेन्द्रियाणां समनस्कानामनुष्तापाय प्रकृतिभावे प्रयति तव्यमेभिर्हेतुभिः; तद्यथा – सात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेन, बुद्धचा सम्यग्वेक्ष्यावेक्ष्य कर्मणां सम्यक्प्रतिपादनेन, देशकालात्मगुण्विपरीतो-पसेवनेन चेति। तस्मादात्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम। तद्धचनुतिष्ठन् युगपत्संपाद्यत्य-र्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयं चेति।

तत्सद्वृत्तमखिलेनोपदेक्ष्यामः । तद्यथा—देवगोत्राह्मण्गुरुवृद्ध-सिद्धाचार्यानचयेत्, अग्निमुपाचरेत्, ओषधीः प्रशस्ता धारयेत्, द्वौ कालावुपस्पृशेत्, मलायनेष्वभीक्षणं पादयोश्च वैमल्यमाद्घ्यात्, त्रिः पत्तस्य केशश्मश्रुलोमनखान् संहारयेत्, नित्यमनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्।

साधुवेशः, प्रसाधितकेशो, मूर्घश्रोत्रघाणपादतैलनित्यो, धूमपः, पूर्वाभिभाषी, सुमुखो; दुर्गेष्वभ्युपपत्ता, होता, यष्टा, दाता,

इरीतकीसेवनेन मुलावरोधाभावाद्दीप्ताग्नित्वाच सदा स्वास्थ्य-मनुवत्ते ।

[११२]

चतुष्पथानां नमस्कर्ता, बलीनामुपहर्ता, अतिथीनां पूजकः पितृभ्यः पिण्डदः, काले हितमितमधुरार्थवादी*, वश्यात्मा, धर्मात्मा, हेतावीर्षुः, फलेनेर्षुः, निश्चिन्तो, निर्मीको, धोमान् होमान्, महोत्साहो, दत्तः, क्षमावान्, धार्मिकः, आस्तिको, विनयबुद्धिविद्याभिज्ञन्वयोगृद्धिसद्धाचार्याणामुपासिता, छत्री दण्डी मोली सोपानत्को युगमात्रदृग्विचरेत्, मङ्गलाचारशीलः, कुचेलास्थिकण्टकामेध्यकेश-तुषोत्करभस्मकपालस्नानबलिभूमीनां परिहर्ता, प्राक् श्रमाद्व्यायाम-वर्जी स्यात्, सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्, कुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वासयिता, दीनानामभ्युपपत्ता, सत्यसंधः सामप्रधानः परपरुषवचनसहिष्णुः, अमर्षद्तः, प्रशमगुणदर्शी रागद्वेषहेन्तूनां हन्ता।

नानृतं त्र्यात्, नान्यस्वमाद्द्यात्, नान्यस्त्रियमभिल्षेन्नान्यश्रियं, नवेरं रोचयेत्, न कुर्यात्पापं, न पापेऽपि पापी स्यात्, नान्यदोषान् त्रयात्, न त्रानुसमं कठिनमासनमध्यासीत, नानास्तीणमनुपिहतमविशाल्यसमं वा शयनं प्रपद्येत, न गिरि-विषममस्तकेष्वनुचरेत्, न द्रममारोहेत्, न जलोप्रवेगमवगाहेत, क्लल्लायां नोपासीत, नाम्युत्पातमिनत्रश्चरेत्, नोचहसेत्, न शब्दवन्तं मास्तं मुञ्चत्, नासंवृतमुखो ज्रम्भां क्षवधुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्, न नासिकां कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत,

[मनुः]

^{*—}सत्यं ब्रूयात्प्रयं ब्रूयात्र ब्रूयात्सस्यमप्रियम् । प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ †—मद्रभद्रमितिब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत् । शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित् सह॥

[११३]

न नखान् वाद्येत्, नास्थीन्यभिह्न्यात्, न भूमिं विछिखेत्, न छिन्द्यात्त्णं, न लोष्ट्रं मृद्नीयात्, न विगुण्णमंगिश्चेष्टेत, ज्योतींष्यिप्तममेध्यमशस्तं च नाभिवात्तेत, न हुँ कुर्याच्छवं, न चैत्यध्व जगुरुप्ज्याशस्त्र च्छायामाक्रामेत्, न च्पास्वमरसद्नचैत्यच्त्वर चतुष्पथोपवन इमशानावात नान्यासेवेत, नैकः शून्यगृहं न चाटवीमनुप्रविशेत्, न पापवृत्तान् स्त्रीमित्रभृत्यान् भजेत्, नोत्तमैर्विरूचेत, नावरानुपासीत, न जिद्धं रोचयेत्, नानार्यमाश्रयेत्, न भयमुत्पाद्येत्, न साहसातिस्वप्रप्रजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत, नोध्वं जानुश्चिरं तिष्ठत्, न व्याळानुपसर्पेत्र दृष्ट्रिणो न विषाणिनः, पुरोवातातपावश्यायातिप्रवातान् जह्यात्, कळि नारभेत, नासुनिभ्वतोऽप्रिमुपासीत, नोच्छिष्टो नाधःकृत्वा प्रतापयेत्, नाविगतक्कमो नाष्ट्रतवद्गो न नम्न उपस्पृशेत्, न स्नानशाट्या स्पृशेदुत्तमांगं, न केशायाण्यिमह्न्यात्, नोपस्पृश्यत एव वाससी विभ्रयात्, नास्पृष्ट्या एवाज्यप्त्र च्यात्मार्ग्ठिसनिष्कामेत्, नास्पृष्ट्या एवाज्यप्त्र च्यात् प्रताप्यसी विभ्रयात्, नास्पृष्ट्या एवाज्यसी विभ्रयात्, नास्पृष्ट्यां प्रताज्यस्य प्रवाप्य विद्वणम्।

नानृजुः क्षुयान्नाद्यान्न शयीत†, न वेगितोऽन्यकार्यः‡ स्यात्, न वाय्विग्नसिळ्ळसोमार्कद्विजगुरुप्रतिमुखं निष्ठीविकावातवर्चोन् मूत्राण्युतसृजेत्, न पन्थानमवमूत्रयेत्, न जनवित नान्नकाळे न जपहोमाध्ययनविळमंगळिकयासु इळेष्मसिवाणकं मुञ्चेत्।

न स्त्रियमवजानीत, नातिविश्रम्भयेत्, न गुह्यमनुश्रावयेत्, नाधिकुर्यात्।

6

^{*} ग्रशस्ता रोगिपतितादयः

[🕆] नावाक्शिसः शयीत (सुट चि० ग्र० २४)

[‡] न वहिर्वेगान् <mark>यामनगरदे</mark>वतायतनश्मानचतुष्पथसिललाशय पथिसन्तिकृष्ठानुत्स्युजेत् न प्रकाशम् । (सु० चि० स्र० २४)

[888]

न सतो न गुरून परिवदेत्, नाशुचिरभिचारकर्भचैत्यपृज्य-

पूजाध्ययनमभिनिवर्तयेत्।

न विद्युत्त्वनार्त्वीषु नाभ्युद्तासु दिक्षु नाग्निसंप्त्रवे न भूमिकम्पे न महोत्सवे नोल्कापाते न महाप्रहोपगमने न नष्टचन्द्रायां तिथी न सन्ध्ययोर्नामुखाद्गुरोर्नावपतितं नातिमात्रं न नान्तं न विस्वरं नानवस्थितपदं नातिद्रतं न विलिम्बतं नाति-क्कीवं नात्युचनांतिनीचैः स्वरैरध्ययनमभ्यसेत्।

नातिसमयं जह्यात् न नियमं भिन्यात्, न नक्तं नादेशे चरेत्, न सन्ध्यास्वभ्यवहाराध्ययनस्त्रीस्वप्नसेवी स्यात्, न बाल-वृद्धलुब्धमूर्विक्ठिष्टक्षीबैः सह सख्यं कुर्यात्, न मद्ययूतवेश्याप्र-संगरुचिः स्यात्, न गुद्धं विवृग्णुयात्, न कञ्चिदवजानीयात्, नाहंमानी स्यान्नादच्चो नाद्विणो नासूयकः, न ब्राह्मणान् परिव-देत्, न गवां दण्डमुद्यच्छेत्, न वृद्धान् न गुरुन् न गणान् न नृपान् वाऽधिच्चिपेत् न चातिब्रूयात्, न बान्धवानुरक्तकृच्छ्रद्धि-तीयगुह्मज्ञान् वहिः कुर्यात् ।

नाधीरो नात्युच्छितसत्वः स्यात् नाभृतभृत्यो, नाविश्रव्धः स्वजनो, नैकः सुखी, न दुःखशीलाचारोपचारो, न सर्वविश्रम्भी, ने सर्वाभिशङ्की, न सर्वकालविचारी, न कार्यकालमितपातयेत, नापरीचितमभिनिविशेत्, नेन्द्रियवशगः स्यात्, न चञ्चलं मनोऽ-नुश्रामयेत्, न बुद्धीन्द्रियाणामितभारमाद्ध्यात्, न चातिदीर्घसूत्री स्यात्, न कोधहर्षावनुविद्ध्यात्, न शोकमनुवसेत्, न सिद्धावौ-सुक्यं गच्छेन्नासिद्धौ दैन्यं, प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत्, हेतुप्रभाव-निश्चतः स्यात् हेत्वारम्भनित्यश्च, न कृतिमित्याश्वसेत्, न वीर्यं जह्यात्, नापवादमनुस्मरेत्।

नाशुचिरुत्तमाज्याचतितलकुशसर्षपरिमिं जुहुयादात्मानमाशी-भिराशसानः अग्निमें नापगच्छेच्छरीरात् वायुर्मे प्राणानादधातु

[११५]

विष्णुर्मे वलमाद्धातु इन्द्रो मे वीर्यं शिवा मां प्रविशन्त्वाप आपोहिष्ठत्यपः स्पृशेत्, द्विःपरिमृज्योष्ट्रो पादौ चाभ्युक्ष्य मूर्धित खानि चोपस्पृशेदद्विरात्मानं हृद्यं शिरश्च, ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्री-कारुण्यहर्षीपेक्षाप्रश्चमपरश्च स्यादिति।

(च० सू० अ०८)

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताःसर्वप्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तरमाद्धर्मपरो भवेत्।।
हिंसारतेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुपानृते।
सम्भिन्नालापव्यापाद्मभिध्याद्दग्वपर्ययम्।।
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैः ट्यजेत्।
अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेत शक्तितः।।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्ये नाक्षिपेत्।
जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति।।
तंतथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः।
त्रिवर्यशून्यं नारम्भं भजेत्तञ्चाविरोधयन्।।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम्।
नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नक्तंसेवेत न द्रमम्।।
सन्दिग्धनावं नारोहेन्नासीतोत्कटकस्थितः।

(वा० सू० अ०३)

सम्मार्जिनीरजो नैव देहे दद्यात्कदाचन।
प्रतिभूर्न भवेत्क्वाऽपि न च साक्षी वृथा भवेत्।।
निभन्नशयने स्वर्यान्नानेकविवरेऽपिच।
(भा० प्र०)

वैरिणं नोपसेवेत साहाय्यञ्चैव वैरिणः । अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव चु योषितम् ॥

[११६]

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ क्षत्रियञ्चेव सर्पञ्च ब्राह्मण्डच बहुश्रुतम् । नावमन्येत वे भूष्णुः कृशानिप कदाचन ॥ एतत्त्रयं हि पुरुषं निद्हेद्वमानितम् । तस्मादेतत्त्रयं नित्यंनावमन्येत बुद्धिमान् ॥ (मनुः अ०४)

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः । रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥ (मनुः अ०४)

परोपघातक्रियया वर्जयेदार्जनं श्रियः। अर्थानां धर्मलब्धानामदाताऽपि ह्यसम्भवात् ॥ स्वर्गापवर्गविभवानयत्नेनाधितिष्ठति । नोत्संगे भच्येद् भक्ष्यान् जलं नाञ्जलिना पिवेत्।। सर्वञ्च तिलसम्बद्धं नाद्यादस्तमितेरवौ॥ न भुक्तमात्र आयस्येन्न निषिद्धं भजेत्सुखम्।। परस्य दण्डं नोद्यच्छेत् क्रुद्धो नैनं निपातयेत्। अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शासनाहीद्धिताशयः ॥ नृत्यवादित्रगीतादि नोद्वणामाचेरिकयाम्। ऊर्ध्वनाभेः शरीरस्य स्पृशेत्राधरवाससा॥ न कुर्यान्मिथुनीभूय शौचं प्रति विलम्बनम् । पाणिद्वयेन युगपत्कण्डूयेन्नात्मनः शिरः॥ पादं पादेन नाक्रामेन्न कण्डूयेन शौचयेत्। न कांस्यभाजने तौ च नोपविष्टः प्रसाधयेत् ॥ भद्रकामो जनः पश्येन्न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्। स्त्रियं स्रवन्तीं नोदक्यां न नग्नां नाऽन्यसङ्गताम् ॥

[296]

पत्नी भोजनस्वप्रक्षुतज्रम्भादुरासने। शयीत नैकशयने न चाश्नीयात्तया सह।। तामनीर्ष्यश्च गोपायेत्वैरिणीं नाधिवासयेत्। नात्मानमवजानीयात्र स्तूयात्र च पीडयेत्।। हीनानवमन्येत वृत्तार्थाङ्गवलश्रतैः । नारुन्तुदः स्यान्न क्रूरो न तीक्ष्णोनोपतापवान् ।। नोच्छिष्टस्तारकाराहुतुहिनांशुद्वाकरान् पश्येत्र यायात्र पठेत्र स्वाप्यात्र स्पृशेच्छिरः॥ पाययन्तीं चरन्तीं वा नान्यस्मै गां निवेद्येत्। अर्केन्दु परिवेषोलकाशतक्रतुधनंषि नान्यदेवार्चने कर्म कुर्याद्वावेन्न वर्षति। तिथिं पक्षस्य न त्रूयात्रज्ञाणि न निर्दिशेत्।। नात्मनो जन्मलप्रर्क्षधनसारं गृहे मलम्। प्रकाशयेत्रापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥ नैकाहमप्यधिवसेद्वास्तुतच्छास्रगाहतम्। न देशं व्याधिवलं नावैद्यं नाप्यनायकम्।। नाधर्मिजनभूयिष्ठं नोपसृष्टं न पर्वतम्। वसेत्प्राज्याम्बुभैषज्यसमित्पुष्पतृणेन्धने ॥ सुभिक्षच्तेमरम्यान्ते पण्डितैर्मण्डिते पूरे। सर्वतेजोनिधानं हि नृप इत्युच्यते भुवि ॥ अदूषयन्मनस्तरमाद्भक्तिमांस्तमुपाचरेत्। पर्यस्तिकोपाश्रयकोपहास -विवादनिष्टीवनजम्भणानि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सर्वाः प्रकृत्यभ्यधिकाश्च चेष्टाः, तत्सन्निधाने परिवर्जयेत् ॥ [288]

सत्वाद्यवस्था विविधाश्चतास्ताः, सम्यक्परीक्ष्यात्महितं विद्ध्यात् । अन्योऽपि यः कश्चिदिहास्ति मार्गो, हितोपदेशेषु भजेत तं च ॥

(अ० सं० अ०३)

आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः। अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीत्तकः॥ आद्रमंतानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः। स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम्॥ नक्तंदिनानि मे यांति कथंभूतस्य सम्प्रति। दुःखभाङ्न भवत्येवं नित्यं संनिहितस्मृतिः॥

(वा॰ सू० अ०३)

इतिचरितमुपेतः सर्वजीवोपजीव्यम्-प्रथितपृथुगुर्गोघो रिच्चतो देवताभिः। समधिकशतजीवी निर्वृतः पुण्यकर्मा-व्रजति सुगतिनिम्नो देहभेदेऽपि तुष्टिम्।।

(बृद्धवाग्भटः)

(हिताहितविवेक:)

अधारणीया वेगाः

वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रचवतृद्क्षुधाम् । निद्राकासश्रमस्वासजृम्भाश्रुच्छर्दिरेतसाम् ॥ रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैः ।

(वा० सू०)

[११९]

वेगनिग्रहजा रोगा ये शास्त्रे परिकीर्तिताः। इच्छंस्तेषामनुत्पत्ति वेगानेतान्त धारयेत्।। (च०सू०)

धारणीयावेगाः

इमांस्तु धारयेद्वेगान् हितेषी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम्।।
लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्।
नैर्लक्येष्यांतिरागाणामभिष्यायाश्च बुद्धिमान्।।
पुरुषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च।
वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम्।।
देहप्रवृत्तिर्याकाचिद्वर्तते पर्पोडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत्।।
पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम्।
धर्मार्थकामान् पुरुषः सुखी भुक्कि चिनोति च।।

* टिप्पणी-

अधोवातस्य रोघेन गुल्मोदावर्तस्क्हमाः। वातमूत्रशकुत्सङ्गदृष्ट्यग्निवधहृद्गदाः॥ स्नेह्स्वेद्विधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च। पानानि वस्तयश्चेव शस्तं वातानुलोमनम्॥ शकुतः पिण्डिकोद्धेष्टप्रतिश्यायशिरोह्नजः। उध्वेवायुः परीकर्तिः हृदयस्योपरोधनम्॥ मुखेन विट् प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्ताश्चामयाः स्मृताः। अंगभंगाश्मरीवस्तिमेद्वंन्तणवेदनाः॥ [१२0]

रोगानुत्पत्तिकरा भावाः

जितेन्द्रियं नानुपतिन्त रोगास्तत्काल्युक्तं यदि नास्ति दैवम्। दैवं पुरा यत्कृतमुच्यते तत् तत्पौरुषं यत्त्रिह् कर्म दृष्टम्।। प्रवृत्तिहेतुर्विषमः स दृष्टो निवृत्तिहेतुरुतु समः स एव। नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।। दाता समः सत्यपरः चमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः। मितिर्वाचः कर्म सुखानुवन्धि सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धः।। म्नानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः।

टिप्पणी

मूत्रस्य रोधात्पूर्वे च प्रायो रोगाः तद्गैषधम् । वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेद्नं वस्तिकमं च ॥ अन्नपानं च विड्भेदि विड्रोधोत्थेषु यक्ष्मसु । मूत्रजेषु च पाने च प्राग्मक्तं शस्यते घृतम् ॥ जीर्णान्तकं चोत्तमया मात्रया योजनाद्वयम् । अवपीडकमेतच्च संज्ञितं धारणात्पुनः ॥ उद्गारस्यारुचिः कम्पो विवन्धो हृद्योरसोः । आध्मानकासिह्ध्माश्च हिध्मावत्तत्र भेषजम् ॥ शिरोर्तानिद्रयदौर्वत्य मन्यास्तम्भार्दितं क्षुतेः । विश्लाधूमांजनाद्वाणनावनार्कविछोकनैः ॥ प्रवर्तयेत् क्षुतिं शक्तां स्नेहस्वेदौच शीछयेत । शोषांगसाद्वाधिर्यसम्मोहभ्रमहृद्गदाः ॥ राष्ट्रणाया निम्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः । राष्ट्रणाया निम्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः । राष्ट्रणाया निम्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः ।

[१२१]

आयुष्यंभोजनं जीर्णे वेगानां चाऽविधारणम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च साहसानां च वर्जनम्॥ (सु० चि० अ० २८)

टिप्पगी

तत्र योज्यं लघु स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्। निद्राया मोहमूर्घाक्षिगौखालस्यज्मिकाः ॥ अङ्गमर्श्य तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि च। शोषो हिध्मा च कार्योऽत्र कासहा सुतरां विधि: ॥ गुल्महृद्रोगसम्मोहाः श्रमश्वासाद्विधारितात्। हितं विश्रमणं तत्र वातव्नश्च क्रियाक्रमः ॥ जम्भायाः चववद्रोगाः सर्वश्चानिलजिद्धिधः। पीनसाचिशिरोहद्रङ्मन्यास्तम्भारुचिश्रमाः॥ सगुल्मा वाष्पतस्तत्र खप्नोमद्यं प्रियाः कथाः॥ विसर्पकोठकुष्ठा चिकंडू पांड वामयाज्वराः ॥ सकासश्वासहस्रासञ्यंगश्वयथवो वमेः। गंडूषधूमानाहारान् रूक्षंभुक्त्वा तदुद्रमः॥ व्यायामः स्रतिरसस्य शस्तं चात्र विरेचनम्। सन्नारलवणं तैलमभ्यंगार्थं च शस्यते ॥ शुक्रात्तत्स्रवणं गृह्यवेदना श्वयथुर्व्यरः हृदुव्यथामूत्रसंगांगभंगवृद्धचरमषंढताः ॥ ताम्रच्डसुराशालिवस्यभ्यंगावगाहनम्। वस्तिश्रद्धिकरैः सिद्धं भजेत् क्षीरं प्रियाः स्नियः ॥ तृटश्लार्तं त्यजेत्क्षीणं विडवमं वेगरोधिनम् । (अ० ह० सू० अ० ४)

[१२२]

वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः। स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति॥

(चे० कु०)

हैमन्तिकं दोषचयं वसन्ते प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले । यनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्ष्राप्तोति रोगानृतुजान्न जातु।। यथाक्रमं यथायोगमतअर्ध्य प्रयोजयेत्। रसायनानि सिद्धानि वृष्ययोगांश्च कालवित्।।

स्वस्थस्योर्जस्करं यत्त्र तद्वष्यं तद्रसायनम् । (च० चि० अ०१)

रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ॥ (ज्ञार्ङ्गधर० पू० खं०)

रसायनगुणाः

दीर्घमायुः स्मृतिं मेथामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्थं देहेन्द्रियवळं परमः।।
वाक्सिद्धिं प्रणितं कान्ति लभते ना रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।।
न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते।
रसायनं यो विधिवन्निषेवते।।
गतिं सदेवर्षि निषेवितां शुभाम्।
प्रपद्यते ब्रह्म तथेति चाक्ष्रम्।।
(च० चि० अ० १)

आचाररसायनम्

सत्यवादिनमकोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात् । अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥

[१२३]

जपशौचपरं धीरं दानित्यं तपस्विनम्।
देवगोत्राह्मणाचार्यगुरुष्टद्धार्चने रतम्।।
आनृत्रांस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं त्तीरघृताशिनम्।।
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम्।
शस्ताचारमसङ्कीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्।।
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्।।
गुणैरेतैः समुदित- प्रयुङ्क्ते यो रसायनम् ।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्तुते।।
(च० चि० अ० १)

रोगास्तथा न जायन्ते प्रकृतिस्थेषु धातुषु । धातवश्चाभिवर्धन्ते जरा मान्द्यमुपैति च ॥ (च०)

*पूर्वे वयिष मध्ये वा मनुष्यस्य रक्षायनम् । प्रयुक्षीत भिषक्षाज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो राषायनो विधिः । न भाति वासिष क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्षितः ॥

(सु॰ चि॰ अ० २७)

श्रथ सप्त पुरुषा रसायनं नोपयुञ्जीरन् । तद्यथा अनात्मवानलसो दरिद्रः प्रमादी व्यसनी पापकृद् भेषजापमानी चेति । सप्तिमरेव कारणैर्न सम्पद्यते । अज्ञानादनारम्भादिस्थरचित्तत्वाद्दारिद्रयादनायत्तत्वादधर्मां दौषधालाभाव्चेति (स० चि० श्र० ३०)

[१२४

आयुः परीन्नणम् ।

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् । कण्ठाहृहिर्विनियोति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥ पीत्वाचाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः । प्रीण्यम् देहमिखळं जीवयम् जठरानळम् ॥ शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते । (शा० सं०) तत्त्त्रिविधं दीर्षं मध्यममल्पञ्चति ।

तत्र महापाणिपादपार्घप्रष्ठस्तनात्रदशनवद्नस्कन्धललाटं दीर्घाङ्ग्लिपव्यक्तिस्त्रां प्रेच्चणवाहुं विस्तीणेश्रूस्तनान्तरोरस्कं हस्वजंघामेढ्रप्रीवं गम्भीरसत्वस्वरनाभिमनुच्चेर्यद्वस्तनमुप-चितमहारोमशकणं पश्चान्मस्तिष्कं स्नातानुलिप्तं मूर्द्धानुपूर्व्या विशुष्यमाणहृद्यं पुरुषं जानीयादी-र्घायुः खल्वयमिति । तमेकान्तेनोपक्रमेत् । एभिर्लच्णेर्वियपरी-तैरल्पायुर्मिश्रमध्यमायुरिति ॥ भवन्ति चात्र ॥

गृहसिन्धिसरास्नायुः संहताङ्गः स्थिरेन्द्रियः ।
उत्तरोत्तरसुद्गेत्रो यः स दीर्घायुरुच्यते ॥
गर्भात्त्रभृत्यरोगो यः शनैः समुपचीयते ।
शरीरज्ञानविज्ञानैः स दीर्घायुः समासतः ॥
मध्यमस्यायुषो ज्ञानमत ऊर्ध्वं निवोध मे ।
अधस्तादत्त्रयोर्थ्यस्य लेखाः स्युर्व्यक्तमायताः ॥
द्वे वा तिस्रोऽधिका वापि पादौ कर्णौ च मांसलौ ।
नासात्रमूष्वश्च भवेदूर्ध्वलेखाश्च पृष्ठतः ॥
यस्य स्युस्तस्य परममायुर्भवित सप्ततिः ।
जघन्यस्यायुषो ज्ञानमत ऊर्ध्वं निवोध मे ॥

[१२५]

हस्वानि यस्य पर्व्वाणि सुमह्ञापि मेहनम्। तथोरस्यवळीढानि न च स्यात्पृष्टमायतम्॥ ऊर्ध्वञ्च श्रवणौ स्थानान्नासा चोचा शरीरिणः। हसतो जल्पतो वापि दन्तमांसं प्रदृश्यते॥ प्रेत्तते यश्च विश्वान्तं स जीवेत्पञ्चविंशतम्॥

अथ पुनरायुषो विज्ञानार्थमङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणसारानुपदेक्ष्यामः। तत्राङ्गान्यन्तराधिसक्थिवाहुशिरांसि तद्वयवाः प्रत्यङ्गानीति । तत्र स्वैरङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौ द्वयङ्ग लायते । प्रदेशिन्यास्तु मध्यमाऽ-नामिका कनिष्ठिका यथोत्तरं पञ्चमभागहीना। चतुरङ्गुळायते पञ्चाङ्ग्रुळविस्तृते प्रपद्पाद्तळे पञ्चचतुरङ्ग्ळायतविस्तृता पार्षिगः। चतुर्दशाङ्ग् लायतः पादः। चतुर्दशाङ्गलपरिणाहानि पादगुल्फ-जंयाजानुमध्यानि । अष्टादशाङ्गुला जंया जान्परिष्टाद्द्वात्रिंशदङ्गुल-मेवं पञ्चाशत्। जंघायामसमावूरः। द्रयङ्गुलानि वृषणिचित्रुकः दशननासापुटभागकणमूळनयनान्तराणि। चतुरङ्गळानि मेहनवद-नान्तरनासाकर्णललाटमीवोछ्रायदृष्टचन्तराणि। द्वादशाङ्ग लानि भगविस्तारमेहननाभिहृद्यप्रीवास्तनान्तरमुखायाममणिवन्धप्रकोष्ठ-स्थौल्यानि । इन्द्रवस्तिपरिणाहांसपीठकूर्परान्तारायासः पोडशाङ्गुलः चतुर्विशत्यङ्गुलो हस्तः। द्वात्रिशदङ्गुलपरिमाणौ भुजौ द्वात्रि-शत्परिणाहाबुह, मिणवन्धकूर्परान्तरं पोडशाङ्गलम् तस्रं पट्चतुर-ङ्गुलायाम विस्तारम्। अङ्गुष्टमूलप्रदेशिनीश्रवणापाङ्गान्तरमध्यमा-ङ्गुल्यो पञ्चाङ्गुले । अर्धपञ्चाङ्गुले प्रदेशिन्यनामिके सार्धत्र्यङ्गुलौ किनिष्ठिकांगुष्टौ । चतुर्विंशतिविस्तारपरिणाहं मुखग्रीवम् । त्रिभागा-ङ्गुलिविस्तारा नासापुटमर्थ्यादा। नयनत्रिभागपरिणाहा तारका। नवमस्तारकांशो दृष्टिः । केशान्तमस्तकान्तरमेकाद्शाङ्गलम्। मस्तकादवदुकेशान्तो दशाङ्ग्छः कर्णावट्वन्तरं चतुर्दशाङ्ग्रुछम्। पुरुषोरःप्रमाणविस्तीर्णा स्त्रीश्रोणिः। अष्टादशाङ्गुलविस्तीर्णमुरः।

[१२६]

तत्त्रमाणा पुरुषस्य कटी । सविंशमङ्गुलशतं पुरुषायाम इति ॥ भवन्ति चात्र ।

देहः स्वैरङ्गुलैरेष यथावदनुकीर्त्तिः । युक्तप्रमाणेनानेन पुमान् वा यदि वाऽङ्गना ॥ दीर्घमायुरवाप्नोति वित्तञ्च महदृच्छति । मध्यमं मध्यमैरायुर्विवत्तं हीनैस्तथाऽवरम् ॥

अथसारान् वक्ष्यामः ।। स्मृतिभक्तिप्रज्ञाशौर्य्यशौचोपेतं कल्याणाभिनिवेशं सत्त्वसारं विद्यात् । स्निग्धंसंहतश्वेतास्थिदन्त-नखं बहुळकामप्रजं शुक्रेण । अकृशमुत्तमबळं स्निग्धगम्भीरस्वरं सौभाग्योपपन्नं महानेत्रञ्च मज्ञा । महाशिरः स्कन्धदृदृद्नतहन्त्व-स्थिनखमस्थिभः न्निग्धमूत्रस्वेदस्वरं वृहच्छरीरमायाससहिष्णु मेदसा । अच्छद्रगात्रं गूढ़ास्थिसन्धि मांसोपचितञ्च मांसेन । स्निग्धताम्रनखनयनताळुजिह्वौष्ठपाणि पादतळं रक्तेन । सुप्रसन्न-मृदुत्वम्रोमाणं त्वक्सारं विद्यादित्येषां पूर्व्यं पृद्वं प्रधानमायुः सौभाग्ययोरपि ।

भवति चात्र।

सामान्यतोऽङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणादथ सारतः। परीक्ष्यायुः सुनिपुणो भिषक् सिध्यति कर्म्मसु।। (सु०सू०अ०३५)

्रिश्या ् तौलानुसारेण स्वास्थ्यपरीचणम्⊛

	ननस्य	यावत्पर्व (११/३ श्रङ्गुलम्) परिमितः शरी-
9	किटि:	
स्वस्थशरीरप्रमाण्यम् (२०—३० वर्षेवयमि)	पिंडिका	
	अस	4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4
	मणिवंध:	6 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8
	वाहः:	
	गल:	2
	वत्ः स्थलम्	पर्वत्तम् (इंच) ३१ — ३४ ३१ — ३४ ३१ — ३५ ३१ — ३६ ३४ — ३६ ३४ — ३६ ३४ — ३६ ३४ — ३८ ३६ — ३९ ३६ — ४० ३६ — ४० ३६ — ४० ३६ – ४९ ३६ – ४०
	तौलम्	15 15 15 15 15 15 15 15
	उच्छाय:	# (B) 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 3 4 4 4 4 4 4 4

[१२८]

रायामः स्यात्तावत्सेटक (८० तो०) मितं शरीरतौळं स्याच्चेत्तदा सामान्यतः स्वास्थ्यमवगन्तव्यम्।

	4	गमान्यतः	हिष्यणी सम्मन्यतः स्वस्थस्य बालकस्य तौलाहिप्रमाणम्।	णी कस्य तौल	गहित्रमाणम		
आयुः	आयुः तौलम्	आयुः तीलम्	तौलम्	आयु:	आयुः तौलम्		आयुः तौलम्
सप्ताहम्	३१/२ से०	%-C €°	सत्ताहम् ३१/२ से० ४-८ स० ४१/२-५१/४ ५मा० ७१/२ से० ११मा० १० से०	६ मा०	७ १/२ से०	११ मा०	१० से०
ار ت	× ×	२ मासम्	र मासम् ५ १/२ ,, द ,, ८	(D.)		83 33	33 88 33 80 8/8 33
	8 8/6 ,, 3-8 ,, 8-6	3-2		E-20,,	, E-80, 68/2.8 8/2		

[१२९]

नेत्रसंरक्षणपरायणत्वम्

चक्षः प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधाः । घननीहारयुक्तानां ज्योतिषामिव भास्करः ॥ चक्ष्र्रज्ञायां सर्वकालं मनुष्यै-येन्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा । व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिंदिवानां पुंसामंधानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥

(वा० उ० अ० १३)

टिप्पणी-

आयुः	तौलम्	उच्छ्रयः	वद्यःस्थलम्	शिरः
जन्मस्णम्	३ १/२ सेट०	२० १/२ पर्वेकः	१३ १/२ प०	१४ पर्वकम्
१ वर्षम्	१०१/२,,	२९	१८ ,,	१८ ,,
٦ ,,	१३ १/२ "	३२ १/२ ,,	१९ ,,	१९ ,,
₹ ,,	१५ १/२ ,	३५	२० ,,	१९ १/२ ,,
٧ ,,	१७ १/२ .,	३८	२०३/४ ,,	१९ ३/४ ,,
٠ 4 ,,	२० १/२ ,,	88 8/2 ,,	२११/२ ,,	२० १/२ ,,
Ę .,,	२२ १/२ ,,	8.8	२३ १/२ ,,	
9 ,,	२४ १/२ ,,	४६	२३ १/२ "	
۷ ,,	२७ १/२ ,,	80	२४ १/२ ,,	
۹ ,,	₹0 ,,	40	२५ ,,	
१० ,,	३३ १/२ ,,	प्र	२६ ,,	

(शि०पा०)

[१३०]

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद् दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्य्याच । प्रसक्तसंरोदनशोककोपक्वशाभिवाताद्विमैथुनाच ॥ शुक्तारनालाम्लकुलस्थमाषनिषेवणाद् वेगविनिग्रहाञ्च । स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच छुर्देविघाताद्वमनातियोगात् ॥ वाष्पग्रहात्स्र्रूस्मनिरीक्षणाच नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः । (स्० ड० अ० १)

प्रायेण सर्वे नयनामयास्ते भवन्त्यभिष्यन्दनिमित्तमूलाः । तस्मादभिष्यन्द्मुदीर्थ्यमाणमुपाचरेदाशु हिताय धीमान् ॥ (सु० ७० अ० ६)

सततं न निरीत्तेत चर्लसूक्ष्माऽप्रियाणि च । नाऽप्रशस्तं न विण्मूत्रं न द्र्पणममार्जितम् ॥ उद्यन्तमस्तमायान्तं तपन्तं प्रतिमागतम् । उपरक्तं च भास्वन्तं वाससा वा तिरोहितम्॥ नान्यद्प्यतितेजस्वि—(अ०सं०सू०अ०३) न भारं शिरसावहेत्।

(वा॰ सू॰)

नाधीयाद्दवमारूढो * न वृक्षं न च हस्तिनम्। न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः॥ (मनः)

सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः।
पुराण्यवगोधूमशालिषष्टिककोद्रवान्।।
मुदुगादीन् कफपित्तव्नान् भूरसर्पिः परिष्ठुतान्।

शाकं चैवंविधं मांसं जांगलं दांडिमं सिताम्।।

*--श्रश्वादीनां चलत्वाद् दृष्टेः सम्भ्रन्त्या चात्तुषरोगसम्भवान्निषेधः कृतो भगवता मनुना ।

[१३१]

सेंधवं त्रिफलां द्राक्षां वारि पाने च नाभसम्। आतपत्रं पदत्राणं विधिवद्दोषशोधनम्।। वर्जयेद्वेगसंरोधमजीर्णाध्यशनानि च। शोकक्रोधदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च।। विदाहि विष्टंभकरं यच्चेहाहारभेषजम्।

ह्रे पादमध्ये पृथुसिन्नवेशे शिरे गते ते बहुधा च नेत्रे। ताम्रक्षणोद्वर्तनलेपनादीन् पाद्प्रयुक्तान्नयनं नयंति॥ मलोणासंघट्टनपीडनाद्ये-स्ता दुषयंते नयनानि दुष्टाः। भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्माद् उपानद्भयंजनधावनानि"॥

mi,

(वा० उ० अ० १५)

सर्वात्मना नेत्रवलाय यत्नं, कुर्वीतनम्याञ्जनतर्पणाद्येः ॥ दृष्टिश्च नष्टा विविधं जगन्न, तमोमयं जायत एक रूपम्॥

''सुपुष्पाणि सुगन्धीनि नित्यंशीर्षे प्रधारयेत्। क्लेदायाससमुद्भूतस्वेददुर्गन्धनाशनम् ॥ चक्षुष्यं दाहशमनं सौमनस्यं च जायते । हेमन्ते शिशिरे चैव शतपत्रं तुशोभनम् ॥ ईषदुष्णं सुगन्धं च सुशीतं दृष्टिदायकम् । शिरोभ्रमिवनाशाई शतपत्रं तु शोभनम् । श्लेष्मवातप्रशमनमुष्णवीर्यं च निर्मल्रम् । पुष्पाणां प्रवरं चैव केतकीपुष्पमुच्यते ॥

१३२

वसन्ते केतकी धार्या घर्मे नैपालमालती। प्रावृटसु पाटलं धार्यं चम्पकं शरिद स्मृतम् ॥ (चे॰ कु॰) ब्यङ्गवलीपलितव्नं पीनसवैस्वयंकासशोथव्नम् । रजनीक्ष्येऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च।। भाः प्र०) सौवीरमंजनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्। चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् रलेष्मणो भयम्।। योजयेत्सप्तरात्रेऽस्मात्स्रावणार्थे रसाञ्चनम ।

(वा० सू० अ०२)

त्रिफला रुधिरस्रतिविंशुद्धि-र्मनसो निवृतिरंजनं च नस्यम्। श्कुनासनता सपादपूजा घतपानं च सदैव नेत्ररज्ञा ।। अहितादशनात्सदा निवृत्ति-भृशभास्वज्ञलसूक्ष्मवीच्णाच्च। मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत् परमं रच्चणमीच्चणस्य पुंसाम्।।

(वा० उ० अ० १३)

प्रकृतिपरिचयपूर्वकमाहारादिसेवनम्

सप्त प्रकृतयो भवन्ति । दोषैः पृथक् द्विशः समस्तैश्च । शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद् दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृगु ॥

तत्र जागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्व्यनार्थ्यो गान्धर्वन चित्तः स्फुटितकरचरणोऽतिरूत्त्रमश्रुनखकेशः क्रोधी दन्तनखखादी च भवति।

अ पातव्यं नास्यानीरं प्रसृतित्रयमात्रकम् ।

[१३३]

अधृतिरहद्सौहदः कृतन्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ।

दुतगितरहनोऽनयस्थितात्मा वियद्पि गच्छिति सम्भ्रमेण सुप्तः ।।
अव्यवस्थितमित्रश्रलहिष्टमेन्द्रत्नधनसञ्चयमित्रः ।

किञ्चिदेव विलपत्यनिवद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ।।
वातिकाञ्चाजगोमायुशशाख्ष्द्रश्रनान्तथा ।

गृश्रकाकखरादीनामन्कैः कीर्तिता नराः ।।

स्वेदनो दुर्गन्यः पीतशिथिलाङ्गस्ताम्रनखनयनतालुजिह्नौष्ट

पाणिपाद्तलो दुर्भगो वलीपलितखालित्यज्ञष्टो वहुसुगुष्णद्वेषी ज्ञिप्र कोपप्रसादो मध्यमबलमध्यमायुश्च भवति ॥

मेधावी निपुणमतिर्विगृह्य वक्ता। तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्थ्यः।। सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान्। सम्पश्येदिप च हुताशविद्युदुल्काः।।

न भयात् प्रणमेद्नतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः। भवतीह् सदा व्यथितास्यगतिः सभवेदिह्पित्तकृतप्रकृतिः॥

मुजङ्गोल्रकगन्धव्वयत्तमार्जारवानरैः ।

्र व्याव्रक्षनकुलान्कैः पैत्तिकास्तु नराः स्पृताः ॥

दूर्वेन्दीवरनिस्त्रिञ्चाद्रीरिष्टशरकाण्डानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो वल-वांश्चिरप्राही दढवेरश्च भवति ।

गुक्ठाक्षः स्थिरकुटिलातिनीलकेशो लक्ष्मीवान् जलदमृदंगसिंहघोषः। सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् सम्परयेद्पि च जलाशयान् मनोज्ञान्।।

रक्तान्तनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्वगुणोपपत्रः। क्लेशज्ञमो मानियता गुरुणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः॥

[१३४]

दृद्शास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात् प्रद्दाति बहु। परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत् स सदा॥

> ब्रह्मस्द्रेन्द्रवरुणैः सिंहाइवगजगोवृषैः तार्क्षहंससमानुकाः इलेब्मप्रकृतयो नराः॥ द्वयोर्वा तिसृणांवापि प्रकृतीनान्तुलच्णेः। ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥ प्रकोपोवाऽन्यथाभावः चयो वा नोपजायते । प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ।। विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते। तद्वत्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न वाधितुम्।। प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहु:। पवनदहनतोयैः कीर्त्तितास्तास्तु तिस्रः॥ स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च न्रमावान्। शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महङ्किः॥ शौचमास्तिक्यमभ्यासी वेदेषु गुरुपूजनम्। त्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लच्चणम्।। माहात्म्यं शौर्यमाज्ञा च सततं शास्त्रवुद्धिता। भृत्यानां भरणञ्चाऽपि माहेन्द्रं कायलक्षणम्।। शीतसेवा सहिष्णुत्वं पैङ्गल्यं हरिकेशता। शियवादित्वमित्येतद्वारुणं कायलज्ञणम् ॥ मध्यस्थता सहिष्णुत्वमथस्य गमसञ्जयौ । महाप्रसवशक्तित्वं कौबेरं कायलज्ञणम्।। गन्धमाल्यप्रियत्वञ्च नृत्यवादित्रकामिता । विहारशीलता चैव गान्धवर्वं कायलच्याम् ॥ प्राप्तकारी दृढ़ोत्थानो निर्भयः स्पृतिमान् शुचिः। रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितो याम्यसत्ववान् ॥

१३५]

जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेविनम्। ज्ञानविज्ञानसम्पन्नमृषिसत्वं नरं विदुः ॥ सप्तेते सात्विकाः काया राजसांस्त निवोध मे । ऐश्वर्यवन्तं रौद्रञ्च शूरं चण्डमसृयकम् ॥ एकाशिनं चौदरिकमासुरं सत्वमीहशम्। तीक्ष्णमायासिनं भीहं चण्डं मायान्वितन्तथा ॥ विहाराचारचपलं सर्पसत्वं विदुर्नरम्। प्रवृद्धकामसेवी चाप्यजसाहार एव च।। अमर्पणोऽनवस्थायी शाकुनं कायलक्षणम्। एकान्तयाहिता रात्रावसूया धर्म्यवाद्यता ।। भशमात्रं तमश्चापि रात्तसं कायलक्षणम्। उच्छिष्टाहारता तैक्ष्ण्यं साहसप्रियता तथा।। स्त्रीलोलपत्वं नैर्लज्यं पैशाचं कायलचणम्। असंविभागमलसं दुःखशीलमसूयकम्।। लोलपञ्चाप्यदातारं प्रेतसत्वं विदुर्नरम्। षडेते राजसाः कायास्तामसांस्तु निवोध मे ॥ दुर्मोधस्वं मन्द्रता च स्वप्नेमैथुननित्यता। निराकरिष्णुता चैव विज्ञेयाः पाशवा गुणाः ॥ अनवस्थितता मौर्ख्य भीरुत्वं सलिलार्थिता। परस्पराभिमदेश्च मत्स्यसत्वस्य लज्ञगम् ॥ एकस्थानरतिर्नित्यमाहारे केवले रतः। वानस्पत्यो नरः सत्त्वधर्मकामार्थवर्जितः॥ इत्येते त्रिविधाः कायाः प्रोक्ता वै तमसास्तथा। कायानां प्रकृतीज्ञीत्वा त्वनुरूपां क्रियां चरेत्।। महाप्रकृतयस्त्वेता रजः सत्वतमः कृताः। शोक्ता लच्चणतः सम्यग्भिषक ताश्च विभावयेत्।। (सु॰ शा॰ अ०४) [१३६]

🗸 तथैव चरकोऽप्याह

समिपत्तानिलककाः केचिद् गर्भादिमानवाः ।

हश्यन्ते वातलाः केचित्पत्तलाः इलेष्मलास्तथा ।।

तेषामनातुराः पूर्वे, वातलाद्याः सदाऽऽतुराः ।

दोषानुशयिता ह्यषां देहप्रकृतिरुच्यते ॥

विपरीतगुणस्तेषां स्वस्थवृत्तेविधिर्हितः ।

समसर्वरसं सात्म्यं समधातोः प्रशस्यते ॥

(च० सू० अ० ७)

हिताहितसेवनवर्जनक्रमः

उचितादिहताद्धोमान् क्रमशो विरमेन्नरः।
हितं क्रमेण सेवेत, क्रमश्चात्रोपदिश्यते।।
प्रचेपापचये ताभ्यां क्रमः पादांशिको भवेत्।
एकान्तरं ततश्चोध्यं द्यन्तरं त्रयन्तरं तथा।।
क्रमेणापचिता दोषाः क्रमेणोपचिता गुणाः।
सन्तो यान्त्यपुनर्भावमप्रकम्प्या भवन्ति च॥
(च॰ सू० अ० ७)

अहितवर्जने हितसेवने च विशेषः

- 8 85, 8- 23.24,23, 24- 531, FEB. 8334. 8334.

विधिरेष विकाराणामनुत्पत्तौ निद्र्शितः। निजानामितरेषां तु पृथगेवोपदिश्यते॥ ये भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसम्भवाः। नृणामागन्तवो रोगाः प्रज्ञा तेष्वपराध्यति। ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषाद्यश्च ये।

[१३७]

मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः ॥ त्यागः प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः । देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ॥ आगन्तूनामनुत्पत्तावेष मार्गो निद्शितः। प्राज्ञः प्रागेव तत्कुर्योद्धितं विद्याद्यदात्मनः ॥ †आप्तोपदेशप्रज्ञानं प्रतिपत्तिश्च कारणम्। विकाराणामनुत्पत्तावृत्पन्नानां च शान्तये ॥ पापवृत्तवचः सत्त्वाः सूचकाः कलहित्रयाः । मर्मोपहासिनो लुब्धाः परवृद्धिद्विषः शठाः ॥ परापवाद्रतयश्चपला रिपुसेविनः। निर्घुणास्त्यक्तधर्माणः परिवर्ज्या नराधमाः ॥ बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्यस्मृतिसमाधिभिः। ॰ बृद्धोपसेविनो वृद्धाः स्वभावज्ञा गतव्यथाः॥ सुमुखाः सर्वभूतानां प्रशान्ताः शंसितत्रताः। सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणद्र्यनाः ॥ आहाराचारचेष्टासु सुखार्थी प्रत्य चेह च परं प्रयत्नमातिष्ठेदिबुद्धिमान् हितसेवने ॥ (च० सू० अ०६)

*- बुद्ध्या विषमविज्ञानं विषमञ्च प्रवर्तनम् ।
 प्रज्ञापराधं जानीयान्मनसो गोचरं हि तत् ॥

†--रजस्तमोभ्यां निर्मु कास्तपोज्ञानवलेन ये। येषां त्रिकालममलं ज्ञानमन्याहतं सदा॥ आप्ताः शिष्टा विवुद्धास्ते॥

(चरकः)

[१३८]

निन्दितानिन्दितपुरुषविवेचन पूर्वकमाचरणम्

इह खलु शरीरमधिकृत्याष्टौ पुरुषा निन्दिता भवन्ति. तद्यथा अतिदीर्घश्चातिहस्बश्चातिलोमा चालोमा चातिकृष्णश्चातिगौरश्चा तिस्थूलश्चातिकृशश्चेति ।

तत्रातिस्थूलकृशयोभू य एवापरे निन्दितविशेषा भवन्ति, अतिस्थूलस्य तावदायुषो हासो जवोपरोधः कृच्छ्वव्यवायता दौर्वल्यं दौर्गन्थ्यं स्वेदाबाधः क्षुद्रतिमात्रं पिपासातियोगश्चेति भवन्त्यष्टौ दोषाः । तद्दिस्थौल्यमातसंपूरणाद्गुरुमधुरशीतिस्तग्धोपयोगाद्व्या-यामाद्व्यवायाद्दिवास्वप्नाद्धर्षनित्यत्वाद्दिन्तनाद्वीजस्वभावाच्चो-पजायते । तस्यातिमात्रं मेदिस्वनो मेद एवोपचीयते न तथेतरे धातवः तस्मादस्यायुषो हासः; शैथिल्यात् सौकुमार्याद्गुरुत्वाच्च मेदसो जवोपरोधः; शुकाबहुत्वान्मेदसावृतमार्गत्वाच्च कृच्छूव्य-वायता, दौर्वल्यमसमत्वाद्धातूनां, दौर्गन्थ्यं मेदोदोपान्मेदसः स्वभावात्स्वेदल्खाच्च मेदसः श्लेष्मसंसर्गान्दिष्यन्दित्वाद्वहुत्वाद्गुरुत्वाद्वचायामासह्त्वाच्च स्वेदाबाधः, तीक्ष्णाग्नित्वात्प्रभूतकोष्टवा-युत्वाइश्वद्वान्मात्रं पिपासातियोगश्चेति ।

भवन्ति चात्र

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ।
चरन् संधुक्षयत्यग्तिमाहारं शोषयत्यपि ॥
तस्मात्स शीव्रं जरयत्याहारं चातिकाङ ज्ति ।
विकारांश्चाश्नुते घोरान् कांश्चित्काळव्यतिक्रमात् ।
एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ ।
एतौ हि दहतः स्थूळं वनदावो वनं यथा ॥
मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिळादयः ।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥

[१३९]

मेदोमांसातिबद्धत्वाचलस्फिगुद्रस्तनः अयथोपच्योत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते।। इति मेद्स्विनो दोषा हेतवो रूपमेव च। निर्दिष्टं, वक्ष्यते वाच्यमतिकाइर्येऽप्यतः परम् ॥ सेवा रूचान्नपानानां लङ्गनं प्रमिताशनम्। क्रियातियोगः शोकश्च निद्रावेगविनिग्रहः ॥ रूक्षस्योद्वर्तनं स्नानस्याभ्यासः प्रकृति‡र्जरा। विकारानुशय † क्रोधाः कुर्वन्त्यतिक्कशं नरम् ॥ व्यायाममतिसौहित्यं क्षतिपास।महौषधम्। कृशो न महते तद्वद्तिशीतोष्णमैथुनम्।। व्लीहा कासः चय स्वासो गुल्माशाँस्युदर। णि च। करां प्रायोऽभिधावन्ति रोगाश्च महणीगताः ॥ शुष्किस्फिगुद्रशीवो धमनीजालसंततः। त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरो मतः॥ सततव्याधितावेतावतिस्थूलकृशौ नरौ। सततं चोपचयौं हि कर्षणैर्वृहणैरिप ॥ स्थील्यकार्स्ये वरं कार्स्य समोपकरणौ हि तौ । यद्यभौ व्याधिरागच्छेत्थ्यूलमेवातिपीडयेत् ॥ सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नरः। दृढेन्द्रियत्वाव्दाधीनां न वलेनाभिम्यते॥ श्चित्पपासातपसहः शीतव्यायामसंसहः समपक्ता समजरः सममांसचयो मतः॥

^{* &#}x27;क्रियातियोगी वमनादिसंशोधनक्रियाणामतियोगः' गङ्गाधर:।

[🗘] प्रकृतिरतिकृशमातापित्रोः शोणितशुक्रस्य स्वभावः' गङ्गाधरः।

^{🕆 &#}x27;विकारानुशयो व्यावेश्चिरानुवृत्तिः' गङ्गाधरः।

[880]

गुरु चातर्पणं चेष्टं स्थूलानां कर्षणं प्रति । कुज्ञानां बृंहणार्थं च लघु संतर्पणं च यत्।। वातव्नान्यन्नपानानि श्लेष्ममेदोहराणि च। रूश्लोष्णा बस्तयस्तीक्ष्णा रूज्ञाण्युद्वर्तनानि च ।। गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगस्रोफलस्तथा। तकारिष्टप्रयोगस्तु प्रयोगो मान्तिकस्य च। विडङ्गनागरं क्षारः काललोहरजो मधु। यवामलकचूर्णं च प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते ॥ बिल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः। शिलाजतुप्रयोगस्तु साग्निमन्थरसः परः॥ प्रशातिका प्रियङ्गुश्च स्यामाका यवका यवाः। जुर्णाह्याः कोद्रवा मुद्राः कुळस्थाश्च मकुष्ठकाः ॥ आढकीनां च बीजानि पटोलामलकै सह। भोजनार्थं प्रयोज्यानि पानं चानु मधूद्कम् ॥ अरिष्टांश्चानुपानार्थे मेदो मांसकफापहान्। अतिस्थौल्यविनाशाय संविभज्य प्रयोजयेत् ।। प्रजागरं व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणाभिप्रवर्धयेत्।। स्वप्नो हर्षः सुखाशय्या मनसो निर्वृतिः शमः। चिन्ताव्यवायव्यायामविरामः प्रियद्र्शनम् ।। नवान्नानि नवं मद्यं प्राम्यानूपौद्का रसाः। संस्कृतानि च मांसानि द्धि सर्पिः पयांसिच ।। इक्षवः शालयो माषा गोधूमा गुडवैकृतम्। वस्तयः स्निग्धमधुरास्तैलाभ्यङ्गश्च सर्वदा ॥ स्निग्धमुद्धर्तनं स्नानं गन्धमाल्यनिषेवगाम्। शुक्रवासो यथाकालं दोषाणामवसेचनम्।।

[188]

रसायनानां बृष्याणां योगानामुपसेवनम् । हत्वातिकार्यमादत्ते नृणामुपचयं परम् ॥ अचिन्तनाच कार्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेन च । स्वप्रप्रसङ्गाच नरो वाराह इव पुष्यति ॥

हिताहितद्र व्यविवेक:

येषामेव हि भावानां संपत्संजनयेत्ररम् । तेषामेव विषद्वयाधीन् विविधान् समुदीरयेत् ॥

अथात्रेयस्य भगवतो वचनमनुनिशस्य पुनरेव वामकः काशिपतिरुवाच भगवन्तमन्त्रेयं—भगवन् ! संपन्निमित्तजस्य पुरुषस्य विपन्निमित्तजानां च रोगाणां किमभिवृद्धिकारणमिति ?

तमुवाच भगवानात्रेयः – हिताह। रोपयोगः एक एव पुरुषस्या-भिवृद्धिकरो भवति, अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधीनां निमित्त-मिति ॥

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच — कथमिह भग-वन् ! हिताहितानामाहारजातानां छत्त्रणमनपवादमभिजानीयां, हितसमाख्यातानां चैव ह्याहारजातानामहितसमाख्यातानां च मात्राकाछिक्रयाभूमिदेहदोषपुरुषावस्थान्तरेषु विपरीतकारित्वमु-पछभामहे इति ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः — यदाहारजातमग्निवेश ! समांश्चेव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयित विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, विपरीतमहितमिति; एतद्धिताहित श्ठचणमनपवादं भवति ॥

श्यद्वायोः पथ्यं तित्पत्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद् व्यमेकान्तेन

[१४२]

तद्यथा—आहारत्वमाहारस्यैकविधं, अर्थाभेदात्; स पुन-द्वियोनिः, स्थावरजंगमात्मकत्वात् ; द्विविधप्रभावः दिताहितोद-कविशेषात् ; चतुर्विधोपयोगः, पानाश्चनभक्ष्यलेह्योपयोगात् ; षडास्वादः रसभेदतः षड्विधत्वात् ; विशतिगुणः, गुरुलघुशीतो-रुणिस्निग्धरूत्तमन् ;तीक्ष्णिस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छलश्लक्ष्णखर-सृक्ष्मस्थूलसान्द्रद्वानुगमनात् ; अपरिसंख्येयविकल्पः, द्रव्यसंयोग-करणबाहुल्यात्।

तस्या खलु ये ये विकारावयवा भूयिष्ठमुपयुज्यन्ते, भूयिष्ठ-कल्पानां च मनुष्याणां प्रकृत्येव हिततमाश्चाहितमाश्च, तांस्तान् यथावदनुच्याख्यास्यामः।

हितमहितं वास्तीति केचिदाचार्या ब्रुवते तत्तु न सम्यक् । इह खलु यस्माद्द्र ज्याणि स्वभावतः संयोगतश्चेकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि चमवन्ति । तत्रैकान्तहितानि जातिसारम्यात् सिललघृतद्ध्यौदनप्रभृतीनि एकान्ताहितानि दहनपचनमारणादिषु प्रवृत्तान्यग्निक्षारविषादीनि । संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति । हिताऽहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तिपत्तस्यापथ्यमित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते ।

तद्यथा रक्तशालिषष्टिककङ्गुकसुकुन्दकपाण्डुकपोतकप्रमोदककालकशन-कपुष्पककर्दमकशकुनाहृतसुगन्धककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यागाकगो-धूमबेग्रायवादयः । एणहरिणकुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालककरकपोतला-वित्तिरिकपिञ्जलवर्तीरवर्त्तिकादीनां मांसानि । मुद्गवनमुद्गमकुष्टक-लायमसूरमङ्गल्यचण्यकहरेणवादकीसतीनाः । चिल्लिवास्तुकसुनिषण्णक-जीवन्तीतगड्डलीयकमण्ड्रकपण्यः । गव्यं घृतं सैन्धवदाडिमामलिमत्येषवृर्गः सर्वप्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः ।

(सु० सू० अ० २०)

[१४३]

तद्यथा – लोहितशालयः ज्ञूकधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमा भवन्त, मुद्गाः शमीधान्यानां, आन्तरीक्षमुद्कानां, सैन्धवं लवणानां, जीवन्तीशाक शाकानां, ऐणेयं मृगमांसानां, लावः पिक्षणां, गोधा विलेशयानां,रोहितो मत्स्यानां, गव्यं सिर्पः सिर्पेषां, गोक्षीरं चीराणां, तिलतेलं स्थावरजातानां स्नेहानां, वराहवसा आनूपमृगवसानां, चुलुकीवसा मत्स्यवसानां पाकहंसवसा जलचर-विहंगवसानां, कुक्कुटवसा विष्करशङ्किनवसानां अजमेदः शाखादमदसां, शृंगवेरं कन्द्रानां, मृद्वीका फलानां, शर्करा इक्ष्यिकाराणामिति प्रकृत्येव हिततमानामाहारिवकाराणां प्राधान्यतो द्रव्याण व्याख्यातानि भवन्ति ॥

(च० सू० अ० २५)

तथा—ब्रह्मचर्य निवातशयनोष्णोदकनिशास्वप्रव्यायामारचे-कान्ततः पथ्यतमाः।

[सु० सू० अ० २०]

तेलसिर्पर्मधूनि वातिपत्तश्लेष्मप्रशमनानि द्रव्याणि भवन्ति । तत्र, तेलं स्नेहौष्णयगौरवोपपन्नत्वाद्वातं जयित सततमभ्यस्यमान, वातो हि रौद्यशौरयलाघवोपपन्नो विरुद्धसुणो भवति, विरुद्धगुण सन्निगते हि भूयसाऽल्पमव नीयते तस्मात्ते लं वातं जयित सततमभ्यस्यमानं, सिर्पः खल्वेवमेव पित्तं जयित माधुर्याच्छैत्यान्मन्दवीर्यत्वाच, पित्तं ह्यमधुरमुणां तीद्दणं च, मधु च श्लेष्माणं जयित, रौद्यात्तै दृण्यात् कषायत्वाच, श्लेष्मा हि स्निग्धो मन्दी मधुरश्च ॥

यचान्यदिष किंचिद्द्रव्यमेवं वातिषत्तकफेम्यो गुणतो विपरीतं विषद्धं तच्चैताञ्जयत्यभ्यस्यमानम् ॥ (च॰)

[388]

अथ खलु त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुक्षीताधिकमन्येभ्यो द्रव्येभ्यः; तद्यथा—पिष्पलीः, क्षारं, लवणिमति ॥

पिप्पल्यो हि कटुकाः सत्यो मधुरविपाका गुर्व्यो नात्यर्थं सिन्धोष्णाः प्रहेदिन्यो भेषजाभिमतारच, ता सद्यः शुभाशुभकारिण्यो भवन्ति, आपातभद्राः प्रयोगसमसाद्गुण्यात्, दोषसंचयानुबन्धाः सततमुषयुज्यमाना हि गुरुप्रहेदित्वाच्छ्लेष्माणमुत्ह्रेशयन्ति, औष्ण्यात्पित्तं, नच वातप्रशमनायोपकल्पन्तेऽल्पस्नेहोष्णभावात्, योगवाहिन्यस्तु खलु भवन्ति; तस्सात्पिप्पलीर्नोत्युपयुञ्जीत ॥

त्तारः पुनरोष्ण्यतेक्ष्ण्यलवणोपपन्नः क्वेदयत्यादौ पश्चाद्विशो षयित, स पचनद्हनभेदनार्थमुपयुज्यते; सोऽतिप्रयुज्यमानः केशाचिहृदयपुं स्त्वोपघातकरः संपद्युते, ये ह्येनं प्रामनगरिनगम-जनपदाः सततम्पयुञ्जतेतेऽप्यान्ध्यषाण्ड्यखालित्यपालित्यभाजो हृद्यापकर्तिनश्च भवन्ति । तद् यथा प्राच्याश्चीनाश्च । तस्मान् क्षारंनात्युपयुञ्जीत । लवणं पुनरोष्ण्यतेक्ष्ण्योपपन्नमनतिस्निग्धम-पक्लेदि विस्नंसनसमर्थमन्नद्रव्यरुचिकरमापातभद्रं प्रयोगसम साद्गुण्याद्दोषसञ्चयानुबन्धम् । तद्रोचनपाचनोपक्केदनविसं-सनार्थमुपयुज्यते । तद्त्यर्थमुपयुज्यमानंग्नानिशैथिल्यदौर्वल्या भिनिवि त्तिकरंशरीरस्य भवति । ये ह्येनद्प्रामनगरनिगमजन पदाः सततम्पयुञ्जते ते भूयिष्टं ग्लास्नवः शिथिलमांसशोणिता अप-रिक्लेशसहाश्च भवन्ति । तद्यथा—वाह्नीकसौराष्ट्रिकसैन्धव-सौवीरकाः । तेहि पयसापि सदा लवणमश्नन्ति । येऽपीहभूमेर-त्युषरादेशास्तेप्त्रौषधिवीरुद्धनस्पतिवानस्पत्या न जायन्ते। अल्प तेजसो वा भवन्ति छवणोपहततत्वात् । तस्माछवणं नात्युपयुञ्जीत ये द्यति लवणसात्स्याः पुरुषाः तेषामि खालित्येन्द्रलुप्तपालित्यानि बलयश्चाकाले भवन्ति ।

[१४4]

तस्मात्तेषां तत्सात्म्यतः क्रमेणापगमनं श्रेयः; सात्म्यमपि हि क्रमेणोपनिवर्त्यमानमदोषमलपदोषं वा अवति ॥

सात्म्यं नाम तत्—यदात्मन्युपशेते ; सात्म्यार्थो ह्युपशयार्थः । तित्रविधं —प्रवरावरमध्यविभागेन, सप्तविधं च – रसैकैकत्वेन, सर्वरसोपयोगाच ॥

तत्र सर्वरसं प्रवरं, अवरमेकरसं, मध्यमं तु प्रवरावरमध्यस्थं तत्रावरमध्याभ्यां सात्स्याभ्यां क्रमेण प्रवरमुपपाद्येत्सात्स्यम् । सर्वरसमपि च द्रव्यं सात्स्यमुपपत्रं प्रकृत्याद्युपयोक्त्रष्टमानि सर्वाण्याहारविधिविशेषायतनान्यभिसमीक्ष्य हितमेवानुरुध्येत ।। (च० वि० अ०१)

अत उद्यमहितान्युपदेक्ष्यामः—यवकाः शूकधान्यानामपथ्यत्वे प्रकृष्टतमा भवन्ति, माषाः शमीधान्यानां, वर्षानादेयमुदकानां, औषरं लवणानां, सर्षपशाकं शाकानां गोमांसं मृगमांसानां,
काणकपोतः पक्षिणां, भेको विलेशयानां, चिलिचिमो मत्स्यानां,
आविकं सर्पिः सर्पिषां, अविज्ञीरं ज्ञीराणां, कुसुम्भस्नेहःस्थावरस्नेहानां, महिषवसा आनूपमृगवसानां, कुम्भीरवसा मत्स्यवसानां, काकमद्गुवसा जलचरविहंगवसानां, चटकवसा विष्किरशकुनिवसानां, हस्तिमेदः शाखाद्मेद्सां, निकुचं फलानां, मूलकंकन्दानां, फाणितिभक्षुविकाराणामिति प्रकृत्यैवाहिततमानामाहारविकाराणां प्रकृष्टतमानि द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति।

(च० सू० अ० २५)

अहितकरं विरुद्धमशनम्

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयं पुनरप्तिवेश ख्वाच-भगवन् ! श्रुतमेतद्वितथमर्थसंपद्युक्तं भगवतो यथाद्रव्यगुणकर्माधि-

[१४६]

कारे वचः, परं त्वाहारविकाराणां वैरोधिकानां लच्चणमनितसं-

च्तेपेणोपदिश्यमानं शुश्रूषामह इति ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः—देहधातुप्रत्यनीकभूतानि द्रव्याणि देहधातुभिर्विरोधमापद्यन्ते, परस्परगुणविरुद्धानि कानिचित् कानिचित्संयोगात्संस्काराद्पराणि देशकालमात्रादिभिश्चापराणि तथा स्वभावादपराणि ।।

तत्र यान्याहारमधिकृत्य भूयिष्ठमुपयुज्यन्ते तेषामेकदेशं वैरो-धिकमधिकृत्योपदेक्ष्यामः—न मत्स्यान् पयसा महाभ्यवहरेत्, डभयं ह्योतन्मधुरं मधुरविपाकं महाभिष्यन्दि शीतोष्णत्वाद्विरु-द्धवीर्यं विरुद्धवीर्यत्वाच्छोणितप्रदूषणाय महाभिष्यन्दित्वानमार्गो परोधाय चेति।

तदनन्तरमात्रेयवचनमनुनिशम्य भद्रकाष्योऽग्निवेशमुवाच — सर्वानेव मत्स्यान् पयसा सहाभ्यवहरेदन्यत्रैकस्माचिलिचिमात्; स पुनः शकली सर्वतो लोहितराजिः रोहितप्रकारः प्रायो भमो चरित, तं चेत्पयसा सहाभ्यवहरेत्रिः संशयं शोणितजानां विवन्ध-जानां च व्याधीनामन्यतममथवा मरणं प्राप्नुयादिति ॥

नेति भगवानात्रेयः। सर्वानेव मत्स्यात्र पयसाऽभ्यवहरेद्धि-शेषतस्तु चिलिचिमं, स हि महाभिष्यन्दित्वात्स्थूललज्ञणतरानेतान्

व्याधोनुपजनयत्यामविषमुदीयरति च।।

यान्यान्पौदकपिशितानि च मधुतिलगुडपयोमापमूलकवि-सैविंह्य्डधान्येश्च नैकध्यमद्यात्, तन्मूलं च वाधिर्यान्ध्यवेपथुजा-ड्यविकलमूकतामैन्मिन्यमथवा मरणमाप्रातिः (न पौष्करं रोहिणीशाकं वा) न कपोतान् सार्षपतैलभृष्टान्मधुपयोभ्यां सहाभ्यवहरेत्, तन्मूलं हि शोणिताभिष्यन्दधमनीप्रविचयापस्मा-रशङ्ककगलगण्डरोहिण्याकानामन्यतमं प्राप्नोत्यथवा मरणमितिः न मूलकलशुनकृष्णगन्धार्जकसुमुखसुरसादोनि भन्नयित्वा पयः

[१४७]

सेव्यं, कुष्टावाधभयात् ; न जातुशाकं न लकुचं पकं मधुपयोभ्यां सहोपयोज्यं, एतद्धि मरणायाथवा वलवर्णतेजोवीर्योपरोधाया-लघुव्याधये पाण्ड्याय चेति; तदेव लिकुचं पकं न माषसूप-गुडसपिभिः सहोपयोज्यं, वैरोधिकत्वात्; तथाऽऽम्राम्रातकमातु-लुङ्गलिकुचकरमर्दमोचद्न्तशठवद्रकोशाम्रभव्यजाम्ववकपित्थति-न्तिडीकपारावताचोटपनसनालिकेरद्राडिमामलकान्येवंप्रकाराणि चान्यानि सर्वं चाम्छं द्रवमद्रवं च पयसा सह विरुद्धं, तथा कङ्गुवरकमकुंष्ठककुळत्थमाषनिष्पावाः पयसा सह विरुद्धाः; पद्मोत्तरिकाशाकं शार्करो मैरेयो मधु च सहोपयुक्तं विरुद्धं वातं चातिकोपयति; हारिद्रकः सर्पपतैलभृष्टो विरुद्धः पित्तं चातिकोपयति; पायसो मन्थानुपानो विरुद्धः श्लेष्माणं चाति-कोपयतिः उपोदिका तिलकल्कसिद्धा हेतुरतीसारस्यः बलाका वारुण्या सह कुल्मापैरिप विरुद्धा; सैव सूकरवसापरिभृष्टा सद्यो व्यापादयति; मायूरमांसमेरण्डसीसकावसक्तमेरण्डाग्निण्छ-ष्टमरण्डतैलयुक्तं सद्योव्याप दयतिः तदेव भरमपांसुपरिध्वस्तं सत्तौद्रं मरणाय; हारोतकमांसं हारिद्रसोसकावसक्तं हारिद्रा-भिष्छुष्टं सद्यो व्यापाद्यति; मत्स्यनिस्तालनसिद्धा पिष्पल्यस्तथा काकमाची मधु च मरणायः मधु चोष्ण मुख्णार्तस्य च मधु मर-णायः मधुसर्पिषी समधृते, मधु वारि चान्तरिक्षं समधृतं मधुपुष्करवीजं, मधु पीत्वोष्णोद्कं भहातकोष्णोद्कं, तक्रसिद्धः कम्पिल्लकः, पर्युषिता क कमाची, अंगारशूल्या भास अइति विरु-द्धानीत्येतद्यथाप्रश्नमभिनिर्दिष्टं भवतीति ।

टिप्पगी

क्श— वल्लीफलकवककरीर।मुफललवणकुल्रथिपण्याकद्धितैलान्पौद्--कविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकमांसमद्यज्ञाम्बविलिचममत्स्यगो-धावराहांश्च नैकथ्यमश्नीयात् प्रमा।

[886]

भवन्ति चात्र श्लोकाः।

यत्किचिद्दोषमुत्कलेश्य न निर्हरति कायतः। आहारजातं तत्सर्वं विरुद्धमहितार्थकम् ॥ यचापि देशकालाग्निमात्रासात्स्यानिलादिभिः। संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि॥ परिहारोपचाराभ्यां पाकात्संयोगतोऽपि च। विरुद्धं तच न हितं हत्संपद्विधिभिश्च यत्।। विरुद्धं देशतस्ताव द्र्चतीक्ष्णादि धन्वनि। आनुपे स्तिग्धशीतादि भेषजं यत्रिषेव्यते ॥ कालतोऽपि विरुद्धं यच्छीतरूचादिसेवनम्। शीते काले तथों च कटुकों ज्णादिसेवनम्।। विरुद्धमनले तद्वज्ञानुरूपं चतुर्विधे। मधुसर्पिः समधृतं मात्रया तद्विरुध्यते ॥ कटुकोष्णादिसात्म्यस्य स्वादुशीतादिसेवनम्। यत्तत्सात्म्यविरुद्धं तु, विरुद्धं त्वनिलादिभिः॥ या समानगुणाभ्यासविरुद्धात्रौषधिकया। संस्कारतो विरुद्धं तद्यद्वीज्यं विषवद् व्रजेत्॥ ऐरण्डसीसकासक्तं शिखिमांसं तथैव हि।

टिप्पगी

सुराक्रशरापायसांश्च नैकथ्यं, मत्स्यैः सहेक्षुविकारान् । कदलीफलं तालफलेन पयसा द्व्ना तक्रेण वा, कांस्यभाजने दशरात्रपर्युषितं सर्पिः नाश्नीयात् ।

(सु० सू० अ० २०)

अ⊕अहितायोपपद्यते इ० पा०।

[889]

विरुद्धं वीर्षतो * ज्ञेयं वीर्यतः शीतलात्मकम् ॥
तत्संयोज्योष्णवीर्येण द्रव्येण सह सेव्यते ।
क्रूरकोष्टस्य चात्यल्पं मन्दवीर्यमभेदनम् ॥
मृदुकोष्टस्य गुरु च भेदनीयं तथा बहु ।
एतत्कोष्टविरुद्धं तु, विरुद्धं स्यादवस्थया ॥
श्रमव्यवायव्यायामसक्तस्यानिलकोपनम् ।
निद्रालसस्यालसम्य भोजनं रलेष्मकोपनम् ॥
यचानुतस्व्य विण्मूत्रं भुंक्ते यश्चावुभुक्षितः ।
तच्च क्रमविरुद्धं तु वराहादीन्निषेव्य यत् ।
सेवेतोष्णं घृतादींश्च पीत्वा शीतं निषेवते ॥

टिप्पणी

%—अत उद्धरसद्वन्द्वानि रसतो वीर्य्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः । तत्र मधुरान्तौ रसवीर्य्यविरुद्धीमधुरत्व-वंणो च मधुरकटुको च सर्वतः मधुरितक्तो रसिवपाकाभ्यां मधुरकषायौ चाम्छछवणौ रसतः । अम्लकटुकौ रसिवपाकाभ्या-मम्छितिकावम्छकषायौ च सर्व्वतः । छवणकटुकौ रसिवपाकाभ्यां लवणितक्तो छवण्यकषायौ च सर्व्वतः । कटुितकौ रसिवपर्याभ्यां कटुकषायौ तिक्तकषायौ च रसतः तरतमयोगयुक्तांश्च भावानिति रूक्षानितिस्निग्धानत्युष्णानितशीतानित्येवमादीन् विवर्जयेत् ।

भवन्ति चात्र

विरुद्धान्येवमादीनि वीर्यतो यानि कानि च। तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्यथायथम्॥ व्याधिमिन्द्रियदौर्वल्यं मरणञ्चाधिगच्छति। विरुद्धरसवीर्याणे भुञ्जानोऽनात्मवाञ्चरः॥ (स०स० अ०२०)

[१५0]

विरुद्धं पाकतश्चापि दुष्टदुर्दारुसाधितम्। अपक्वतण्डुलात्यर्थपक्वदग्धं च यद्भवेत्।। संयोगतो विरुद्धं तद्यथाऽम्लं पयसा सह। अमनोरुचितं यच हृद्धिरुद्धं तदुच्यते॥ संपद्धिरुद्धं तद्विद्यादसंजातरसं तु यत्। अतिक्रान्तरसं वाऽपि विपन्नरसमेव वा॥ ज्ञेयं विधिवरुद्धं तु भुज्यते निभृतेन यत्। तदेवंविधमन्नं स्याद्धिरुद्धमुपयोजितम्॥ विरुद्धाशनस्य वितथत्वे कारणम् सात्म्यतोऽल्पतया वाऽपि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च। स्नेह्व्यायामविलनो विरुद्धं वितथं भवेत्॥

विरुद्धाशनजा रोगाः

षाण्ड्यान्ध्यवीसपदकोदराणां विस्फोटकोन्मादभगन्दराणाम्।
मूच्छीमदाध्मानगळामयानां पाण्ड्वामयस्यामविषस्य चैव ।।
किलासकुष्टमहणीगदानां शोषास्रपित्तज्वरपीनमानाम्।
संतानदोषस्य तथेव मृत्योविकद्धमन्नं प्रवदन्ति हेतुम्।।

वैरोधिकनिमित्तानांव्याधीनांप्रतिघातकरोपायाः

एषां च खलु परेषां च वैरोधिकितिमित्तानां व्याधीनामिमे भावाः प्रतिकारा भवन्ति । यथा-वमनं विरेचनं च, तद्विरोधिनां च द्रव्याणां संशमनार्थमुपयोगः, तथाविधेश्च द्रव्यैः पूर्वमिन-संस्कारः शरीरस्येति ।

भवति चात्र विरुद्धाशनजान् रोगान् प्रतिहन्ति विरेचनम् । वसनं शमनं चैव पूर्वं वा हितसेवनम् ॥ (च०सू० अ० २६)

[848]

उपवास:

यत्किञ्चल्लाघवकरं देहे तल्लंघनं स्मृतम्। लंघनस्यैकदेशोऽयमुपवासः प्रकीर्तितः॥ चतुष्प्रकारा % संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ। पाचनान्युपवासश्च व्यायामञ्चेति लंघनम्॥ (च० सू० अ० २२)

उपवासफलम्

"पुण्यप्रदो ह्यामदोषहरोऽनलकरः सदा। स्फूर्तिद्श्चोपवासो वै इन्द्रियाणां प्रसादकः॥ प्रायो त्रतोपवासो हि विघेयः शास्त्रसम्मतः। धर्मः स्वास्थ्यञ्च लभ्येत वयःस्थैः‡ सुविचारिभिः॥"

सर्वव्रतेषु पालनीयाः सामान्यधर्माः

क्षमा सत्यं द्या दानं शौचिमिन्द्रियनिष्रहः। देवपूजा च हवनं सन्तोषस्तप आर्जवम्।। सर्वव्रतेष्वयं धर्मः समान्यो दशधा स्मृतः। (ध० शा०)

एकादशीव्रतम्

"पक्षस्याभ्यन्तरेऽवश्यमुपोष्यैकादृशी तिथि:। अधिकं नैव शक्येत व्रतं कर्तुनरैर्यदि॥"

^{*—}वमनविरेचननस्यनिरूहवस्तय इति ४, ऋनुवासनस्य वृ इंग्-त्वास्यागः।

[🖫] नवालैर्नवृद्धेरिति भावः, (वालवृद्धातुरैर्विनेति धर्मशास्त्रे)

[१५२]

उपवासस्य भेदा विधिश्च

"निराहारः फलाहारो द्विधा लोके तु सम्मतः। प्रथमो हि वरस्तत्र समृतोऽभावे द्वितीयकः।। निराहारोऽपि द्विविधः सजलो निर्जलस्तथा। यथाप्रकृति संसेव्यो विचार्य दूरदर्शिभिः।। सजलो वातपित्तिभ्यो निर्जलः श्लेष्मिणे तथा। फलन्तु लघु भोक्तव्यमविष्टम्भकरं सकृत्।। पूर्वरात्रावुपोष्येव भुक्वाऽल्पं वा त्रती भवेत्। अहोरात्रं तथा प्राम्यदिवा स्वप्नादिकं स्यजेत्।। कृत्वा शौच।दिकं प्रातः, लघु भुञ्जीत भोजनम्। स्निग्धं सुमधुरं रुच्यं मृद्धन्नं साधु साधितम्॥"

अनुपवास्याः

अहिताग्निरनड्वांश्चब्रह्मचारी च ते त्रयः। श्रिश्रन्त एव शोभन्ते नैषां सिद्धिरनश्नताम्।। (स्पृतिः)

केचिदातुरा अप्युपवासाहीः

त्वग्दोषिणां प्रमीढानां स्निग्धाभिष्यन्दि वृंहिणाम् । शिशिरे छङ्घनं शस्तमिप वातविकारिणाम् ॥ श्रवहुश्लेष्मिपत्तास्रमताः संसृष्टमारुताः। वृहच्छरीरा विलन उपवासाय ते मताः॥

असङ्ग्रजलपानाच सङ्गत्ताम्बूळचर्वणात् ।
 वतनाशस्तदा ज्ञेयः दिवास्वापाच मैथुनात् ॥

(ध॰ शा॰)

[१५३]

येपामल्पवला रोगाः कफित्तसमुत्तिथताः। वन्यतीसारहद्रोगविसूच्यलसकज्वराः॥ विवन्धगौरवोद्गारहलासारोचकादयः। पिपासानिप्रहैस्तेपामुपवासैश्च तान् जयेत्॥ (च०सू० अ० २२)

प्राणाविरोधिलङ्घनोपदेशः

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घानेनोपपाद्येत्। वलाधिष्ठ नमारोग्यं यद्र्थोऽयं क्रियाक्रमः॥

(चः)

असुरंघितलक्षणम्

वातमूत्रपुरीषाणां विशागें गात्रळाववे ।
हृद्योद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्कमे गते
स्वेदे जाते रुचौ चैव क्षुत्पिपासासहोद्ये ।
कृतं छङ्घनमादेश्यं निव्यथे चान्तरात्मिन ॥
(च० स० अ० २२)

अतिकृतलङ्घनदोषाः

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च।
क्षुत्प्रणाशोऽक्रिक्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः।।
मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूष्ववातस्तमो हृदि।
देहाग्निवलनाशश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत्।।
(च०सू० अ० २२)

–दोषाणामेव सा शक्तिर्वधने या सहिष्णुता ।
 न तु दोषच्ये कश्चित् सहते लंधनादिकम् ॥

(च०)

[१५8]

मादकद्भव्याणामुपयोगनिषेधः

''मद्यं नानाविधं यच क्षीरं खर्जूरतालयोः। धुस्तूरवीजं भङ्गा च फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ गञ्जा चण्डू तथा चर्मः तमाखु विषितिन्दुकम्। कोकिणो महकः शृङ्गी वत्सनाभादिको विष:।। तथा मदवहा दुष्टा विल्वक्रमुककोद्रवाः। तमोगुणात्मकाः सर्वे बुद्धि हज्जीवितच्छिदः !।। एतेषां भक्षणं पानं धूमपानं तथैवच । न कार्यं सुहठात्क्वाऽपि सदा सुस्वास्थ्यकांक्षिभिः।। जायन्ते धूमपानात्त श्वयथुः श्वासयन्त्रिकः। कासः श्वासः स्वरध्वंसो दौर्गन्ध्यं वदने तथा ।। भक्षणाच तमाखोर्हि मालिन्यमानने सदा। कार्यालस्यं स्मृतेर्नाशो दौर्वल्यं हृद्यस्य च ॥ शिरोद्न्ताक्षिरोगाश्च वह्निमान्चादयो गदाः ॥" यावदृदृष्टेर्न सम्भ्रान्तियावत्र क्षोभते मनः। तावदेव विरन्तव्यं मद्या+दात्मवता सदा ॥ धर्माधर्मं सुखं दुःखमर्थानर्थं हिताहितम्। यदासक्तो न जनाति कथं तच्छीलयेद्बुधः॥

त्यां चर्सादौ 'निकोटीन' इत्याख्यं भयावहं विषं भवति ।

^{+—}मादकद्रव्यसेवनं ज्ञानेन्द्रियशक्तिह्रासकरमित्यर्थः।

^{‡ —} हृद्यमस्तिष्कफुप्फु सादीनां विकृतत्वाजीवितमेव नश्यति । श्रवाते जरा मृत्युरिष प्राप्यते इति ।

^{♦—}आयुर्वेदोक्तरीत्या निर्मितस्य मद्यस्य विधिपूर्वेकं सेवनं कर्तुं शक्यत त्रावश्यकतायाम् ।

[१५५]

मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः। सोन्माद्मद्मूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः॥ यत्रेकः स्मृतिविश्वं शस्तत्र सर्वमसाधु यत्। अयुक्तियुक्तमन्नंहि व्याधये मरणाय वा॥ मद्यं त्रिवर्गधीधैर्यळजादेरिप नाशनम्। निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितातमः बुद्धिपूर्वकृत्। विकारैः स्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः॥

(वा०)

देशः 🛭

"देशं बुध्द्वानरोनित्यमाहारादिकमाचरेत्। न जातु प्राप्नुयाद्रोगं तद्विपरीतसेवनात्॥"

तत्र त्रिविधः खलु देशो जाङ्गलोऽन्पः साधारणश्चेति । तत्र-जाङ्गलः पर्याकाशभूयिष्ठस्तरुभिरपि कदरखिद्रासनाश्वकणध-वितिनशश्चकीशालसोमवल्कबद्रीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकीवनगह-नोऽनेकशमीककुभिश्चशपापायः स्थिरशुष्कपवनवलिध्यमानप्रनृत्य-त्तरुणविटपः, प्रततमृगतृष्णाकूपोपगृहस्तंनुखरपरुषसिकताशर्कराब-हुलो लावितिरिचकोरानुपचितभूमिभागो वातिपत्तवहुलिस्थर-कठिनमनुष्यप्रायो ज्ञेयः ॥

अथानूपो हिन्तालतमालनारिकेलकद्लीवनगहनः, सरि-त्समुद्रपर्यन्तप्रायः, शिशिरपवनबहुलो, वञ्जुलवनवानीरोपशो-भिततीराभिः सरिद्धिरुपगतभूमिभागः, ज्ञितिधरनिकुञ्जोपशो-

क्ष-भूमिदेइप्रभेदेन देशमाहुरिंह द्विधा । जांगर्ल वातभूयिष्ठमानूपं तु कफोल्वणम् । साधारण सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ।

(वा०)

[१५६]

भितो, मन्द्रपवनानुजितिचितिरहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगह-नभूमिभागः, स्निग्धतरुप्रतानोपगृहो, हंसचक्रवाकवलाकानन्दी मुखपुण्डरीककादम्बमद्गुको यष्टिभृङ्गराजशतपत्रमत्तकोकिलानुना-दिततरुणविटपः, सुकुमारपुरुषः पवनकफ्षायो ज्ञेयः ॥

अनयोरेव द्वयोर्देशयोर्वीरुद्धनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतः स्थिरसुकुमारवर्णसंहननोपपन्नसाधारणगुणपुरुषः साधारणो ज्ञेयः॥ (च० क० अ० १)

> समाः साधारणे यस्माच्छीतोष्णवृष्टिमारुताः । समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥ उचिते वर्तमानस्य नास्तित दुर्देशजं भयम् । श्राहारस्वप्रचेष्टादौ तद्देशस्य कृते सति ॥ (भा० प्र०) यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्ञं तस्यौषधं हितम् । देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥ स्वदेशे निचितादोषा श्रान्यस्मिन् कोपमागताः । वळवन्तस्तथा न स्युर्जळजाः स्थळजास्तथा ॥

> > (वृद्धवाग्भटः)

जलम्

जलं जीवनार्थमेकमत्यावश्यकं वस्तु । न केवलं भोजनार्थं किन्तु जनानां स्वशरीरस्य स्वकीयवस्त्रस्यान्यद्रव्याणां वा शु-

टिप्पणी

%—जलं भागद्वयोद्जनैकभागौषजनसमाहारेण निर्मीयते । सर्वथाविशुद्धं जलं यत्र रासायनिकतया कश्चिदोषो न स्याद्दुर्ल-भमस्ति । त्र्यतोलोके पारदृश्यं गन्धस्व दुतारंगरिहतं विशेषतः घनपदार्थेन्द्रियकपदः श्रीदिमात्रावाहुल्यहीनं स्वच्छं दीप्यमान मिनेत विशुद्धं मन्यते ।

[१५७]

द्धयर्थं सततावश्यकमस्ति। न केवला मनुष्याः किन्तु पश्चो वनस्पतयः केचिद्पि प्राणिन एतद्न्तरेण न जीवितुं शक्नु-वन्ति। मनुष्यशरीरे समस्तभारस्य १/२ भागो जलस्यव वर्तते। तद्दिदंघनद्रववाष्पेत्यवस्थात्रये विद्यते घनावस्थायां यथा हिमः, द्रवावस्थायां यथा वर्षा, समुद्रः, नद्गे, सरः, कूप इत्यादि, वाष्पावस्थायां तु वायुमण्डलस्य वायौ प्राणिनिःश्वासे च लभ्यते।

दिन्यजलगुणाः

पानीयमान्तरीत्तमनिर्देश्यरसममृतं जीवनं तर्पणं धारण-माश्वासज्जननं श्रमन्नं क्षमिपपासामदम्च्छीतन्द्रानिद्रादाहप्रश-मनमेकान्ततः पथ्यतमञ्च तदेवावनीपिततमन्यतमं रसमुपलभते स्थानिवशेषात्रदीनद् अ सरस्तडागवापीकृपचुण्टीप्रस्रवणोद्भिद्धि-किरकेदारपल्वलादिषु स्थानेष्ववस्थितमिति।

(सु॰ सु॰ अ० ४५)

टिप्पगी

क्ष नद्यो गंगाद्याः, नदः सिन्धुशोणाद्यः, सरः प्रकृतिखातं पुरुषव्यापारं विना, तडागः पुरुषव्यापारकृतं खातम्, वापी इष्टकादिनिबद्धा ससोपानतीर्था पुष्करिणीतिलोके, कृप इष्टिकादिनिबद्धा ससोपानतीर्था पुष्करिणीतिलोके, कृप इष्टिकादिनिबद्धाऽसोपानः, चुण्टी अबद्धकृपः, प्रस्रवणमुचप्रदेशा- । स्प्रस्रवज्ञलस्थानं पर्वताश्रितम्, चिद्धदं पुनर्निम्नस्थानादूर्थ्वोत्तिष्ठ ज्ञलस्थानम्, विकिरं वालुकादि विकीर्थ गृह्यमाणोदकस्थानम्, केदारः प्रसिद्धः पल्वलमान्पदेशजं तृणादिच्छन्नं सरः, त्र्याद्मिन्हणाद् हृदसमुद्रादिप्रहणम् (डल्हणः)। दिव्योदकं भोजन- निर्माणार्थं शस्त्रादिप्रद्वालनार्थञ्चापि श्रेष्ठतमं मृदुत्वात्त्राराभावात् शोधनद्रव्यस्याल्पोपयोगाच ।

[१५८]

एकविधस्याऽपिजलस्यवहुप्रकारत्वम् जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात् । तत्पतत्पतितं चैव देशकालावपेचते ॥ खात्पतत्सोमबाय्वकैंः सृष्टं कालानुवर्तिभः । श्रीतोष्णिक्षिग्धरूचाद्यर्थथासत्रं महीगुणेः ॥ श्रीतं शुचि शिवं मृष्टं विमलं लघु षड्गुणम् । प्रकृत्या दिव्यमुदकं, भ्रष्टं पात्रमपेक्षते ॥ श्वेते कषायं भवित पाण्डुरे चैव तिक्तकम् । कपिले क्षारसंसृष्टमूषरे लवणान्वितम् ॥ कटु पर्वतिविस्तारे मधुरं कृष्णमृत्तिके । एतत्षाङ्गुण्यमाख्यातं महीस्थस्य जलस्य हि ॥ (च० सू० अ० २७)

तत्र लोहितकपिल्रपाण्डुपीतनील्गुक्चेष्वविनप्रदेशेषु मधुरामूलवणकटुतिक्तकषायाणि यथासंख्यमुदकानि सम्भवन्तीत्येके
भाषन्ते, तत्त सम्यक् तत्र पृथिव्यादीनामन्योन्यानुप्रवेशकृतःसिल्लरसो भवत्युत्कर्षापकर्पेण तत्र स्वगुणभूमियिष्ठायां भूमाम्लं
लवणञ्च। अम्बुगुणभूयिष्ठायां मधुरम्। तेजोगुणभूयिष्ठायां कटुकं
तिक्तञ्च। वायुगुणभूयिष्ठायां कषायञ्च। आकाशगुणभूयिष्ठायामव्यक्तरसमव्यक्तंद्वाकाशमित्यतस्तत्प्रधानमव्यक्तरसत्वात्।।

नलस्योपयोगः

जलस्योपयोगो द्विविधः, आभ्यन्तरिको वाह्यश्च । तत्र पानार्थः मुपयोग आभ्यन्तरिकः । स्नानमार्जनयार्गसिञ्चनविविध कलागारा- द्यर्थमुपयोगो वाह्यश्चेति ।

आन्तरीक्षाम्बुभेदाः

तत्रान्तरीक्षं चतुर्विधम्। तद् यथा धारं कारं तौषारं हैम-

[१49]

मिति तत्र धाराभिः पततीति धारम्। करो वर्षोपलास्तेषां तोयं कारम्। तौषारं यद्वश्यायजं निशाजलम्। तदेव संहितावयव-वत्वेन स्फटिकशिलाशकलसदृशावयवं हिमं तद्भवं हैमम्।

तेषां धारं प्रधानं लघुत्वात्तत्पुनिर्द्धिवधं गांगं सामुद्रं चेति। तत्र गांगमःश्वयुजे मासि प्रायशो वर्षति तयोद्देयोगपि परीक्षणं कुर्वीत।

गाङ्गसामुद्रयोः परीचणम्

शाल्योदनपिण्डमकुथितमविद्ग्धं रजतभाजनोपहितं वर्षति देवे वहिष्कुर्वित स यदि मुहर्त्तं स्थितस्तादृश एव भवति तदा गांगं पततीत्यवगन्तव्यं वर्णान्यत्वे सिक्थक्लेदेच सामुद्रमिति विद्यात्तन्नोपादेयम्।

सामुद्रमप्यार्वयुजे मासि गृहीतं गाङ्गवद्भवति ।

आन्तरीक्षाम्बुग्रहणरीतिः

गाङ्गं पुनः प्रधानं तदुपाददीताश्वयुजे मासि शुचिशुक्ट-विततपटैकदेशच्युतमथवा हर्म्यतलपरिभ्रष्टमन्यैर्व्या शुचिभिर्भा-जनैर्गृहीतं सौवर्णे राजते मृण्मये वा पात्रे निद्ध्यात्तत्सर्व्य काल्रमुपयुङ्गीत । (सु० सू० अ० ४५)

ऐन्द्राख्यं पानीयं जलम्

यदन्तरीक्षात्पततीन्द्रसृष्टं चोक्तैश्च पात्रैः परिगृह्यतेऽम्भः। तदैन्द्रमित्येव वदन्ति धीरा नरेन्द्रपेयं सल्लिलं प्रधःनम् ॥ (च० सू० ऋ० २७)

[१६0]

गगनाम्बु त्रिदोषन्नं गृहीतं यत्सुभाजने। वल्यं रसायनं मेध्यं पात्रापेक्ति ततः परम्।। (सु० सू० अ० ४५) तस्याळाभे भौमम्। तच्चाकाशगुणवहुलम्। (सु० सू० अ० ४५)

भौमाम्बु अभेदास्तद्वर्णनञ्च

तत्पुनः सप्तविधम्। तद्यथाकौपं नादेयं सारसं ताड़ागं प्रास्रवणमौद्भिदं चौण्ट्यमिति। (सु०)

ऋतुपरत्वेन भौमाम्बुसेवनम्

तत्र वर्षास्वान्तरिक्षमौद्भिदं वा सेवेत महागुण्यात् शरिद् सर्व प्रसन्नत्वात् हेमन्ते सारसं ताडागं वा वसन्ते कौपं प्रास्रवणं वा प्रीष्मेष्वेवं प्रावृषि चौण्ट्यमनवमनभिवृष्टं सर्वञ्चेति ।।

(स० स० अ० ४५)

उत्तमपानीयलज्ञणम्

ईषत्कषायमधुरं सुसूक्ष्मं विशदं छघु। अरूज्ञमनभिष्यन्दि सर्वं पानीयमुत्तमम्॥

(च० सू० अ० २७)

निर्गन्धमन्यकरसं तृष्णात्रं शुचिशीतलम् । अच्छं लघु च हृद्यं च तोयं गुणवदुच्यते ॥

(सु०)

कौपसारसताटाकचौण्ड्यप्रास्रविणोद्भिदम् ।
 वापीनदीतोयमिति तत्युनः स्मृतमष्ट्रधा ॥ (अ० ७०)
 वाप्याः कूपान्तर्गतत्वात्सत्ववेव मतं सुश्रुतेनेति न विशेषः ।

[१६१]

ऋतुभेदेनाम्भसोगुणाः

गुर्विभिष्यिन्दि पानीयं वार्षिकं मधुरं नवम् ।
तनु लघ्वनभिष्यिन्दि प्रायः शरिद वर्षति ॥
तत्तु ये सुकुमाराः स्युः स्निग्धभूयिष्ठभोजनाः ।
तेषां भक्ष्ये च भोड्ये च लेह्ये पेये च शस्यते ॥
राजभी राजमात्रैश्च सुकुमारैश्च मानवैः ।
संगृहीताः शरद्यापः प्रोयोक्तव्या विशेषतः ॥
हेमन्ते सिल्लं स्निग्धं वृष्यं वलहितं गुरु ।
किंचित्ततो लघुतरं शिशिरे कफवातिजत् ॥
कषायमधुरं रूक्षं विद्याद्वासन्तिकं जलम् ।
ग्रैष्टिमकं त्वनभिष्यन्दि जलमित्येव निश्चयः ॥
(च० सू० अ० २७)

कौपं जलम्

कूपो द्विविधः असोपानः ससोपानश्चेति । असोपानः कूपशब्दे-नोच्यते लोके ससोपानस्तु वापीशब्देनेति ।

(१) सक्षारम् (२) श्रव्यक्तरसं मधुरं वा (डल्हणः)

तयोः सामान्यगुणाः

सक्षारं पित्तलं कौपं श्लेष्मन्नं दीपनं लघु। मधुरं पित्तशमनम्-

(सु० सू० अ० ४५)

स्वास्थ्यकरकूपनिर्माणम्

जलपानार्थं कूपः प्रायश्चत्वारिशद्धस्तमितो गभीरः खन-नीयः । यावदेव गम्भीर्यं स्थात्तावदेव श्रेष्ठत्वम् । त्र्यगभीरः

28

[१६२]

कूपो गभीरादश्रेष्ठतरः । पवनाभिक्रम्यमाणायां प्रशस्ततरायाञ्च भूमो कूपो निर्माण्यः । वसतितो वाह्यस्वतिस्वास्थ्यकरः । तस्याभ्यन्तिरकाभित्तः परिपक्षेष्ठिकाभिः शिलाभिर्वा सम्बन्धनीया । तदुपरि घनोऽच्छिद्रः प्रास्तरः कार्यः । कूपसन्निहिता भूमिनिम्नगा वृक्षक्षुपमृत्रपुरीषालयगोशालाश्वशालागजशालादिरहिता भवितव्या । कूपसन्निहितो स्नानादि शौचकर्माऽपिन कार्यं यतः कूपस्रोतः स्वसन्निहितभूमिष्ठजलमाकर्षति । कूपोपर्येकमाच्छादनं काष्ट्रनिर्मितं स्याद्येन वायुद्वारा प्रेरितानि पर्णधूल्या दीनि तत्रं न प्रपतेयुः । कूपस्याभितो विस्तीर्ण एको वृत्ताकारो निम्नगोच्चस्थलः आभ्यन्तिरक्भित्तिवन्निर्माण्यः । तद्भित एका प्रणाली कार्या यया व्यवहियमाणं जलं सुदूरे निःस्तं स्यात् । कूपोपरि रज्जु लौहादिधातुनिर्मितो घटश्चको जलनिष्कासनार्थं सद्दा स्थाप्यः । चर्मपुटको न कदापि स्थाप्यो मङ्क्षुरोपवत्त्वाच् लोधनासौकर्याच । प्रतिवर्षं कूपस्थं पङ्कादिकमेकदावश्यं वहिष्कार्यम् ।

वाप्यं जलमि द्विविधं भवति (१) स्वादु (२) सक्षारम्। तयोः सामान्यगुणाः —स्वादु वापी जलं लघु। (अ० सं०)

वातरलेष्महरं वाष्यं सक्षारं कटु पित्तलम्।

(सु॰ सू॰ अ॰ ४५)

वापीनिर्माणम् - वापीनिर्माणेऽपि कूपोक्तविधिरनुसरणीयः।

नलिकाकूपः

अद्यत्वेऽस्य प्रचारो दरीदृश्यते । ईपत्कालाय जलप्राप्यर्थ-मस्य प्रयोगः प्रायः क्रियते । तीर्थे जनसङ्गमे सेनाशिविरे दुर्भिक्ष पीडिते देशे वा भृशं प्रयुज्यते । सार्धद्वयङ्गुलतश्चतुरङ्गुलपर्यन्ता

[१६३]

विस्तृता युग्मलोहनिलकां पृथिव्यां तावदारोप्यते यावज्जलराशिः; सम्यग्लभ्येत । निम्नस्थनिलकाशिरोऽनेकिल्प्रिवत्तीक्ष्णञ्च भवति । उपरिष्ठान्निलकाग्रस्थप्रेरकयन्त्रद्वारा प्रेरणेनादावीपन्मिलनं जलं निः-सरित । किन्तु शनैः शनैः प्रेरणया सुपूतं शुद्धं जलमायाति ।

अत्रेमे लाभाः सन्ति-

- (१) भूपृष्ठस्थं जलं नलिकाकूपोदकं न दूपियतुं शकोति।
- (२) मशकादयत्तत्र न स्थातुं शक्नुवन्ति ।
- (३) भिन्न-भिन्नस्थाने, उत्पाट्य प्रयोक्तुं शक्यते।

निकाकूपो मृदुभूमो यत्र प्रायः पोडशहस्तगभीरे स्थले जलं निःसरति लाभप्रदो भवति।

विद्युचालितनस्तिका क्रूपः (Tube well) विद्युद्द्वारासञ्चालित-स्यास्योपयोगः प्रचुरजलप्राप्त्यर्थं क्रियते । अस्य जलं नालिकाकूपव-द्गुण कारकं भवति ।

नादेयंजलम्

नादेयजलस्य गुणावगुणा आन्पादिस्थल प्रकाराश्रिताः।
प्राः स्वतटस्थनगरादिमानां वाहकत्वान्मलमूत्रतुषोत्कर मृतशरीरादिदूषितत्वाच्चवनं गुरुमिलनञ्च नदेयं जलं भवति। वर्षायान्तु
सर्वथैवाऽपेयं भवति। अत एवोक्तं वृद्धवाग्भटेन

'दिव्यं वारि वरं वर्षे नादेयमवरं परम्'

प्रायो वर्षतों नद्यां स्नानेन ज्वरादयो रोगा आक्रामित । तज्जलपानेन च पाण्डुगलगन्डादयो रोगा उत्पद्यन्ते । परन्त्वन्यतों नादेयं जलं तत्थानाद्गृहीतुं शक्यते तत्र सुप्रवाहो भवति यतः-सूर्यप्रकाशेन सद् प्राणप्रशो वायुः तरङ्गोच्छलद्भिर्जलदूषित

[१६४]

परमाणुभिः सङ्गम्य तत्परमाणून् सम्भिद्य निर्दोषीकरोति । तथा गुरुपदार्थो अधोगच्छन्ति जलञ्जीतो निमलीभवति ।

शुद्रनादेयजलप्रहणरीतिः

नदीतटे सुपक्वेष्टिकादिभिर्वद्धः कृपः खननीयः । यत्र नदीजलं स्रोतोभिःप्रसादितमेकत्रीभवति । तज्जलं सुपेयं गुणवच जायते । सामान्यतो नादेयं जलं द्विविधं भवति ।

(१) असान्द्रम् (२) सान्द्रम्

उभयोर्गुणाः

नादेयं वातलं रूक्षं दीपनं लघु लेखनम्। तदभिष्यन्दि मधुरं सान्द्रंगुरु कफावहम्।। (सु०स्० अ०४५)

जाङ्गलपश्चिमदेशस्थानुपपूर्वदेशस्थसाधारण

मध्यदेशस्थानां नदीनां गुणाः

तत्र नद्यः पश्चिमाभिमुखाः पथ्या छघूद्कत्वात् , पूर्वाभिमुखास्तु न प्रशस्यन्ते गुरूद्कत्वात् , दक्षिणाभिमुखा नातिदोषलाः साधारणत्वात् ।

अत्र लघुगुरूदकयोर्विवरणम्

नद्यः शीघवहारुष्ट्यः प्रोक्ता याश्चामलोद्काः । गुर्च्यः शैवालसञ्छन्नाः कलुषा मन्द्गाश्च याः ॥

(सु० सू० अ० ४५)

तथोक्तं वाग्भटेन

पश्चिमोद्धिगाः शीघ्रवहा याश्चामलोद्काः। पथ्याः समासात्ता नद्यो विपरीतास्वतोऽन्यथा।।

[१६५]

अप्रिव : ग्रेखां .

शैलादिमेदेन नदीजलगुणाः

रपलास्कालनाचेपविच्छेदैः खेदितोदकाः। हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थि<mark>राः॥</mark> कृमिक्कोपदहत्कण्ठशिरोरोगान् प्रकुर्वते । (वा० सू० अ० ५)

तत्र सह्यप्रभवाः कुष्ठं जनयन्ति, विन्ध्यप्रभवाः कुष्ठं पाण्डु-रोगञ्च महेन्द्रप्रभवाः ऋीपदोदरााण, प्राच्यावन्त्या अपराव-म्त्याश्चार्शांस्युपजनयन्ति । पारियात्र क्ष प्रभवाः पथ्या वला रोग्यकर्यः इति ।

> प्रायेण नद्यो मरुपु सितक्ता छवणान्विताः। ईपत्कपाया मधुरा छघुपाका वर्छे हिताः॥ (सु० सू० अ० ४१)

सारसं जलम्

'तृष्णान्नं सारसं वल्यं कषायं मधुरं लघु' (सु० सू० अ० ४५)

सरः प्राकृतं जलसञ्चायकं नाम । यदाऽत्र जलं पर्वतीय प्रदेशान्त्रिजनप्रदेशाद्वाऽऽगत्यैकत्रीभवति तदाऽत्युत्तमं भवति । यत इदं कोमलमक्षारं प्रायो वार्षिककल्पं भवति वर्षोदकापेक्ष्या केवलानि विलयनशीलद्रव्याण्यधिकानि भवन्ति । परन्तु निम्न स्थलेभ्य आगत्य जलमत्रैकत्रीभूतं स्याचेत्तर्हि मलिनमतो ऽसमीचीनं भवति ।

^{*—}पारियात्रः पर्वतभेदः तत्रप्रभवा नद्यो द्विविधाः तडागजाः पथ्याः, द्रीजा दोषला इति डल्हणः ।

[१६६]

ताडागंजलम्

ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च।

(सुः सूः अ० ४६)

ताडागंजलं पानार्थं नातिसमीचीनं यतस्तज्जलं वद्धं प्रवाहरहितञ्च तिष्ठति। प्रायो जनास्तत्रेव स्नानं . कुर्वन्ति, पश्चापि स्नापयन्ति वस्नाणि प्रक्षालयन्ति, मृत्रादिमलोत्सर्गमपि सुर्वन्ति, क्वचित्तु शवमपि प्रक्षिपन्ति। एवं बहुप्रकारे र्षूषणेस्त-ज्जलं दूषितं भवति। अत एवम्भूतजलपानेन गलगण्ड दयो नानारोगा जायन्ते। यत्र कूपादीनां प्रशस्तं जलं न लभ्येत तत्र जलप्रहणार्थं द्वितीयः तडागो निर्माप्यः यतः पानार्थमेव जलं गृह्वीयुः। स्नानाद्ययमन्य एव पृथक् स्यात्। तडागे घट्टः पक्वेष्टिकादिभिश्चितो रचनीयः। राजा चास्य रक्षार्थे मदा प्रयतेत। तडागे मत्स्यानां जलवल्लरोणां चोपस्थितिरावश्यका जलं शोधकत्वात्।

प्रास्रवणं जलम्

कफरनं दीपनं हृद्यं लघु प्रस्रवणोद्भवम्।

(सु॰ सू॰ अ॰ ४५)

प्रास्तवणोद्कं प्रायः शुद्धं भवति । यदा पर्वतस्थपीतमृत्तिकातस्त-ज्जलं प्रस्नवति तदा हानिकरं भवति ।

औद्भिदंज**ल**म

मघुरं पित्तशमनमविदाह्यौद्भिदं स्मृतम्।

(सु० सू० अ० ४५)

भूतल्रां जलमानुकूलपरिथितिं प्राप्य स्वभावत उद्भिद्योपरि निःसरित । एवं प्राय उपत्यकासु नदीसरःसमुद्र-

[१६७]

मध्यभूमिषु वा दृश्यते । तदेवमौद्भिदं जलं द्विविधं भवति, पृष्ठ-स्रोतस्कं गभीरस्रोतस्कञ्चेति ।

(१) पृष्ठस्रोतस्कं जलं तद् भवति यत्वृथिव्या अप्रवेश्य स्तरोपरि विस्तृतसिकनामयस्तरेषु एकत्रीभवति । एतज्जलमेक नियमितप्रदेशपर्यन्तंतिष्ठति । तदेवोद्भिद्योपरिष्ठान्निःसरति । स्रस्य

स्थायित्वं नास्ति । प्रायः वर्षेतरतीं तु शुष्यत एव ।

(२) गभीरस्रोतस्कं जलं तद् भवति यद् भूगर्भस्थखिटकासिकताशिलामयस्तरतो वलाद्विभिद्योपरि निः सरित । एतजलं
निर्मलं स्वच्छञ्च भवति । यत उद्भेदकाले मार्गे स्तरेष्वेव परिस्नुतं
परिस्नुतं सुपृतं सदुपर्यायाति । इदम्प्रायः स्थायि भवति । अस्य
रत्तार्थमभितोवृत्ताकारैकोचपिरस्वा इष्टिकादिभिः कार्या । यया
मलम् त्रुतुषोत्करादिमिश्रितं भूपृष्ठस्थं जलं सङ्गम्य तज्जलं
दूषियतुं न शक्नुयात् । अस्यसिन्नकटे शष्पादीनि न स्युः किन्तु
किञ्चिद्दूरे धूल्यादिभ्यो रक्षणार्थमवस्थमेव स्युः । अस्य सिन्नहितेऽश्वशालागोशालादीनि न स्युस्तथा पश्वः जलपानाद्यर्थं न
आगच्छेयुः । यतः सर्वदा शुद्धं जलं सुपेयं तिष्ठेत् ।

यस्निन्नौद्धिदे जले गन्धकादीनामंशो भवति यच लवणमयं भवति तत् 'खनिजस्रोतस्कम्' इत्युच्यते । तज्जलमपेयं भवति ।

भि चौण्ट्यं जलम्

चौण्ट्यमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफकुन्न च।

(सु॰ सू॰ अ॰ ४५)

चुण्टी ईषद्गभीराऽवद्धा च भवति । अतो दूषितभूपृष्ठजलस्य प्रवेशात् सम्यक्छुद्ध्यभावाश्च तज्जलं नातिसमीचीनम् ।

वैकिरादिजलगुणाः

ै वैकिरं कटु सक्षारं श्लेष्मध्नं छघु दीपनम्।

[१६८]

कैदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरु दोषलम् ॥ तद्वत्पाल्वलमुद्दिष्टं विशेषाद्दोषलन्तु तत्। सामुद्रमुदकं विस्तं लवणं सर्वदोषकृत्॥ (सु०स्०अ०४५)

आनृपादिदेशभेदेनजलगुणाः

अनेकदोषमान्पं वार्यभिष्यन्दि गर्हितम् । एभिद्गिषेरसंयुक्तं निरवद्यन्तु जांगलम् ॥ पाके विदाहि तृष्णाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्द्धनम् । दीपनं स्वादु शीतञ्च तोयं साधारणं लघु॥ (सु० सू० अ० ४४)

विद्यात्कृपतडागादीन् जाङ्गठानूपशैठतः । (वा० सु० ऋ० ५)

कौपादीनां सप्तानां जांगलादिदशस्थत्वाद् गुरुत्वलघुत्वे विज्ञेये। अर्थाद्यथोक्तल्वण आनूपे स्थिताः कृपादयो गुरवः। जाङ्गलेस्थिताश्च आनूपापेक्षया लघवो वहूदकसम्बन्धासावात्। तेभ्योजाङ्गलेभ्यः पर्वतस्थानां कृपादीनामतिलघुत्वमुदकाना मत्य-न्ताभावात्।

भौमाम्बुग्रहणकालः

तत्र सर्वेषां भौमानां प्रहणं प्रत्यूषिः, तत्रहि अमलत्वं शैत्यञ्चाधिकं भवति, सएवचापां परोगुण इति ।

(सुः सू० अ० ४५)

जलस्य निक्षेपणम्

सदैव जलं स्वच्छे ताम्रपात्रे रीतिपात्रे कांस्यपात्रेवा भृत्वा रक्षणीयम् । धूलिमृत्तिकादिभ्यो रक्षार्थं पात्रमुखमा इतमेव कार्यम्

[१६९]

सोपानसमीपे न कदापि जलपूर्णपात्रं स्थाप्यं यतस्तत्रगमनाऽऽ गमनेन धूलिपतनं सम्भाव्यते । तथैव स्नानागारेऽपि न स्थाप्यं यतः सम्भवोऽस्ति तत्र दूषितवायुः समाविगेत् । उक्तपात्रेषु स्थापनेन प्रीष्मकाले जलमुष्णीभवति । अतस्तदा मृत्पात्रे स्थाप्यम् । किन्तु ससूक्ष्मिल्द्रित्वाद्दूषितवायुसमावेशशङ्कया तस्य परिवर्तनं शीघं शीघं सदा कार्यम् । समित्पात्रेषु न कदापि स्थाप्यं यतस्तानि सत्वरं विशीर्य विकृतानि भवन्ति ।

पञ्च निक्षेपणानि 🕸 भवन्ति

तद्यथा फलकं, ज्यष्टकं, मुख्यवलय, उद्कमञ्चिका शिक्यञ्जेति।

एषु जलस्थापनेन भूम्यादिस्पर्शाभावाद्दोपान्तरानुद्यो भवति। अतो यथासम्भवं भूमौ न जलपात्रं स्थाप्यम्।

्रीजलदृशणहेतवः® तज्जा रोगाश्च

कीटाहिमूत्रविट्कोथतृणजालोत्कराविलम् । पङ्कपङ्कजशेवालहटपर्णादिसंस्तृतम् ॥

टिप्पणी

* निच्चेपणं यत्र जलं निच्चित्यते स्थाप्यते तत् । फलकं शाल्मली काष्टादिविरचितम् । ज्यष्टकमष्टास्त्रदण्डत्रयसंयोगः मुख्जवलयो मुखादि विरचिता वलयाकारः । उद्कमखिका आकाशान्तराले निरन्तरनिहितवेत्रवेणवादिविरचिता वेत्रगृह द्यमिधाना । शिक्यं मुखादिविरचितं प्रसिद्धम् । उल्हणः ।

*—जलेषु बहुप्रकारा अगुद्धयः सन्ति तत्र प्राणिजाऽ गुद्धिर्विसूचिकातिसारप्रवाहिकाऽऽन्त्रिकज्वरानुत्पाद्यात्। वान स्पतिकागुद्धिरतिसारप्रवाहिके जनयति । खनिजागुद्धिषु

[१७०]

सूर्येन्दुपवनादृष्टं जुष्टं च क्षुद्रजन्तुभिः।
श्राभवृष्टं विवर्णं च कलुषं म्थूलफेनिलम्।।
विरसं गन्धवत्तातं दन्तप्राद्यतिरौत्यतः।
श्रानातंबञ्च यद्दिव्यमातंबं प्रथमञ्च यत्।।
स्त्रादितन्तुविण्मूत्रविषसंश्लेषदृषितम्।
तत्कुर्योत्नानपानाभ्यां तृष्णाध्मानोदरज्वरान्।।
कासाग्निसादाभिष्यन्दकण्ड्रगण्डादिकानतः।
तद्वजेयेद्

अभावे वा तोयस्यान्यस्य शस्यते ॥ जलशोधनरीत्या हि संशुद्धं विविधं पुनः।''

तत्र यत् शैवालपङ्कहटतृणपद्मपत्रप्रभृतिभिरवच्छन्नं शशि-सूर्यिकरणानिलेनीभिजुष्टं गन्धवर्णरसोपसृष्ट्य तद्व्यापत्र-मिति विद्यात् । तस्य स्पर्शेरूपरसगन्धवीर्य्यविपाकदोषाः पट् सम्भवन्ति । तत्र खरता पैच्छिल्यमौष्ण्यं दन्तप्राहिता च स्पर्श-

टिप्पग्री

छौहत्तारोऽग्निमान्दं यशदक्षारो विवन्धं मग्नेशियमित्याख्यधातु त्तारो गळगण्डं सीसकत्तारः (Plumbian) नागविषाख्यरोगमुत्याद् यित । कठोरघनाम्बुसेवनात्प्रायोऽजीर्शातिसारयोर्छत्त्रणानि दृश्यन्ते । प्रवाहिकाऽपि प्रायः तज्जलपानेन भवति यद्रजःसम्पर्कण मिलनं स्याच्छवस्थानादागतं वा स्याद्थवा प्रवाहिकारोगि मलसङ्गमेन दूषितं स्यात् । एवमान्त्रिकज्वरो विसूचिका चापि तत्तद्रोगिमलसम्पर्कदूषितजलसेवनेन भवतः । तथा सूक्ष्म कृमिमिश्रितजलपानेन कृमिरोगा भवन्ति । त एव ककेकमन्केकत्यादिनाम्ना प्रसिद्धाः । जलौका अपि कदाचि जलेन सहामाशये गत्वा वहु रक्तं स्नावयतीत्यवगन्तव्यम्

[१७१]

दोषाः । पङ्कसिकताशैवालबहुवर्णता रूपदोषाः । व्यक्तरसता रस-दोषः । अनिष्टगन्धता गन्धदोषः । यदुपयुक्तं तृष्णागोरव-शूलकफप्रसेकानापाद्यति स वीर्य्यदोषः । यदुपयुक्तं चिराद्वि-पच्यते विष्टभ्नाति वा स विपाकदोष इति । त एते आन्तरिसे न सन्ति ।

व्यापन्नं वर्जयेत्रित्यं तोयं यज्ञाप्यनार्ववम् । दोषसञ्जननं ह्येतन्नाद्दीताहितं तु तत् ॥ व्यापन्नं सिळ्ळं यस्तु पिवतीहाऽप्रसाधितम् । श्वयथुं पाण्डुरोगं च त्वग्दोषमविपाकताम् ॥ श्वासकासप्रतिश्यायशूळ्गुल्मोद्राणि च । अन्यान् वा विषमान् रोगान् प्राप्तुयाद्विरेण सः ॥ (सु॰ सू॰ अ० ४५)

दूषितजलशोधनरीतयः

द्विविधं खलु जलस्य शोधनं भवति मार्जनं प्रसादनञ्चेति । तत्र मार्जनम् –

व्यापन्नानामग्निक्वथनं सूर्य्योतपप्रतापनं तप्तायः पिण्डसि-कतालोष्ट्राणां वा निर्वापणमिति । (स० स० अ० ४५)

तिर्यक् पातनयन्त्रेण पातितं जलमपि शुद्धतमं भवति किन्तु निःस्वादु जायते । स्रतः स्वादुताप्राप्त्यर्थमापत्काळं वायुसम्पर्के विवृतं रज्ञणीयं पश्चाद्घटादो स्थापनीयम् । क्वथनेन जलस्थाः खिटकालोह।दियनपदार्थानामंशाः, सजीवपदार्थाशाः विसूचि-कान्त्रिकज्वराद्युत्पादकाः कृमयश्च प्रायेण विनष्टा भवन्ति । ये-केचिज्ञीवाणवोऽवशिष्टा स्रपि भवन्ति ते हानि कर्तु न शक्नुवन्ति । क्वथितजलस्य निःस्वादुताऽपनयनार्थमपि पूर्वोक्त विधिरनु सरणोयः ।

तत्र सप्त कलुषस्य प्रसादनानि भवन्ति। तद्यथा-कतक-गोमेद्कविसम्रन्थिशैवालमूलवस्त्राणि मुक्ता मणिश्चेति ।

(सु० सू० अ० ४५)

कतकस्यफलं (निर्मली) जलेघृष्ट्वा सम्मेलयन्ति। किञ्चित् क्षणानन्तरं जलस्य मलमधो गच्छति । स्वच्छं चाम्बूपरि तिष्ठति । द्रोणैके जले रिक्तकैकं कतकस्य प्रयोगः कार्यः । विसय-न्थिशैवालमूलयोर्मात्रा नियता नास्ति वुद्धयावगन्तव्यम्। गोमे-द्कमुक्तामग्गीन् ईषत्कालार्थं जलेऽवस्थाप्य शोधयन्ति ।

अन्यान्यपि द्रव्याणि 🕸 सन्ति यानि जलं प्रसादयन्ति जीवा-

णंख्र विनाशयन्ति यथा—स्फटिका, तुत्थम् इत्यादि । स्फटिका-अस्या अम्बुना संयोगात् खटिकार्दानामंशा ये प्रायः सर्व-त्रजले प्राप्यन्ते, उपरिपृथग्भवन्ति अध्य शुद्धं जलं तिष्ठति। स्फटिकायाः त्रिरक्तिकातः द्वाद्शरक्तिकापर्यन्तं दौणैकेजले पर्याप्रमस्ति ।

तुत्थम् — इदं जलस्थान् विसूचिकाऽऽन्त्रिकज्वरयोः कीटा-ग्गन् विनाशयित तथा जलकिट्टमपि हासयित । दशलक्षभागे जले भागैकस्य दशमांशात्पञ्चमांशपर्यन्तमेवतुत्थं पर्याप्तम्। एतद्रथमेव ताम्रपात्रे जलिन्तेपणस्य विधिभीरते प्रचलि ।

🖇 'पोटाशियमपरमेगनेट'' इत्याख्यपाश्चात्यमौषधमद्यत्वे जल-प्रसादनार्थं विशेषलामकारि। हश्यते । इदं विसूचिकाप्रमृतीनां जीवाणून् विनाशयति । कूपजलशोधनार्थभृशं प्रयुज्यते । घटैके जलेऽर्धपलमस्यसम्मेल्य कूपमध्ये प्रचेप्यं यतः सम्पूर्णकूपजले सम्मिलितं स्यात् । अनेनक्पोदकं पक्वजम्बूवद् रिक्कतं भवति । यदि घण्टाचतुष्टयं यावद्रागोऽयंस्थायी स्यात्तर्हिशुद्धमवगन्तव्यमन्यथा युनरीषधं प्रचेष्यमिति। १००० हुएनि

[१७३]

परिस्नावणम्

घनवस्त्रपरिस्रावैः क्षुद्रजन्त्वभिरक्षणम्।

(अ०सं०)

्वस्नं स्वच्छं भवितन्यं तथा परिस्नावार्थं भूयो भूयः परि-वर्तनीयम्।

त्रिघटयन्त्रम् — परिस्नाच्य शुद्धजलप्रहणार्थिमदं श्रेष्ठतरम् त्रयोघटाः त्रिदण्डयंत्रे क्रमशः उपर्यधः स्थाप्यन्ते । उपरि घटेसिकता जलञ्च निक्षिप्यते । तद्घटाधिश्चित्रस्थवस्रोण शनैः शनैरुद्कं मध्यघटे परिस्नवति । मध्यघटे तुः वानस्पितककोिकलानि सिकता च स्थाप्यन्ते । एतं तत्स्रतं जलं मध्यघटे भूत्वा तद्धशिख्द्रसंलग्न-वस्रोणाधःस्थघटे स्रवति तदेव जलं परिसुतं शुद्धं मन्यते । एतेपां घटानां मुखमावृतं सदा कार्यम् । तत्रस्थिसकता यदा कदा प्रायः कथनीया यतस्तत्रस्थाअशुद्धयो रोगकीटाश्च नष्टाभवेयुः । कोिकलान्यपि प्रतिसप्ताहमेकदावश्यं परिवर्तनीयानि । अथवा जलेन सहसङ्काथ्य रक्षणीयानीति ।

े बृहद्राशिकजलस्य प्रसादनम्

वालुकीयजलप्रसादनयन्त्रम् ॥ — अस्यप्रयोगः प्रायेण नद्यादिवृह्ज्जलाश्यतटस्थेनगरे क्रियते । प्रथमत एकस्मिन् सुरचिते जलाधारे नद्यादेरुद्कं गृहीत्वा सञ्चीयते । तत्र २४ — ४८ होरापर्यन्तं जलस्थित्या तन्मिलनीकारकस्थूलपदार्थकणाः तले गत्वोपविशन्ति । ते तलस्था मलाः समये समये निष्कृष्या-

^{*} त्रदात्वे एकं कलाजलप्रसादनयन्त्रं प्रचिलतं वर्तते । येनाल्यस्थान एव शीव्रतरं जलं प्रसाद्यते । अत्रैको रासायनिकपदार्थः सम्मेलनार्था-मावश्यको भवति ।

[808]

यनेतव्याः। अतएवानेके जलाधारा भवितव्याः। ततः तज्जलं द्वितीयजलाधारे निःचिप्यते । तदेव 'वालुकीयजलप्रसादन यन्त्रम्' इत्युच्यते । एतदिष्टिकासीमेण्टनिर्मितंसुविस्तारायामो-त्सेधं चतुष्कोणं भवति । अस्यतले इष्टिकारचितेन स्तरद्वयेनै-वम्भूता नाल्यो निर्मीयन्ते, यत्र प्रस्नतं निर्मलीभूतं जलं सुखं वहेत्। तदुद्कस्य वहिर्निष्कासनार्थं तत्र नलः संयोज्यते। तळस्थस्तरयोद्यपि द्विहस्तोत्सेधं वृहत्क्षुद्रक्रमानुसारेण पाषाणलोष्ट्राः संस्थाप्यन्ते । ततः तदुपरि सार्धहस्तोच्छ्यं सूक्ष्मिसकतास्तरं विस्तार्यते । तदुपरि प्रथमजलाधाराज्जलं नीत्वा हस्तचतुष्ट्यो-च्छ्यं प्रपूर्यते । एवंसति द्वित्रिदिवसानन्तरं वाछुकास्तर एकं-तनुकिट्टपटलमुत्पद्यते । यज्जलप्रसादने विशेषोपयोगि भवति । कतिपयकालप्रयोगान्तरं यदि जलिकट्टपटलस्योपरिस्थित्या जल-प्रसादने वाधास्यात्तर्हिसिकताया उपरितनस्तरस्य किञ्चिद्भागः पृथक्कार्यः। एवं भूयो भूयः कृते यदि सिकता स्तरस्य गान्भीर्यं हस्तादूनं स्यात्तर्हि समस्तवालुका अपनीयान्याः प्रपूर्गीयाः अनेन जलप्रसादनयन्त्रेण प्रसाद्यमानस्य जलस्यगतिः प्रतिहोरं षडंगुल-तोऽधिका न भवितव्या।

जलगन्धनाशनोपायाः

नागचम्पकोत्पलपाटलापुष्पप्रभृतिभिश्चाधिवासनमिति । सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये मणिमयेऽपिवा। पुष्पावतंसं भौमे वा सुगन्धिसलिलं पिवेत्।।

(सु० सू० अ० ४५)

नगरेषु शुद्धजलप्रापणम् जलं नगरेषु नदीसरस्तडागृहह्त्कूपाद्यन्यतमजलाशयतो

प्रभृतिशब्देन करवीरमिल्लका जात्यादिपुष्पाणां ग्रहणम् ।

[१७५]

प्राप्यते । तद्म्बु प्रथमतः जकप्रसाद्नयन्त्रेण शुद्धीकृत्यैकस्मिन्
शुद्धजलसञ्चयने निधीयते । तत्सम्बद्धावृतनलद्वारोद्कं सर्वत्र
दीयते । नगरस्य निम्नस्थलस्थत्वे भूम्याकर्षणशक्त्या, उच्चस्थलस्थत्वे च िशिष्टकलाशक्त्या जलप्रापणं क्रियते । जलसञ्चयनायतनमेताबद्भवितव्यं यन्यूनातिन्यूनमष्टाहं याबन्नगर अपः
प्रापयितुं शक्नुयात् । प्रतित्रिमासं शञ्चयनं निर्मलीकार्यम् ।
सञ्चयनसम्बद्धा नगरगामिनो नलकाः (प्रधानाः) सार्द्धचतुरङ्
गुलाऽन्यूनव्यासकाः लौहनिर्मिता अन्तः श्रुक्ष्णा*भवन्ति ।

एतेमार्गधरातलाद् द्विहस्तगाम्भीर्ये स्थले विस्तार्थन्ते। तत्सम्बद्धाः प्रतिगृहगामिन्यो नागलौहान्यतरनिर्मिता अनेका निलका भवन्ति। शीव्रनाम्यत्वात् सीसकनिलका भृशमुप-युज्यन्ते। यावक्छक्यं तासामुपयोगो न कार्यः यतः सततोपयोग् गेन कदाचित् सीसकांशस्य जलेघुलितत्वान्नागविष्मनामकरो गोत्पत्तिः सम्भवेत्।

एता नालिका मलवाहिनालीसकाशे न भवितव्याः। यतः तद्दूषितवायुद्धारा शुद्धजलस्यापि दोषवत्त्वमापद्यते।

दीनजनार्थं मःगेंब्विप किञ्चित् किञ्चिद्दूरे जलकलाप्रयन्धः कार्यः। एताः कलाः स्वयं नियमनशीलाः प्रेरणया च स्वल्पजल दायिन्यः स्युः।

यत्र जलाधिक्याभावे शुद्धजलं प्रापियतुमशक्यं, तत्र शुद्धा शुद्धजलप्रदानस्य पृथकपृथक् प्रबन्धः क्रियते। भोजनपानाद्यर्थं शुद्धजलं किञ्चित्कालं दीयते। तथा मार्गसिञ्चनार्थं मलनाल्या-

^{*} ठौहनलकाभ्यन्तरीयभागः कोल्तारसर्जरसातसीतैलनिर्मितेन (Angussimth colution) द्रवेगालिप्य श्रद्गीकियते।

[‡] नागविशाख्यरोगेऽग्निमान्द्यमलावरोधारोचकगात्रावसादन वृक्कहृद-यमस्तिष्कदोषादीनि भवन्ति।

[१७६]

दिस्वच्छीकरणार्थञ्चाऽशुद्धं जलं दीयते। परन्तु नैतद्वर, यतः सम्भवोऽस्ति यत्कदाचिद् विस्मृत्या शुद्धजलनलिका अशुद्धजल-नलकैः सह संयुज्यते। तथाऽशुद्धजलं पानार्थं प्रयुज्येत।

नगरे जलप्रापणार्थं द्विधाप्रवन्धः क्रियते सन्ततोऽसन्त तश्चेति। सन्ततेऽहोरात्रमविच्छिन्नं जलं प्राप्यते। परन्त्वसन्तते नियतसमय एव। सन्ततेव्यर्थजलव्ययस्य विशेषसम्भावना भवति। जलमापकयन्त्रद्वारा तज्ज्ञानं कृत्वाऽवरोद्धुं शक्यते। असन्तते न तावज्जलं व्येति। तथापि नेयं पद्धतिः श्रेष्ठा, तत्र-रिक्तावस्थायां सन्निहितमलनाल्यादितो दूषितवाय्वाद्यागम नभयात्।

उष्णोदकम्

दीपनं पाचनं कंठ्यं लघूष्णं वस्तिशोधनम् । हिध्माध्मानाऽनिलश्लेष्मसद्यःशुद्धे नवज्वरे ॥ कासामपीनसश्वासपाद्यक्षु च शस्यते ।

(वा० सू०)

यत्काथ्यमानं निर्वेगं निःफेनं निर्मालं लघु। चतुर्भागावरोषन्तु तत्तोयं गुणवत्समृतम्॥

(सु० सू० अ० ४५)

क्षीणपादत्रिभागाद्घं देशर्तुगुरुलाघवात्। कथितंफेनरहितमवेगममलं हितम्।।

(अ०सं०)

अष्टमेनांशरोषेण चतुर्थेनार्घकेन वा। अथवा कथनेनैव सिद्धमुण्णोदकं वदेत्॥ इलेष्मामवातमेदोच्नं वस्तिशोधनदीपनम्। कासश्वासञ्चरहरं पीतमुष्णोदकं निशि॥

(शा० सं०)

[१७७]

शृतशीतं जलम्

अनभिष्यदि लघु च तोयं कथितशीतलम्। पित्तयुक्तं हितं दोषे व्यूषितं तित्रदोषकृत्।। (वा० सू०)

दाहातीसारिपत्तासृड्मृच्छीमद्यविषात्तिषु । श्रुतशीतं जलं शस्तंतृष्णाच्छिद्भिमेषु च ॥ मद्यपानात्समुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा । सन्निपातसमुद्थे च श्रुतशीतं प्रशस्यते ॥ न च पर्य्युपितं देयं कदाचिद्वारि जानता ॥ अम्लीभूतं कफोत्क्लेशि न हितं तत् पिपासवे ॥ (सु० सू० अ०४५)

पाषाणरूष्यमृद्धेमजतुतापार्कतापितम् । पानीयमुष्णं शीतं वा त्रिदोषव्नं तृडर्तिजित् ॥ (अ० सं० सू० अ०२)

शृतोदकस्यशीतीकरणोपायाः

सप्त * शीतीकरणानि भवन्ति—प्रवातस्थापनम् , उद्कप्र-क्षेपणम् , यष्टिकाभ्रामणम् , व्यजनम् , वस्त्रोद्धरणम् , वालुका-प्रचेपणम् , शिक्यावल्रम्बनञ्चेति ।

(सु॰ सू॰ अ॰ ४५)

*उदकप्रचेपणमिति सिललपूर्णभाजनेवस्त्रादिपीडिते स्राकण्ठमपर शीतसिललिनिक्षेपः, यष्टिकाभ्रामणंयन्त्रयष्ट्यादिभ्रामण्यम्, व्यजन मिति व्यजनादिना वातलीकरणम्, वस्त्रोद्धरण्मिति वस्त्रेणगालनम्, बालुकाप्रचेपणमुदकपात्रस्य वालुकामध्ये निच्चेपणम्, शिक्यावलम्बनं प्रसिद्धम् (डल्हणः) [208]

शीतोदकम्

शीतं मदात्ययग्लानिमूच्छोच्छर्दिश्रमभ्रमान् । तृष्णोष्णदाहपित्तास्रविपाण्यंबु नियच्छति ॥ (वा० सू० अ० ५)

पार्श्वशूळे प्रतिस्थाये वातरोगे गलप्रहे । आध्मानेस्तिमितेकोष्टेसद्यः शुद्धेनवज्वरे ॥ हिकायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत् । (सु० सू० अ० ४५)

दिवार्किकरणैर्जुष्टंनिशायामिन्दुरिमिभिः । अरुज्ञमनभिष्यन्दि तत्तुल्यं गगनाम्बुना ॥ (सु० सू०)

तोयंहिमकरोद्भवम्

अतिशैत्यगुरुस्थैर्यसंघातैः कफवातकृत् ॥ (अ० सं०)

रज्ञोन्नंशीतलं ह्वादि ज्वरदाहविषापहम् । चन्द्रकान्तोद्भवं वारि पित्तन्नं विमलं स्पृतम् ।। (सु० सू०)

नालिकेरोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमं छघु। वृष्णापित्तानिलहरं दीपनं वस्तिशोधनम्।। (वा० सू०)

[१७९]

पानीये विशेषविचारः

पानीयं न तु पानीयं पानीयेऽन्यक्षप्रदेशजे।
अजीर्णे कथितश्चामे पक्षे जीर्णेऽपिनेतरत्।।
शीते विधिरयं तप्ते त्वजीर्णे शिशिरं त्यजेत्।
पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव च तन्मयम्।।
अतोऽत्यन्तिषेधेन न कचिद्वारि वार्यते।
आस्यशोपाङ्गसादाद्या मृत्युर्वा तद्छाभतः।।
निह तोयाद्विना वृत्तिः स्वस्थस्य व्याधितस्य वा।
केवछं सौपधं पकमाममुष्णं हितञ्चतत्।।
समीक्ष्य मात्रया युक्तममृतं विषमन्यथा।।
आमविष्टब्धयोः कोष्णं निष्पिपासोऽप्यपःपिवेत्।
यावत्यः क्छेद्यत्यन्नमतिक्छेदोऽप्रिनाशनः।।
विबद्धः कफवाताभ्यां मुक्तामाशयवन्धनः।
पच्यते चिप्रमाहारः कोष्णतोयद्रवोकृतः॥
अनवस्थितदोषाग्नेव्याधिक्षीणवछस्य च।
नाल्पमप्याममुद्कं हितं तद्धि त्रिदोषकृत्।।

टिप्पणी-

%—सर्वं पानीयमन्यप्रदेशजे पानीये अजीर्णे न पानीयं न पेयमिति। तेनैतदुक्तं भवति विजातीये पानीये पीते तज्जरणान्तं यावद्विजातीयं पानीयं न पेयमिति। यथा कौपे ताटाकं ताटाकं कौपमिति। एवं सर्वत्र। तथा आमे अपक्वेजले अजीर्णे क्वथितं पक्वं न पेयम्। तथा पक्ते कथिते जीर्णेऽपीतरदामं न पेयम्। सजातीयमपि पक्ते जीर्णेऽपि यावन्न भुक्तं तावदामन्न पेयम् इत्यर्थः। एष च विधिर्द्वयोरामपक्तयोःशीतयोः। तप्तत्वजीर्णे एव शीतन्त्यजेन्नतुजीर्णे।

[960]

तेजसः प्रतिपच्तवान्मन्दाप्तिर्वर्जयेज्जलम् । सर्वमेव तथास्यन्द्प्रीह्विद्रधिगुल्मिनः।। पाण्डूदरातिसाराशीं प्रहणीशोषशोफिनः। काममल्पमशक्तौ तु पेयमौषधसंस्कृतम् ॥ ऋते शरत्रिदाघाभ्यां पिबेत्सवस्थोऽपि चाल्पशः

(अ० सं० स्० अ० २)

अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके इवयशौ चये। मन्द्रमावुद्रे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा।। त्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत्।

(सु॰ सु॰ अ० ४५)

जलस्य वाह्योपयोगः

वाह्यकर्मीण जलं शुध्यर्थमाधिक्येनोपयुज्यते । शुद्धता हि स्वास्थ्यस्य मूलम्। अतः जलं स्वास्थ्यरज्ञणायात्यावश्यकंवस्तु। (१) प्रत्यहं मुखादिप्रक्षालनार्थं स्नानार्थञ्च जलमुपयुज्यते । अपरिमार्जनात्तत्वय्रोगा जायन्ते । शरीराच सदा दौर्गनध्यमायाति । स्नानाद्यर्थमि रवच्छं निर्दोषमेव जलं भवितव्यम् । अन्यथा कण्ड्वाद्यो वाह्या रोगाः प्रादुर्भवन्ति । तथोक्तं भगवता सुश्रतेन

कीटमूत्रपुरीषाण्डरावकोथप्रद्षितम् । तृणपर्णोत्करयुतं कलुषं विषसंयुतम ।। योऽवगाहेतवर्षासु पिबेद्वापि नवं जलम। सवाद्याभ्यन्तरात्रोगान् प्राप्तुयात् क्षिप्रमेवहि ॥

(सु० सू० अ० ४५)

स्वच्छोदकाभावे दूषितमपि शास्त्रोक्तरीया संशोध्योपयोगं कत् शक्यते।

(२) मार्गसिञ्चनार्थमुपयुज्यते । मार्गसिञ्चनाः

[१८१]

दस्वास्थ्यकरा रजःकणानोड्डीयन्ते तथा मार्गस्थलमपि दृढं भवति । गन्तारश्च लभमानमन्दशीतवाताः प्रसन्ना भवन्ति ।

(३) वासस्थानचिकित्सालयविद्यालयपशुशालाइवशालापुरीपा लयविविधकार्यालयादिपूपयुज्यते । सर्वत्राऽज्यापन्नस्य शुद्धस्यैव जलस्योपयोग कार्यः।

विषदुष्टमार्गोदकादिज्ञानपूर्वकमात्मरज्ञणम्

राज्ञोऽरिदेशे रिपवस्तृणाम्बुमार्गात्रधूमश्वसनान् विषेण। संदूषयन्त्येभिरतिप्रदुष्टान् विज्ञाय छिंगैरभिशोधयेच ॥ दुष्टं जलं पिच्छिलमुप्रगन्धि फेनान्वितं राजिभिरावृतञ्च। मण्डूकमत्स्यं म्रियते विहङ्गा मत्ताश्च सानूपचरा भ्रमन्ति ॥ मज्जन्ति ये चात्र नराइवनागास्तेछर्दिमोहज्वरदाहशोफान्। गच्छन्ति तेपामपहत्य दोषान् दुष्टं जलं शोधयितुं यतेत ॥ धवाइवकर्णासनपारिभद्राः सपाटलाः सिद्धकमोत्तको च। द्ग्धाः सराजद्रुमसोमवल्कास्तद्भस्मशीतं वितरेत्सरःसु ॥ भरमाञ्जलिञ्चापि घटे निधाय विशोधयेदी प्सितमेवमम्भः । क्षितिप्रदेशं विषदूषितन्तु शिलास्थलीं तीर्थमथेरिणंवा ॥ स्पृशन्ति गात्रेण तु येन येन गोवाजिनागोष्ट्खरा नरा वा। तच्छनतां यात्यथ दह्यते च विशीय्यते रोमनखास्तथैव।। तत्राप्यनन्तां सहसर्व्वगन्धैः पिष्ट्वा सुराभिर्विनियोज्य मार्गम् । सिञ्चेत् पयोभिस्तु मृद्निव तस्तं विडङ्गपाठाकटभीजछैर्वा ।। तृणेषु भक्तेषु च दूषितेषु सीदन्ति मूर्छन्ति वमन्ति चान्ये। विडभेदमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते तेषां चिकित्सां प्रणयेद्यथोक्ताम् ॥ विषापहैर्वाप्यगदैर्विलिप्य वाद्यानि चित्राण्यपि वाद्येत । तारः सुतारः ससुरेन्द्रगोपः सर्व्वेश्च तुल्यः कुरुविन्द्भागः ॥

[962]

पित्तेन युक्तैः कपिलान्वयेन वाद्यप्रलेपो विहितः प्रशस्तः। वाद्यस्य शब्देन हि यान्ति नाशं विषाणि घोराण्यपि यानिसन्ति ।। धूमेऽनिले वा विषसम्प्रयुक्ते खगाः श्रमार्त्ताः प्रपतन्ति भूमौ । कासप्रतिश्यायशिरोरुजैश्च भवन्ति तीत्रा नयनामयाश्च ॥ लाक्षाहरिद्रातिविषाभयाव्दहरेगुकैलाद्लवल्ककुष्ठम् । प्रियंगुकाञ्चाप्यनिले निधाय धूमानिली चापि विशोधयेत ॥ 2115 Ex 9 19 (स०क० अ०३)

(वायुः)

वायुसञ्चारप्रयोजनम् ।

वायुर्जीवनस्थितय एक अत्यन्तावश्यकः पदार्थः । भोजनं विना प्राणिनोऽनेकसप्ताहं जीवितुं शक्नुवन्ति तथैवजलं विनाऽपि कतिपयदिवसम्। परन्तु वायोरन्तरेण क्षणमपि जीवितुं न शक्नुवन्ति । श्वसनार्थं, रक्तशुध्यर्थं, शरीरोष्णतारक्षणार्थञ्च वायुरेव कारणम् । आहारद्रव्याणां परिपाचनं श्वासाकृष्टाम्बर पीयूषो (ओषजन) पर्येव निर्भरम् । अतएव जन्मकालादेव रवासाकर्षण्स्यावश्यकता भवति । शुद्धवायु * सेवनमेव स्वा

टिप्पणी-

 अ- शुद्धवायुमण्डलेऽनेकेवायव्यपदार्थाः मिश्रिताःसन्ति । तत्र मुख्यतया द्वीपदार्थीस्तः। ओषजनो नत्रजनश्चेति। स्रतोऽ तिरिक्ताः स्वल्पमात्रया अन्येऽपिकतिचित्पदार्थाः सन्ति । यथा श्रार्गनः. कर्वन द्विओषितः, जलवाष्पम् इति । कचित्त नाममा-त्रेण ओजोन, अमोनिया, जन्तुवनस्पत्यादीनामंशाश्चापि भवन्ति।

[१८३]

स्थ्यरत्ताया मूलम् । एवञ्चचिरेण दूषितवायु ‡ सेवनं पूर्वोक्तकि-यागुणवैपरीत्यादस्वास्थ्यस्य मूलम् । तथा हि चरके—

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुचावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रयाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रयार्थानामभिवोढा, सर्वश्चरिर धातुव्यूहकरः, सन्धानकरः शरीरस्य, प्रवर्तको वाचः, प्रकृतिः स्पर्शशब्द्योः, श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूछम्, हर्षोत्साहयोर्योनिः, समीरणोऽग्नेः, दोषमंशोषणः, क्षेप्ता वहिर्मछानां, स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता, कर्ता गर्भोकृतीनाम्, आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः।

टिप्पणी

तत्र—ओषजनः २०'६६ नत्रजनः ७७'११ आर्गनः ०'८० कर्वनद्विओषितः ०'०३

जलवाष्पम् १ ४०

योगः १००

जलवाष्पस्य नास्ति नियमः कश्चित्तस्यवृद्धिह्नासौतापानुसारौ भवतः। 'ओजोन' इत्येष सम्भवतः १ भागः, अमोनिया १०००

कोटिभागे त्रिभागाद्धिको न भवति।

‡ ओषजनएवप्राग्णप्रदोवायुः पूर्वोक्तगुणकः । यं पीत्वैव प्राणि मात्रस्यजीवनमनुवर्ततेयद्प्राप्त्याविनाशश्चमवित । नत्रजन ओष-जनवृद्धिमवरोधयित । अन्यथा वृद्ध ओषजनोऽस्वास्थ्यकरः स्यात् । तथाऽयंवनस्पतीनां परिपोषणे सहायकतमः । आर्गन एको निष्क्रियपदार्थः । कर्वनद्वि-ओषित इत्यस्यवायावस्थानं

[828]

कुपितस्तु खलुशरीरे शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपतपात, वलवर्णसुखायुषासुपघाताय मनोव्याहर्षयति, सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति विनिहन्ति गर्भान् विकृतिमापादयत्यतिकालं धारयति, भयशोकमो-हदैन्यातिप्रलापान्जनयति, प्राणांस्रोपरुणद्धि ।

(च० सू० अ० १२)

टिप्यगी

हानिकरं किन्तु स निःश्वासञ्वलनभूमिदोषादिभिर्नियमित मात्रापेत्त्वया परिवर्धमानोऽपि वनस्पतीनां हरितीकरण [Chlorohpy] पदार्थद्वारा पायः साम्यस्थितावायाति । यतः सपदार्थः सूर्यप्रकारो कर्वन-द्वि-ओषितं विच्छेद्य कर्वनं स्वतन्तुनिर्माणा र्थंगृहणाति । ओपजनं च पृथक्तरोति । अन्धकारेत्वतोविपरीता-किया भवति । अथौद्धनस्पतय ओषजनं गृहणन्ति कर्वन-द्वि-ओषितं तु परित्यजन्ति। अतएव नक्तं सेवेत न द्रुमम् इति सिध्यति । वर्षात्रात्ये चास्य मात्रां चपयतः । वर्षा तु स्वजले घोळयति । वात्या चेतस्ततो विकिरति । 'जलवाष्पम्' अस्य न्यू-नतया। रौक्ष्यमाधिक्याच्च शैत्यं भवति । इद्मेवतारतम्येन तुषा-रादिरूपेण विपरिणम्यते । 'ओजोन' अयं प्रवलीषजनीकारकः । अयमोषजनस्यद्वितीयस्वरूपः । अस्ययौगिकागुरोषजनस्यपरमा गुत्रयेग निर्मीयते । रोगोत्पादकजीवागुनाशकश्चायम् । सोऽयं नगरे सघनवसत्यां च नोपलभ्यते । किन्तु समुद्रनदीतटेषु पर्व तीयस्थाने च प्राप्यते । अमोनिया - विकृतदृषितनत्रजनीयपदा-थैकपलभ्यते ।

जीववनस्पत्यादीनामंशाः — ऊर्णापरागकापीसादीनां खनिज द्रव्याणां चांशा वायावलिन्वता भवन्ति । अमोनिया जन्तुवनस्प-त्याद्यंशा वायोरशुद्धयो मन्यन्ते ।

[१८4]

दिशाभेदेन वातगुणाः

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवण्रःचैव मारुतः ।
गुरुर्विदाहजननो रक्तपित्ताभिवर्धनः ॥
क्षतानां विषजुष्टानां त्रणिनः रलेष्मलाश्च ये ।
तेषामेव विशेषेण सदा रोगविवर्धनः ॥
वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशोषिणाम् ।
तेषामेव विशेषेण त्रणक्लेद्विवर्धनः ॥
मधुरश्चाविदाही च कषायानुरसो लघुः ।
द्विणो मारुतः श्रष्टश्चश्चुष्ट्यो वलवर्धनः ॥
रक्तपित्तप्रशमनो न च वातप्रकोपणः ।
विशदो रूवपरुषः खरः स्नेहवलापहः ॥
पश्चिमो मारुतस्तीक्ष्णः कफमेदोविशोषणः ।
सद्यः प्राणव्यकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥

टिप्यणी-

वायुद्षणहेतव: — वायुमण्डले पूर्वोक्ता वायव्यपदार्था नियत-मात्रातोऽधिकाभवेयुःअस्वाभाविका पदार्था वा तत्र सम्मिलता-भवेयुस्तदा वायुर्दुष्यति। साधारणतः निःश्वासजन्तुवन-स्पत्युत्कुथन [सङ्ग] ज्वलनदुर्गन्धिवाष्पधूल्यादिवायव्य पदार्थैवीयुर्दूषितोभवति।

(१) नि:इवासे प्रतिशतं भागचतुष्टयं 'कर्वन-द्वि-ओषित' इत्यस्य प्रायेण भवति। यो हि युवक पुंसः फुरफुसेनाहोरात्रे १२ घनस्फीततः १६ घनस्फीतपर्यन्तं निःसरित। जलवाष्पकणा- अपि फुरफुसेन त्विभक्ष निःसरित। तेषां मात्राऽहोरात्रे १५ कला [३० औस] भवति। मनुष्यापेत्तया पशव आधिक्येन

वायुं दूषयन्ति ।

[१८६]

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एवच । कषायानुरसः शीतो दोषाणां चाऽप्रकोपणः ॥ तस्माच प्रकृतिस्थानां क्लेदनो चलवर्धनः । श्लीणक्षयाविषातानां विशेषेण तु पूजितः ॥ (सु० सू० अ० २०)

वायुप्रवाहः

वायुषु सद। गतिर्भवति । यतो विकृतवायुः सत्वरं दूरीभवति शुद्धवायुश्चायाति । यो दूषितवायुरस्माभिर्निःश्वासद्वारा वहिः क्रियते स स्वच्छवातेनाऽसङ्गम्य तनुर्जायतेऽतोऽस्माकं न हानि

टिप्पणी

(२) उत्कुथ्यमानजन्तुवनस्पतिभ्यो दुर्गन्धिविषात्मक पदार्थाः (कर्वनिद्ध-ओषितप्रभृतिगैसाः) निः सरन्ति । पशवस्तु त्वक्फुप्फु-सभ्यः १२॥ कलातः २० कलायाबद्वाष्पमहोरात्रे नि सारयन्ति । वनस्पतिभ्योऽपि बहुवाष्पानि नि सरन्ति ।

(३) समित्कोकिळदीपकादीनां प्रज्वालनेन यो धूमो निः सरित तेनाऽपि वायुर्दुष्यित । प्रस्तरकोकिळप्रज्वाळनात् कर्वन- 'कर्वन- 'द्वि- ओषित' - कर्व नैकौषित गन्धक गन्धक गन्धक गन्धक गन्धक नि- द्विगन्धित- जळादीन्युत्पद्यन्ते । काष्ट्रस्य, समित्कोकिळानां च प्रज्वालनात् कर्वन-द्विओषितो वाष्पञ्चत्येवोत्पद्यते । दीपकेषु मृत्तैळज्वाळनादिधकमात्रया कर्वनओषितो जळवाष्पं धूमरजांसि चोत्पद्यन्ते । विद्यत्प्रकाशो न कमिप दोषसुत्पादयित ।

(४) दुर्गन्धिवाष्पाणि यानि मलमूत्रादिवाहिप्रणालीभ्यो निःसरन्ति तेषु नत्रजनः प्रतिशतम् ९४ ओषजनः प्रतिशतं २ कर्जन-द्वि-ओषतः प्रतिशतं ४ उपलभ्यन्ते । तथा तत्र सङ्का-

मकरोगोत्पादकजीवाणबोऽपि प्राप्यन्ते ।

[१८७]

करः सम्पद्यते । तदेतत् प्राकृतिकवायुप्रवाहोत्पत्तेः कारणं शैत्य-मौष्ण्यञ्च वर्तते । तथा शैत्यौष्ण्ययोर्हेतुः—सूर्यप्रकाशोऽस्ति । औष्ण्याद्वायुः तनुतां लघुतां च लभते । स चोपरिगच्छति । तत्स्थाने शुद्धः शीतो वायुरायाति । एवमेव वायुषु प्राकृतिक गतिर्नित्यं भवति । गृहेषु एवमेव वायुः प्रवहति । श्वासनिःश्वा

टिप्पणी

(५) रोगोत्पादककीटागुभ्योऽतिरिक्ता वायुपूड्डीयमानाः धूलिपरागखिनजद्रव्यताम्रलौहकांस्यादीमां सूक्ष्मकणाः त्वप्रोमनखपूर्यष्ठीवनादिसूक्ष्मांशा रोमान्तिकामसूरिकाविस्फोटकादीनां-शुष्कचर्माणि च प्राप्यन्ते । प्रायेणते भिन्नभिन्नस्थलेषू पलभ्यन्ते यथाचिकित्सालयादौ रोगोत्पादककीटाण्वः, लौहकारा दीनामापणौ लौहताम्रादीनां कणा इत्यादि ।

अतः सदा स्वास्थ्यरचार्थमुपायः कार्यः । अर्थाचत्तस्थानेषु मुखनासिके वस्त्रेगाच्छाद्य कार्यं करणीयम् । अशनवेलायां च सम्यङ्मुखहस्तपादान् प्रक्षाल्य भोक्तव्यमित्यादि ।

प्रकृत्या वायुशुद्धिः—पूर्वोक्तवर्णनैः स्पष्टं सिध्यति यत्कर्व निद्धं ओषितादिवायव्यपदार्थाः प्रतिज्ञगमुत्पद्यन्ते । ये हि वायुं दूषयन्ति । परन्तु यद्यवमेव सततं दूषितवायुः तिष्ठेत्तर्हिं सर्वेऽपि म्रियेरन् तस्य इवासकर्मानर्हत्वात् । किन्त्वेवन्न भवति । प्रकृत्यैवैतद्र्थमुत्तमः प्रवन्धः कृतः, अर्थोद्वायोः कर्वन-द्वि-ओ-षितं वनस्पतयो गृह्णन्ति, ओषजनं च स्वतो निष्कासयन्ति यत्सेवनात्स्वास्थ्यरक्षा भवति ।

तथा चायमोषजनो दुर्गन्धिभरैन्द्रियकपदार्थैः मिलित्वा तान् कर्वनिकाम्लामोनियादिषु विपरिग्णामयति । एते नव्यप-दार्था वायुषु विस्टता एतावन्तः तनवो भवन्ति येषामाघाणेन Mank

[366]

साभ्यामन्यैर्ज्वलनहेतुभिर्वाऽऽभ्यन्तरिकवायुरुष्णः तथा तनुर्भूत्वोपरि गच्छति । तथा तत्स्थाने वाद्यःशुद्धशीतवायुरागच्छति । यदि वाद्याभ्यन्तरिकवातयोरुष्णतायामान्तर्य्यं न स्यात्तर्हि एवम्भूता गतिर्नोत्पर्येत । यद्यप्येवं प्रकृतौ वायुशुद्धिप्रवन्धोः ित तथापि वृहन्नगरेषु तथा सदनेषु सम्यग्वायुशुद्धिकार्यं न भवति । अतस्तत्राशुद्धवायुनिष्कासनार्थं शुद्धवायुसञ्चारार्थं कश्चिद् उपायः कर्तुं युज्यते । स च वातप्रविचार इत्युच्यते ।

भू वातप्रविचारः अ

निर्वाधमभितः ग्रुद्धवायुवहनमित्यस्याभिप्रायः । स च द्विविधः विह्वितप्रविचारः अन्तर्वातप्रविचारक्चेति । विह्वितप्रविचारस्या-यमभिप्रायःयन्नगरमामादिष्वभितः वायोः सञ्चरणम् । तद्र्थं निम्नाङ्किता उपाया अवलम्बनीयाः—

(१) निवासगृहाणि पृथकपृथगेकपङ्क्तौ भवितव्यानि ।

(२) प्रत्येक सदनानां चतुर्दिक्षु विवृतं स्थानं भवितव्यम्। असम्भवे तद्येऽवश्यं स्यात्। गृह्मध्येऽङ्गणमप्यवश्यं कार्यम्।

(३) राजमार्गवीथिकाः सुविस्तृता भवितव्याः।

(४) हम्योण्यतिसमुत्रतानि कार्याणि । तेषामुचता मार्गः विस्तारानुकूला स्यान् ।

टिप्पणी

हानिर्न भवति केषाश्चिदपिजन्तूनाम् । अतोऽतिरिक्तं घनाम्ब्विप स्वेन सह वायव्यपदार्थान् पृथिव्यांपातयति ।

दृषितवातजा रोगाः --- दृषितवातसेवनाच्छिरः शूछारोचकाछ स्यपाण्डुकासप्रतिश्यायश्वासमछात्ररोधाग्निमान्द्यकर्णनाददौर्वल्यादयो गदा जायन्ते ।

* Ventilation.

Grade GILLIN M.B.S_B.M.S.

[929]

- (५) नगरेष्वनेकान्युद्यानानि तथा विवृतस्थानानि कार्याणि ।
- (६) सरकेषु सदा जलं प्रकिरणीयं यतो धूलिर्नीड्डीयेत।
- (७) मलसङ्करादीनि समयोपर्युत्थाप्य मार्गवीथिका नित्यं स्वच्छीकार्याः।
- (८) नाल्यो निरन्तरं स्वच्छीकृत्यजलेन प्रचाल्याः।
- (९) कार्यालयाः नगरेभ्यो वहिर्दूरे निर्माप्याः नगरेषु न कदापि निर्माप्याः । यतस्तत्रत्या धूमा धूल्यादयश्चवहिर्निर्गच्छेयुः । एवं सदा नगरेषु वसतिषु शुद्धवायुप्रविचरणं दृषितवायु

निर्गमनञ्च भवति येन तत्रत्यजनाः सदा स्वास्थ्यमनुवर्तन्ते ।

अन्तर्वातप्रविचारः — इत्यस्य, गृहाभ्यन्तरे शुद्धवायोः प्रवि-चरणमशुद्धवायोश्च निर्गमनिमत्यभिष्रायः । नगरप्रामादिषु सम्य-ग्वाह्यवातप्रविचारेण तत्रत्यगृहाभ्यन्तरेष्विष सम्यग्वात प्रविचारो भवति । गृहेषु प्रतिकुटीरमभितो गवाच्चजालकादीनि वातायनानि कार्याणि ।

शुद्धवायोरभीष्टराशिः *--प्रत्येक पुरुषाणां प्रतिहोरं प्रायः

टिप्पणी

यन्मध्यमामध्यगतं हि पर्वे, तद्द्वाद्शं स्फीतमिति प्रसिद्धम्। स्फीतेन सार्धेकमितेन हस्तः, मानाय बोध्यः पुरुषो वयस्थः॥ पर्वे Inch स्फीतम् Feet

एकसहस्रघनस्भीतघनफळकस्थळे प्रतिहोरं त्रिवारं वायुः परिवर्त्यते तदा त्रिसहस्रघनस्भीतग्रुद्धवातः समुपळभ्यते । यत्र विवृतस्थळेसम्यग्वातप्रविचरणं भवति तत्र प्रतिहोरंपञ्चषड्वारं वायुः परिवर्तते । अतएव तत्र प्रतिमनुष्यं ६०० घन स्भीतस्थानमेव पर्याप्तं भवति ।

[190]

३००० घनस्कीत ‡ शुद्धवातस्यावश्यकता भवति येन सुस्वा-स्थ्यं जायते ।

योऽधिकं परिश्रमते तदर्थं ततोऽप्यधिकशुद्धवायुराशिर्भ वितव्यः। स्त्रीणामपि ३००० घनस्फीतपरिमितः, वालकानांतु

२०८० घनस्फीतपरिमितः शूद्धवायुरावश्यकः ।

मनुष्यवत्पश्नामि शुद्धवायोरावश्यकता भवति । पशवोऽ पि शुद्धवायुसमाक्रान्तशालासु स्वस्था निवसन्ति । अतस्तेषां वाताभीष्टराशिज्ञानार्थं तच्छरीरभारो ज्ञातच्यः । साधारण नियमोऽयं यद्धंसेटक (Pound) शरीरभारं प्रति २५ घन स्फीतवायुर्भवितव्य इति ।

स्वस्थपुरुषापेत्तया रुग्णपुरुषेभ्योऽधिकशुद्धवायुराज्ञि भीवतन्यः। यतः स्वेदादिकं तेषामधिकं निःसरति। साधारण

टिप्पणी

‡ वायुमण्डलस्य सहस्रभागे कर्वनद्विओषितस्य मात्रा १ पर्यन्तानाऽस्वस्थकरी भवति। किन्तुततोऽधिकाऽस्वास्थ्यकरी सञ्जायते। तद्वायौ दौर्घन्ध्यमरतिश्चानुभूयते। विशुद्धवायौ क० द्वि० ओ० मात्रा १००० भागे ४ भवति। अतः १००० घनस्कीत-वायौ क० ओ२ यदि २ घनस्कीताधिकः स्यात्तर्हि सा तस्य प्राह्ममर्यादा मन्यते। साधारणतः प्रत्येकमनुष्यः एकहोरायां १ घनस्कीतं क० ओ२ परित्यजति। स्रतोनिम्नाङ्कितरीत्या ज्ञातुं शक्यते यदेकजनार्थं प्रतिहोरमेतावच्छुद्धवायोरावाश्यकता भवतीति—

१००० × ६ = ३००० घनस्फीतः

अधिकपरिश्रमकर्तारोऽधिकं क० ओ२ परित्यज्ञन्ति । तदनु-सारेण तेषामपीत्थमेव ज्ञातव्यम् ।

[१९१]

रोगिणां ३०५० घनस्फीतवायुरावश्यकः । संक्रामकरोगिभ्यः शीतलान्त्रिकञ्चराद्याकान्तेभ्यस्तु ततोऽप्यधिको भवितन्यः।

आवश्यकवातप्रविचरणार्थं प्रतिव्यक्त्य-भीष्टस्थानम् ®

एकजननिवासार्थमभीष्टस्थानम् १००० घनस्फीतघनफलकं भिवतन्यम् । यच दशस्फीतायतदशस्फीतिवस्तृतदशस्फीतोन्नत गृहरूपेणोपलभ्यते । गृहेषु द्वाराणि, वातयनानि तथा जालकानि पर्याप्तानि भवितन्यानि । तानि च यथासम्भवमन्यान्यसन्मुखानि स्युः । यतो वायोर्गमनागमने सौकर्यस्यान् । इवासनि श्वासाभ्यां इवलनेन च वायुरुष्णो लघुश्च भूत्वोपरि गच्छत्यतो दृषिनोष्ण् वायोर्निष्कासनार्थं गृहवितानसविधेऽनेके गवाक्षाः कार्याः । एवम्भूतेर्गवाक्षेद्वितवायुर्वहिनिर्गच्छति तथा शुद्धवायुर्वाता यनमार्गेण समागच्छति ।

त्रीष्मकालेऽतिप्रवातप्रखरतापाभ्यामात्मरज्ञार्थं द्वारवातायना न्यनावृतानि क्रियन्ते । तदानीं शुद्धवायुप्राप्त्यर्थमशुद्धवायुनिर्ग-मनार्थञ्चोपायद्वयं विधेयं भवति ।

अन्तःपथो वहिष्पथञ्चेति । अन्तःपथेन शुद्धो वायुर्गृहा-

टिप्पगी

अभगवतासुश्रुतेन स्तिकागारिनर्माणार्थमेकस्तिकार्थ मष्ट-हस्तायतं चतुर्हस्तिवस्तृतं गृहं लिखितम्। सम्भवतो यदि अष्टहस्त-परिमितमौन्नत्यमि मन्येत चेत्तर्हि १२×१२×६=८६४ घन-स्फीतघनस्थानमेकस्त्र्यथमेकपुरुषार्थं वा सुश्रुतमतेऽपि सिध्यति यदाधुनिकवैद्यमतसान्निध्यं द्योतयति।

[१९२]

भ्यन्तरे समायाति । वहिष्पथेनाशुद्धो वायुर्वहिर्निर्गच्छति । एवं गृहेषु सुखं वातप्रविचरणं भवति।

अन्तःपथ:-अयमधिष्ठानात् ५-६

रफीतोच्चेर्भवितव्यः प्रवाताक्रमणप्रखरतापेभ्यो रक्षार्थम स्य मुखं वितानं (छत) प्रति कार्यम् । तथाऽस्य च्रेत्रफलं २४ वर्गपर्वात्मकमर्थाद्स्यायामः ६ पर्वात्मको विस्तारः ४ मितः कार्यः। अनेन गृहाभ्यन्तरे आगमनशीलवायोर्गतिः प्रति सार्धद्विविपलं (1 Second) ५ स्फीततोऽधिका न भवति । यदि सा गतिः २-३ स्फीतपरिमिता प्रतिसार्धद्विविपलं स्यात्ति वरं भवेत्।

अधिकोपयोगिकरणार्थमस्याकारः शङ्कवत्कार्यः । तस्य विस्तृत-

मुखं गृहं प्रति, सङ्कुचितमुखं तु वहिः कार्यम् । वहिष्पथः - अयमशुद्धवायुनिष्कासनार्थं आकारेणाऽन्तःपथेन सदृश एव कार्यः। विताने वितानसविधे वा भवितव्यः यतोऽशुद्धवायुरुष्णो भूत्वोपरि च गत्वा वहि र्निर्गच्छत्यत उपर्रोव नियुज्यते। यदि तत्सकाशं एव प्रदीप स्तिष्टेत्तिहं अशुद्धवातो निर्वाधं सत्वरं वहिर्गच्छेत् । अन्तः पथविह पथौ सदा धूलितो रणत्तीयौ यतस्तयोः छिद्रमावृतं मा भूत्।

वायुशुद्धिः भूमे

कर्पूरदेवदारुधूपचन्दनश्रीवासः सर्जागुरुनिम्बसोमराजिकापत्र-गन्धकगुग्गुछराजिकाश्वेतसर्षपसाकल्यादिहवनद्रव्याणामग्रौ हवनेन वःयुर्विशुध्यति ।

सभास्थानादिकप्रमाणम्

सभाभवनरङ्गभूम्यादौ प्रतिव्यक्ति अल्पस्थानस्य

[१९३]

३०० घनस्फीतघनफलकस्येवाऽऽवश्यकता भवति। यत एतानि स्थानान्यत्यल्पकालार्थं सेव्यन्ते। चिकित्सालये यत्रातुरा निव-सन्ति यत्रहि ऐन्द्रियिकपदार्थाः जीवाणवश्चोपलभ्यन्ते तत्र प्रत्यानुरं न्यूनातिन्यूनं १२०० घनस्फीतस्थानं भवितव्यम्। तथा तलस्य चेत्रफलं तस्य द्वाद्वशांशवर्गस्फीतं स्यात्। कारागारे प्रत्येकाभि-युक्तार्थं न्यूनातिन्यूनं यत्स्थानं दीयते तत् ६४८ घनस्फीतपरिमितं भवति। तथाऽधिष्ठानस्य चेत्रफलं ३६ वर्गस्फीतं भवति। कारागारातुरालये प्रत्यातुरं ९०० घनस्फीतस्थानं दीयते। तथा तलस्य चेत्रफलं ५४ वर्गस्फीतं भवति। एकान्तवासदण्डाय १००० घनस्फीतस्थान दीयते तथाऽधिष्ठानस्य चेत्रफलं ५४ वर्गस्फीतं क्रयते।

वासस्थानम् भेर्या

स्वास्थ्यदृष्ट्या निवासार्थं साभूमिः * श्रेष्ठा भवति यत् किञ्चित्रग्नगा, शुष्का, कोष्णा तथा वनस्पत्युत्पत्तियोग्या स्यात् । वासगृहं शुष्किकिञ्चिच्छिद्रमयभूस्यामर्थात्तनुसिकता दियुक्तायां निर्मातव्यम् । यतस्तत्रत्यं जलं निर्वाधं दूरे निर्गच्छे-देकत्र माभूत् । एतदर्थं चिक्कणसृन्भयभूमिनं कदाप्यनुमोदनीया आर्द्रशीतलजलावरोधवतीत्वात् ।

वास्तुशास्त्रोक्ताग्राह्यभूमिः

देवानां तु द्विजातीनां चतुरश्रायताः श्रुताः । वास्त्वाकृतिरनिन्द्या सावाक्प्रत्यिद्कसमुन्नता ॥

* भूमि: - श्वेतारक्तरूपीत ऋष्ण वसुधा स्वादुःकटुस्तिक्तकाः, काषायाघृतशोणितान्नमदिरागन्धाः शुमा विवतः।

(मुहूर्तमार्तण्डः)

[888]

हयेभवेगुवीणाव्धिदुन्दुभिध्वनिसंयुता पुत्रागजातिपुष्पाव्जधान्यपाटलगन्धकैः पशुगन्धसमा श्रेष्ठा सर्ववीजप्ररोहिग्गी। एकवर्णा घना स्निग्धा सुखसंस्पर्शनान्विता।। विल्वो निम्बश्च निर्गुण्डी पिण्डितः सप्तपर्णेकः। सहकारञ्च षड्वृक्षैरारूढा या समस्थला ॥ निष्कपाला निरुपला कृमिवल्मीकवर्जिता। अस्थिवर्ज्या न सुषिरा तनुवालुकसंयुता ॥ अङ्गारैवृत्तमूलैश्च ज्लैश्चापि पृथग्विधै:। पङ्कसङ्करकूपैश्च दारुभिर्लोष्ट्रकैरपि।। शर्कराभिरयुक्ता या भस्मासैस्तु तुषैरि । सा ग्रुभा सर्ववर्णानां सर्वसम्पत्करी धरा॥ द्घ्याज्यमधुगन्धा च तैलासृगनिधका च या। श्वेतासृक्पीतकृष्णा हयगजनिनदा षड्सा चैकवर्णा। गोधान्याम्भोजगन्धोपळतुषरहिताऽवाक्प्रतीच्युन्नता या ॥ पूर्वोदग्वारिसारा वरसुरभिसमा शूल्हीनास्थिवज्या । सा भूमिः सर्वयोग्या कण्दररहिता सम्मताद्येर्मुनीन्द्रैः ॥ (मयमते अ० १)

अन्यच-मनसश्चक्षुषो यत्र सन्तोषो जायते भुवि। तस्यां कार्यं गृहं सर्वेरिति गर्गादिसम्मतम् ॥ [गृहभूषणे]

शवमीनपक्षिगन्धा या सा धरा निन्दिता वरैः। सभाचैत्यसमीपस्था नृपमन्दिरसंश्रिता।। देवालयसमीपस्था कण्टिकद्रमसंयुता।

[१९५]

वृत्तत्रिकोणविषमा वज्राभा कच्छपोन्नता ॥ चाण्डालवासगच्छाया चर्मकारालयात्रिता।

(म० म० अ० ३)

गृहिनर्माणकाळे एतत्सदा विचार्यं यद् गृहं विवृतस्थळे स्था-त्तत्रत्यो वायुः शुद्धः स्थान्मलम्त्रप्रणाली च भूषृष्ठे न भवेत् । गर्तरज्ञकघट्टनालकसमीपस्थलेष्विप गृहिनर्माणार्थं स्थानमुपयोगि न भवति । यतः सजीवपदार्थानामुत्कुथनादिकारणैद्धितवायुस्तत्रे-कत्रीभूय तिष्ठति ।

वस्तुत आवासार्थं श्रेष्ठतमा भूमिः पर्वतिशिखरमथवोपत्य का भवति । यदीदं स्थानं छायामयं स्यात्तर्द्धितिवरम् । वृह-त्स्थटेषु आवासाः यथासम्भवं दूरे दूरे तथोचस्थाने निर्माध्याः । यतो वार्षिकं मूमितळस्थं च जळं सुखं प्रोद्ध निर्गच्छेत् ।

नैते कदाप्यशोभभानजाङ्गलोषरभूमावगभीरतडागसरसोरथ-वा कस्यचिद्बद्धजलाशयस्य सविधे निर्माप्याः। समीपस्थमलस-ङ्करभूमीनां धूमादिविशिष्टकार्यालयानां श्मशानस्य कृषिचेत्राणाञ्च स्थितिरपि हानिकरी भवति।

नगरेषु प्रामेषु च गृहं नैवन्भूतासु भूमिषु निर्मेयं या मळ सङ्करैर्गर्तानापूर्व निर्मिताः स्यः।

भूमिष्ठमुद्दकं भूष्ट्रष्ठात्सप्तहस्तगाम्भीर्यान्न्यूनं मा भूत् । गृहस्य चतुर्दिश्च विवृता वनस्पतयः स्युर्यतः प्रवातादस्योष्णातायाम-धिकभेदो न भवेत् ।

गृहमभितः एतावद्विवृतं स्थानमपि स्याद्यस्य चेत्रफल्लम-स्योत्सेधविस्तारसमं स्याद्यतो गृहे सुखं वातप्रविचारो भवेत्

म्पूर्वपश्चिमतो दैर्घ्यं सपादं दक्षिणोत्तरम् ।
 शुभावहं गृहचोध्वं सूर्यावद्ध न सौख्यदम् ॥

(गृ०भू०)

[१९६]

तथा सम्यक्सूर्यरश्मय त्रागच्छेयुः। गृहस्य द्वारं यस्यां दिशिस्याद्
गृहोचता तद्दिग्वीथिकाविस्तारतोऽधिका न स्यात्। कस्यामप्यवस्थायां गृहं ४६ हस्तपरिमाणादिधकमुन्नतं न भवेत्। गृहद्वारं
यथासम्भवं प्राच्यामुदीच्यां दिशि वा कार्यं यतः प्रातः
सूर्यकराः समापतेयुः।

शयनागारो यथासम्भवं गृहस्य कोष्ठे द्वितीयखण्डे स्यात्। तस्य च द्वारमुत्तरपूर्वयोः कार्यम्। गृहस्याभितो भूमिषु प्रस्तरे-ष्टकाद्यन्यतमैः कुट्टिमं (फर्श) कार्यम्। तदग्रेच हरितशब्पाच्छा-दितमेकं भूखण्डं स्यात्। तच्छब्पानां कर्तनं नियमतः सदा करणीयम्। प्रामेषु गृहसन्निकट एव पर्याप्तपानीयप्राप्त्यर्थं कूप आवश्यको भवति। किन्त्वेतत्सदा विचार्यं यत्तत्रकूपजल दूषिकाः मलमूत्रादिवाहिन्यः प्रणाल्यो न भवेयुः।

भित्तिमूलम् (नींव)

एतावद् दृढं भवितव्यं यद्गृहस्यभारं सम्यक् प्रसहेत । अस्योपरि पाषाणखण्डानामन्येषां वाऽप्रवेश्यपदार्थानांस्तरेणैकं तळं रचनीयं यन्न्यूनातिन्यूनंसार्ब्वहस्तपरिमितमुन्नतं स्यात्तथा चतुर्दिक्षुभित्तेःमूलादृष्टाड्गुलपरिमितमप्रे विस्तृतं स्यात् ।

भूमेराद्रताया भूमिगतवायोश्च रत्तार्थमुपपीठं * (कुर्सी)

‡-गेहोचस्य चतुर्थां शो द्विगुणो द्वारउच्छ्रयः।

(गृ० भू०)

ऋषिष्ठानस्य चाधस्तादुपपीठं प्रयोजयेत् ।
 रक्षार्थमुन्नतार्थञ्च शोभार्थं तत्प्रवद्यते ॥

(म॰ म॰ अ० १३)

[390]

निर्माण्यं यद्धि भूष्रष्ठात् पर्याप्तमुच्चैः स्यात् । यदि गृहं स्तम्भोपरि निर्मीयेत तर्हि अत्युत्तमं स्याद् यतः पूर्वोक्तळाभातिरिक्तं तद्घोऽपि सम्यग्वातप्रविचरणं भवेदिति ।

भित्ति:

सामान्यत इष्टिकाभिः प्रस्तरैः, समिधा, मृत्तिकया च विर्च्यते । इष्टिकाः छिद्रमयीत्वाज्ञलं सम्यगाकपन्ति, एवं मृतिकाऽपि । तथा वायुरप्यावारपारे गच्छत्यतोऽस्याउभयदिशि प्रास्तरः कार्यः । प्रत्यव्दमेकदावश्यं सुधाधौता कार्या । मृद्धित्तिरपि श्रेष्टमृत्तिकागो-भयादिभिः प्रलेप्या । भित्तोरधस्तलसन्निहितभागानांनिर्माणावसरे तत्संस्कारकद्रव्येषु कश्चिद्पवेदय पदार्थः सम्मेलनीयो यतो भूम्यार्द्रता छिद्रद्वारा न प्रविशेत् । द्वितलकगृहेषु द्वितीयखण्डीया-पेक्षया प्रथमखण्डीया भित्तिः स्थूबतरा कार्यो ।

द्वारवातायनानि

प्रत्येककुटीरेषुएकं द्वारं तथैकं वातायनं भवितव्यम्। द्वारं न्यूनातिन्यूनं हस्तचतुष्टयोन्नतं द्विहस्तविस्तृतं च कार्यम्। वाता यनं तद्दिशि भवितव्यं यद्दिशा वायुरागच्छति। तत्त्तेत्रफळं कुटीरत्तेत्रफळस्य दशमांश भाव्यम्।

तलम् (फर्श)

एतद्प्रवेश्यपद्।थें रचनीयं यद्धि सुखं निर्मळीकर्तुं शक्यं स्यात् । प्रायः प्रस्तरेष्टिकाखपरसुधाशकरादिमि-निर्मीयते ।

[196]

गृहवितानम् (छत)

द्विविधं भवति समतलं निम्नगञ्जेति। समतलवितानेऽपि किञ्चित्रम्नगत्यमवश्यं करणीयं यतो वार्षिकं जलं प्रोह्याऽधोनि-र्गच्छेत्। निम्नगविताननिर्माणार्थं खर्पराणि, कासदर्भशरादि-खलविशेषाः, लौहपत्रादीनि च प्रयुज्यन्ते येषु सीता वत्पङ्क्तयः स्युः।

पर्णखलशष्पादीनां वितानं (छप्पर) यद्यपि शीतलं, शुष्कं तथा प्रकाशवातागमनाई स्वास्थ्याय हितकरञ्च भवति। तथापि तत्र सर्पपिक्तिशेटादयः स्वगृहं कृत्वा निवसन्ति तथा अग्नेरिप-भयं विशेषेण भवति। लौहादीनां वितानं तु श्रीष्मकालेऽत्युष्णं

जायते।

वितानेष्वभितः सूक्ष्मप्रणाल्यः कार्याः। यत्र जलमेकत्री-भवितुं शक्नुयात। तथा प्रणालका अपि स्युःयैः तज्जलं सद्योऽधो निर्गच्छेत।

प्रणालकिनर्माणे एतद्वधार्यं यत्ते भित्तौसंहरना न भवेयुः। किन्त्वये निर्गता भवेयुः अन्यथा भित्तिराद्रतां प्राप्य सत्वरं नष्टा भिततुं शक्नोति। वितानसन्निकटे दूषितवायुनिष्कासनार्थं गवाज्ञाः प्रकाशागमनार्थं प्रकाशकाश्च भवितव्याः।

महानसम्

भोजनगृहं प्रस्नाववर्चोगृह्योः सन्निहिते न निर्माप्यम् । तथैवम्प्रबन्धः कार्यो यथा धूमः सर्वगृहेषु न प्रसरेत् । धूमनिर्गमनार्थं महानसवितानेऽनेके छिद्राः कार्याः । अग्नेय्यां दिशिकर्तव्यमावासस्य महानसम् । गवाचजालमार्गोढ्यमधीभत्त्युपलेपितम् ॥

[399]

चुल्ली तत्र प्रकर्तेच्या पूर्वपश्चिममायता । क्ष (च्रे॰ कु॰)

वचींगृहं प्रसावगृहञ्च

वर्चः प्रस्नावयोगृहे सदनस्यैकतटे निर्माप्ये। तयोरधस्तले भित्तयश्चाप्रवेश्यपदार्थैः सीमेण्टादिभिः कार्याः। सर्वदा च स्वच्छी-कार्ये यतो दौर्गन्थ्यंनाऽऽगच्छेन्।

सूतिकागारम्

अरिष्टं ब्राह्मण्त्वियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमि-प्रदेशेषु विल्वन्यप्रोधितन्दुकभक्षातकिर्मितं सर्वागारं यथासंख्यं तन्मयपर्यङ्कमुपलिप्तभित्तिं सुविभक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दिन्नण्द्वारं वाष्ट्रहस्तायातं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामङ्गल सम्पन्नं विधेयम्।

(सु० शा० अ० १०)

कुमारागारम्

वास्तुविद्याकुशलः प्रशन्तं रम्यमतमस्कं निवातं प्रवातैकदेशं दृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतंगं सुसंविभक्तसिललोद्खल-मूत्रवर्चः स्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तुशयनासनास्तरण-

अन्यानिगृहाणि

*—स्नानादिपाकशयनास्त्रभुजे च धान्य भाण्डारदेवतगृहा दिशि पूर्वतः स्टुः । तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्याऽ— भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥

(गृ० भु०)

[२००]

संपन्नं दुर्यात्तथा सुविहितरक्षाविधानविष्ठमङ्गलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसंपूर्णमितिकुमारागारविधिः ॥

(च० शा० अ०८)

वार्षिकं जलं गृहसमीपे नैकत्रीभवेदेतदर्थं तस्य चतुर्दिक्षु पाषाणेष्ठकादिभिः कुट्टिमं कार्यम् । तथा तत्रत्यजल निर्गमनार्थमभितः प्रणाली निर्माप्या यद्द्वारोदकं नागरिकवृहन्न।लायामन्यत्र वा सुदूरे निर्गच्छेत् ।

क्रिं गृहभ्शुद्धिः

भूगुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद् गृहं मार्जनलेपनात् ॥

(या० व०)

गोशालाऽश्वशाले

इमे गृहाभ्यन्तरे गृहातिसित्रकटे वा न निर्माण्ये तत्रत्यमल मृत्रयोर्भू मौप्रवेशाद्गृहिणामस्वास्थ्यकरत्वात्। आवासान्न्यृनाति-न्यूनं शतस्फीतदूरतो निर्माण्ये। तद्भितः पञ्चद्शस्फीतिविस्तृत स्थानं रिक्तं कार्यम्। एतयोरुचता द्वादशस्फीततो न्यूना न कार्या। एकगवे द्वादशक्षस्फीतायामंस्फीतचतुष्टयिक्तृतं स्थानं विधेयम्। एकारवार्थन्तु द्वादशस्फीतायामं षट्स्फीतिविस्तृतं स्थानं करणीयम्। एतयोरिधष्ठानं समीपभूमितलादेकस्फीतोचकं पाषाणशर्करासीमेण्टादिनिर्मितं निम्नगञ्च कर्तव्यम्। एका प्रणाळी कार्यो यतो मृत्रादिकं तद्द्वारा मलपथे गत्वा सुदूरे निर्गन

 केचिद्विद्वांस एकपश्चवे ८ स्फीतायामं ४ स्फीतिवस्तृतं तथैका श्वाय ९ स्फीतायामं ५ स्फीतिवस्तृतं स्थानं मन्यन्ते । तथाऽऽवासात् २० स्फीतदूरेऽपि पशुशालाश्वशाले निर्माप्य इति कथयन्ति ।

[२०१]

च्छेदथया ततो न्यूनातिन्यूनतो दशस्कीतदूरे सञ्चयनगर्तमेकं कार्य यत्र मृत्रादिकमेकत्रीभवेत्। तत्रञ्च संगृह्य सुदूरे प्रामाद्वहि-निक्तिपेत् । सूर्यपकाशतातागमनार्थमपि सुप्रवन्यः कार्यः । वितानमपि वर्षायमाक्रमणसंरक्तकं स्यात् । निर्मालीकरणार्थमपि सर्वदा ध्यानं देयम् । प्रत्यहं वारद्वयं जलेन मार्जनीयम् । गोमयादिकं सर्वदा वहिष्कार्यम् । वुपालय आवासेभ्यो दूरे पशुशालातः पृथङ् निर्मातव्यः । पशुशालासु दिनचतुष्टयान्ताधिकंभक्ष्यं वुषादिकं न स्थाप्यम् । पशुभ्यो निर्मलं जलं पानार्थं देयम् । पशुभ्याः पशुशालावितानोपरि शयनार्थं न कदाप्याज्ञाप्याः ।

जात्याचनुसारेण ग्रामादौ वासस्थाननिर्माणम्

गोशाला दिन्त्णानश्चोत्तरदेशे तु पुष्पवाटी स्यात् पूर्वद्वारे वापि पश्चिमतस्तापसावासम् ।। सर्वत्रैव जलाशयिष्ट्रिवापी च कृपं च । वैश्यादेर्व् नि्णतः * परितः सदनंतु शूद्राणाम् ॥ प्राच्यां वाष्युत्तरतो गेहं कुर्यात्कुलालाम् । तत्रैव नापितानामन्यत्कर्मोपयुक्तानाम् ॥ मत्स्योपजीविनां स्याद्वासो वायव्यदेशे तु । पश्चिमदेशे मांसैकपवृत्तीनां निवासः स्यात् ॥ तैलोपजीविनां चैवोत्तरदेशे गृहश्रेणिः । प्रामात्किञ्चद्दूरे पावकदेशेऽथवा वायो ॥ वासः स्यात्स्थपतीनां शेषाणां तत्र कर्तव्यम् । तस्मात्किञ्चद्दूरे रजकादीनां निवासः स्यात् ॥ चाण्डाळकुटीराणि पूर्वायां क्रोशमात्रे तु ।

नैश्यत्त्त्रियविप्राणां निवासस्थानं दिस्णपूर्वोत्तर दिक्तु कमेण
 वोद्धच्यम् ।

[२०२]

प्रागुत्तारिद्शि दण्डैः क्ष पञ्चशतैः स्याच्छ्वावासम् ॥ (मयमते अ०९)

नगरम्

राष्ट्रस्य मध्यभागे सज्जनवहुले नदीसमीपे च।
नगरं केवलमथवा राजगृहोपेतराजधानी वा।।
दिश्च चतुर्द्वार्युतं गोपुरयुक्तं तु सालाढ्यम्।
कयिक्रयकेयुक्तं सर्वजनावाससङ्कीणम्।।
सर्वसुरालयसिहतं नगरिमदं केवलं प्रोक्तम्।
प्रत्यगुद्दिश्च गहना परितः साला वहिः सपांसुचया।।
परितः परिखा वाह्ये शिविरयुताऽनेकसुखरक्षा।
पूर्वायां दिज्ञणतश्चाभिमुखा राजवलयुक्ता।।
उन्नतगोपुरयुक्ता नानाविधमालिकोपेता।
सर्वसुरालयसिहता नानागिणकान्विता वहूद्याना।।
हस्त्यश्वरथपदातिबहुमुख्या सर्वजनयुक्ता।
द्वारोपद्वारयुताऽभ्यन्तरतोऽनेकजनवासा।।
या नृपवेश्मसमेता सा कथिता राजधानीति।
(म॰ म॰ अ० १०)

दुर्गाणि

गिरिवनजलपङ्केरिणदैवतिमश्राणि सप्त दुर्गाणि। गिरिमध्यं गिरिपार्श्वं गिरिशिखरं पार्वतं दुर्गम्।। अजलं तरुवनगहनं वनदुर्गतदुभयं तु मिश्रं स्यात्। दैवं तु सहजदुर्गं पङ्कयुतं पङ्कदुर्गं स्यात्।।

 ^{*—}यवोदरैरङ्गलमष्ट संख्वैईस्तोङ्गलैः षड् गुणितैश्वतुर्भिः ।
 इस्तेश्चतुर्भिर्मवतीह दण्डः,
 (लीलावती)

नद्यविधपरिवृतं यज्जलदुर्गं निर्वनोद्मिरिणं स्यात्। अन्तयजलान्नशस्त्रं हातिविपुलोत्तुङ्गयनसालम् ॥ सर्वं हि दुर्गजालं सप्राकारं त्वनेकमुखरचम्। वहिरुद्कं रहितवनं छन्नपथं दुष्प्रवेशं च।। गोपुरमण्डपयुक्तं सोपानच्छन्नमच्छिन्नम्। द्वाराणि मण्डपसभाशाला काराणि कार्याणि ॥ प्रकाराश्चेष्टकया द्वादशहस्तोच्छिताहीनाः। उत्सेधार्धविशाला मूले भित्तिः ससञ्चारा ॥ सर्वस्याभ्यन्तरतः पांसुचयोपर्यनेकयन्त्रयुतम्। परितः परिखोपेतं पांसुचयेसंहताट्टालम्।। परितः शिविरोपेतं नानाजनवाससङ्कीर्णम्। नृपभवनसमोपेतंहस्यश्वरथपदातिवहुमुख्यम् ॥ धान्यैस्तेलैः चारैः सलवगाभैषज्यगन्धविषम्। लोहाङ्गारस्नायुविषाणवेण्वनधनैर्युक्तम् ॥ तृणचर्मकारयुक्तं सवल्कलं सारदारुयुतम्। दुर्गं दुर्गममुक्तं दुर्लङ्घ्यं दुरवगाहं च। रक्षार्थं च जयार्थं ह्यरिभिरभेद्यं च दुर्गमिष्टं स्यात्। (स० स० अ० १०)

पण्यवीथिका

सार्वजनिकविपणिः प्रधानमार्गतटे भवितव्या यत्र हि सर्वे जनाः सुखं गन्तुं शक्नुयुः। तन्मुखं सरकिद्श्येव स्यात्। गोधू-भादिधान्यानां मिष्टपकान्नानां च विपणिरिप तन्मार्गतट एव स्यात्। खाद्यवस्तूनि मिष्टपकान्नादीन्याच्छादितकाचपात्रे

^{*—}गुप्तमार्ग (सुरंग) सहितेत्यर्थः ।

रिच्तित्व्यानि । प्रधानमार्गीयद्वारद्वयातिरिक्तं शेषिदशोरिष द्वारं कार्यम् । फलशाकादिविषणेः पृथगसम्बद्धाच मांसविषणिभवेत् । अस्या नैर्मल्यार्थं विशेषध्यानं देयम् । प्रत्येकापणाये गमना गमनार्थं न्यूनातिन्यूनं हस्तचतुष्टयविस्तृतो मार्गः स्यात् ।

"मयमुनिलिखितं नगरान्तरापणकविधानम्" परितो रथपथयुक्तं मध्ये विण्जां गृहश्रेणी। तददिवाणतः पार्वे गेहं स्यात्तन्तुवायानाम्।। उत्तरतस्तद्वासावितकं स्याचिक्रकाणां तु । कर्मोपजीविनां स्याद्वासो रथपथ्यनेकानाम्।। ब्रह्मावृतपथमेकं तत्रान्तरापणं कार्यम्। ताम्बूलादिफलं च प्रोक्तं सारान्यितं द्रव्यम्।। ईशानादिमहेन्द्रद्वारान्तकं चान्तरापणकम्। तत्रैव मत्स्यमामं शुष्कं शाकञ्च विज्ञेयम्।। महेन्द्राद्यग्न्यन्तं भक्ष्यं भोज्यं च निर्दिष्टम् । श्रग्न्यादिचतगृहपर्यन्तं च तत्र भाण्डानि।। तस्मान्निर्ऋतिपदान्तं कन्सादिकमत्र विज्ञेयम् । स्यात्पुष्पदन्तभागान्तं पितृभागादिशस्त्राणि ॥ तस्मात्समीरणान्तं तण्डुलधान्यादिकं च कटम्। स्याद्रहाटपदान्तं वाय्वादि वस्त्रकादीनाम्। तत्रव छवणादि द्रव्यं तैलादि भैषज्यम्।। तस्मादीशपदान्तं गन्धं पुष्पादिकं विहितम्। एवं नवान्तरापण्मुद्तिं परितो मध्ये तु॥ अभ्यन्तरगतमार्गेष्वथ रत्नं हाटकं वस्त्रम्। परितः सर्वजनालयमुदितं किञ्चित्ततो दूरे।। नगराद्द्विशतं दण्डं नीत्वा प्राच्यांतु वाऽऽग्नेय्याम् चाण्डालकुटीराणि तत्रैव तु कोलिकानां च ।।

[२०५]

अस्मिन् सर्वमनुक्तं प्रामे यथा तथा विहितम्।

्राध्मादिमिष्ट न्नादिविक्रयगृहेषु प्रकाशवातागमनार्थं गवात्ताः भित्तौ विताने च कार्याः । अधिष्ठानादिकं दृढ तथाऽप्रवेश्यवस्तुभिः सुरचितं स्यात् । आपणाप्रे विरामदा निर्माद्याः । यतो प्राहकाः सुखं प्राप्नुयः । अत्र जलस्य मलपथस्य च सुप्रवन्धः कार्यः । प्रत्येकापणानां चतुर्दिक्ष्वेकाः प्रणाली भवेत् । या विपणेर्वाद्यवृहन्मलपथे संगता स्यात् । दुर्गन्धिपदार्थमलः सङ्कराद्यर्थं सन्निहितोचितस्थानेषु साच्छादनानि पात्राणि रिचतन्यानि । तानि प्रतिदिवसं वारद्वयं रिक्तानि कर्तव्यानि । मार्गातिकञ्चिद्दूरे आपणिकानां मलमूत्रोत्सर्जनस्थानान्यपि स्युः । येषां शुद्धिर्दिवा वारद्वयमवश्यं कार्या । आपणानां, तत्सन्मुखभूमीनां, राजमार्गस्य, वीथिकानाञ्च स्वच्छता प्रत्यहं निरन्तरं विधेया । विपणेर्निरीज्ञा नगरसभायाः स्वास्थ्यनिरीज्ञकाधीना स्यात् ।

जीर्णाः शीर्णाः कथमपि स्वास्थ्यहानिकारकाः पदार्था विपणी विकयार्थः नाऽऽज्ञा देया तद्धिकारिभिः।

विद्यालयः

निष्प्रत्यूह एकान्तस्थाने भूगृष्टादेकस्कीतोच्चेरायताका रमतमस्कं प्रवातैकदेशं वातायनादिसम्पन्नमभितो निम्नगतलं विद्याभवनं निर्मातव्यम्। तस्य परित एका प्रणाली कार्यो या वृहन्मलपथे संगता स्यात्। विद्यालयमध्य एकं समितिभवनं कार्यं तथाऽन्यानि गृहाणि एकपङ्को भवेगुः। गृहामे विरामदाऽ वश्यं स्यात्। प्रतिच्छात्रं द्वादशवर्गस्कीतस्थानमावश्यकम्। प्राय एकं गृहं ३० स्कीतायामं २० स्कीतविस्तृतं १४ स्कीतोन्नतञ्च-

[२०६]

विधेयम् । अधिष्ठानमश्रवेश्यपदार्थैः प्रस्तरेष्ट्रकादिमिर्निर्माप्यम् । गृहवितानमपि दृढंरचनीयम् । उपविश्याध्ययनार्थं मिष्ट्रकाः, पुस्तकरच्चणार्थं च मेजकानि स्युः । नित्यं विद्यालयः स्वच्छीकार्यः ।

अर्थाभावादाद्शिविद्यालयिनर्माणाशक्तौ घनच्छायवृत्ततले स्की-तैकोन्नतः सुविस्तृतश्चत्वरो निर्माप्यः तदुपर्यध्यापनीया विद्यार्थिनः मिश्चकाद्यभावे कटस्योपयोग आसनार्थं कार्यः। अस्यामवस्थायां लिखनपठनसमय एकजान्यधः पातियत्वा द्वितीयजानून्नती कृत्योपविशेत्। तदुपरि पुस्तकं संरक्ष्य लिखेत्पठेद्वा। एवं पृष्ठवंशास्थीनि सरलानि तिष्ठन्ति तथा वक्षम उद्रस्य चावयवा श्रमुचितभारतः संरक्षिता भवन्ति। विद्यालये पेयजलस्य मल-मूत्रत्यागस्थानस्य च यथाविधि प्रबन्धः कार्यः।

छात्रावासः

छात्रावासः समस्तगृहगुणसम्पन्नो विषेयः। अस्य द्वार्
मृत्तरिहिश दिश्चिणदिशि वा कार्यम्। अस्य प्रत्येकं कुटीरमेव
स्याद् यत्प्रत्येकच्छात्रार्थं ५० वर्गस्कीतस्थानमागच्छेत्।
प्रतिच्छात्रमेका काष्ठपट्टी (तख्ता), एका मिश्चका (कुर्सी).
एकं मेजकम् (Table) तथाचैका कुड्यागारिका (एल्मारी)
पुस्तकरक्षणार्थं प्रदेयाः। प्रकाशस्योत्तमः प्रवन्धः कार्यः। हिन्दू
यवनेशायिनां भोजनाजयः पृथकपृथक् कार्यः। विद्यालय
सोम्नि स एव आपणिको मिष्टान्नादिविकयार्थमागन्तुं शक्तुयाद् यो विद्यालयाधिकारिणा वैद्येन तद्वस्तूनि परीक्ष्याज्ञापितः
स्यात्।

विद्यार्थिनां स्वास्थ्योपदेशः

💯 प्रत्येकाध्यापका अवगतस्वस्थवृत्ता भवेयुः । यतस्ते छात्रानु-

[२०७]

पिद्श्य सदाचाराभ्यासिनः कर्तु शक्नुयुः। छात्रैः प्रत्येककार्यं सदा नियमतः कार्यम्। शरीरावयवा वस्त्राणि च निरन्तरं सुशुद्धान्येव भवेयुः। तमाखुसिगरेटप्रभृतीनां केषाञ्चिद्पि माद्कद्रव्याणां सेवनं न कदापि कार्यम्। वाळविवाहोऽवरोधनीयः विवाहिताविवाहितच्छात्रौ नैकत्र निवसेताम्। छात्राणां स्वास्थ्यपरीक्षा सदा कार्या। संकामकरोगाकान्तच्छात्रस्तावद्विद्यालयात्पृथक कार्यो यावत्प्रमाणितं न स्याद् यद्यं नीरुजः संक्रमणभयरहित इति। छात्रैव्यांयामो विविधः निरन्तरं कार्यः। ब्रह्मचर्यधारणार्थं सदा प्रयतनीयम्। व्यायाम शाला, कंदुकक्रीडनच्नेत्रञ्चावश्यं भवेत्।

चिकित्सालयः

चिकित्सालयस्य स्थानं समुन्नतं शुद्धं रोगिसमागमन सुखञ्च भवेत्।

अतो यथा सम्भवं राजमार्ग तत्सिन्निकटे वा स्वास्थ्यप्रदे विवृतस्थले कुर्यात्। वस्तुतो विंशति रोगिणां विष्टरार्थमेकैकडं स्थानमुचितम्। परन्त्वशक्तौ चत्वारिंशद्रोगिविष्टरेभ्तोऽधिकं विष्टरं न कदापि विष्टरणीयम्। आतुरालय एकतलकः श्रष्टतर। अधिकस्थानाऽभावे द्वितलकोऽपि निर्मातुं शक्यते। एवं सिति रोगिपरीचागृहं कार्यालयादिकं च निम्नतलक एव स्यात्। आतुरगृह्ञ्चोपरितलके कुर्यात्।

साधारणतश्चिकित्सालयस्य त्रयः खण्डा भवन्ति शासकखण्डो वाह्यरोगिखण्ड आन्तरिकरोगिखण्डश्चेति ।

शासकखण्डः

अत्र प्राणाचार्यस्य तत्सहायकानां च कर्मचारिणां गृहाणि, भोजनालयः, वस्तुगृहादीनि च गण्यन्ते। परिचारिकाणांतु वास- स्थानानि प्रायः पृथग्भवन्ति । एकगृहाद् द्वितीयगृहपर्यन्तं सुदृढ्मार्गो भवेत् । ततःकिञ्चिद्दूरे रजक गृहं निर्मातन्यम् । यत्र वस्त्रप्रज्ञान् लनार्थमेको जलाशयः (पुष्करिणी) कतिपयशिलाखण्डाश्च स्युः । तत्र च लघुकुटीरद्वयंतथैका खपरिटनान्यतराच्छादितविरामदा विवृता स्यात् । यत्रैकिसमन् कुटीरे मिलनवस्त्राणि, द्वितीये च प्रज्ञालितवस्त्राणि निधातन्यानि । वर्षाकाले विरामदायां वस्त्राणि शोषणीयानि ।

वाह्यरोगिखण्डः

अत्र वातायनादिगुणसम्पन्नं स्वच्छं, रोगि-व्यवस्थाद्युल्लेखागारं, स्त्रीपुंसोरूपवेशनार्थं पृथकपृथक् स्थानं, भैषज्यवितरणगृहं, व्रणोपचारभवनव्च पृथकपृथक् कार्यम् । रोगिणां विशेषपरीक्षाणार्थं तत्सुप्रकाशितगृहस्यैकभागे जवनि कातिरस्कृतैका काष्ट्रमयी समुन्नता शय्या भवेत् । शस्त्र-क्रियाभवनव्च तत्थाने स्याद्यत्र पर्याप्तप्रकाशः समागच्छेत्, धूलिः कथमपिनाऽऽगन्तुं शक्तुयात्। उत्तरद्क्षिणदिशोभित्तीनां कपाटा वातायनानि च काचमयानि स्युर्यतः सम्यक् प्रकाशः तिष्ठेत्। परन्त्वातुरोपरि शस्त्रचिकित्सकोपरि च स्पष्टसूर्यक-रापातो न भवेदेवमुपायः सदा कार्यः। अस्य रलक्ष्णकठिनकान्तिमत्प्रस्तरेण (यथा मर्मराख्येन) निर्मितं स्यात् । तत्सन्निहितभित्तयो न्यूनातिन्यूनतः पञ्चस्फी-तोच्चतान्ताः सुरलक्ष्णाः कान्तिमत्यश्च कार्याः। न्नागारे कोऽप्यानावृतशरीरः सन्नाऽऽगन्तुं प्राप्ताज्ञो भवेत् । अत्रैका. सोपानपरम्परा [Gallery] भवितव्या । सोपानानि वहिर्विरामदादिशि गच्छेयुर्यतो ये विद्यार्थिनः सेवायां न संहमनाःसन्ति तेऽत्राऽआत्य शस्त्रक्रियांसमवलोकेरन्

[२०९]

शवगृहं शवपरीचाभवनञ्चातुरालयादुपयुक्तदूरे निर्माप-णीयम्।

आन्तरिकरोगिखण्डः

आतुरालयस्य रोगिगृहाण्यायताकाराणि रचनीयानि । येषां प्रतिद्शु विरामदा भवेयुः । रोगिगृहयोर्मध्ये न्यूनातिन्यूनं तदौन्नत्याद् द्विगुणमान्तर्यं स्यात् । पुरुषेभ्यः स्त्रीभ्यश्च पृथकपृथ-योगिगृहं भवेत्। वस्तुतः प्रत्येकरोगिगृहं २४-३० स्फीतविस्तृतं, १२-१५ स्फीत समुन्नतं, तावचायतंकार्ययावत्प्रत्येकरोगिणाधिष्टानस्य १२ वर्गस्फीतस्थानंवायोश्च १२०० घनस्फीतस्थानं लभ्येत । विशेषतः तदेदमत्यावश्यकं यदा रोगिगृहे विद्यार्थिनः परिचारिकाश्च कार्यं कुर्युः । न्यूनातिन्यूनतःप्रतिरोगि स्थानं ६० वर्गस्फीतमितं ८१० घन स्फीतिमतञ्चावश्यं स्यात । अत्र वातायन।नि मिथः सम्मखे कार्याणि । तानि च रीतिलौहान्यतरसूक्ष्मतन्तुजालो १गुम्फितानि स्यः। यतस्तत्र मज्ञिकामशकाद्यो नाऽऽगन्तुं शक्नुयः। रोगिगृहेपुसुखं वातप्रविचरणार्थं प्रायो वातायनानि अनाव-तानिस्युः। सम्मुखस्थत्वाद्वातप्रवाहः सदा तिष्ठति। परन्तवेता वत्तयाप्येवं प्रबन्धः कार्यः यच्छुद्धनवीनवायुः (अन्तःपथ) नलिकाद्वारा गृहे समागच्छेत्। अशुद्धवायुश्च वितानसन्निहित प्रकाशकगवान्द्वारा वहिर्गच्छेदिति । विशेषतो वर्षतौ शीतकाले च यदा वातायनान्यावृतानि भवन्ति तदाऽयम्प्रबन्धो वहूपयोगी। यानिलका शुद्धनवीनवाताऽऽगमनार्थं निर्मीयन्ते ता विष्टरतोऽध:-स्था भवेयः । यतो वाताक्रमणं सहसा माभूत्। सम्भवतः गृहं पृथक् पृथग्भवेत्। अशक्तौ त्वसंक्रामक-रोगिण एकगृहेऽपि रक्ष्यन्ते प्रायेण । प्रत्येकरोगिगृहे २४-३२ शय्या भवेयः। परन्तु मुख्यगृहे चत्वारिंशद्रोगिणामपि निवा-

[२१0]

सोऽनिन्दः। शय्याशिरोभागा भित्तिदिशि स्थाप्याः। विष्टाराणा मुभयोः पंक्त्योर्मध्ये न्यूनातिन्यूनं ११ स्फीतविस्तृत एको मार्गः स्यात् । वातायनयोर्मध्यस्थले प्रत्येकशय्या स्थापनीया । अस्य स्थलस्य विस्तारो न्यूनातिन्यूनं शय्याविस्तारापे त्र्येकस्फीता धिको भवेत् । अत्र शय्याद्वयमपि स्थापयितुं शक्यते तत्र चेन्मिथः स्फीतत्रयस्यान्तर्यं स्यात् । उत्तरभारत इत्यप्यावश्यकं यच्छीतकाल आतुरगृहस्योष्णीकरणार्थं कश्चित्प्रवन्धः क्रियेत । एतद्र्थं हसन्तिकानामुपयोगोऽतिश्रेष्ठः । उष्णाकाले शीतलता प्रापणार्थं विद्युद्वयज्ञनं वस्त्रादिव्यजनापेत्त्रया श्रष्टतरम् । मुख्य रोगिगृहात् किञ्चद्वूरे एककोणे स्त्रीभ्यः पुरुषेभ्यश्चपृथकपृथक् पुरोषोत्सर्जनगृहं स्नानशाला च रचनीया। तत्र दशस्फीतायत श्रेकोमार्गः समवितानः मुख्यरोगिगृहसम्बद्धः कार्यः।

परिचारिका अगृहम्

इदं मुख्यगृहसम्बद्धैककोणे स्यात् । अत्र चैकं वातायनं रोगिनिरीज्ञणार्थं रोगिगृहसम्मुखं कार्यम् ।

शवगृहं शवपरी बाभवनञ्च

एतद्रश्मेवमभूतं स्थानं निर्णेतन्यं यद्रोगिगृहेभ्य उपयुक्त-दूरस्थं भवेत्।

संक्रामकरोगिगृहम्

आतुरालयात् पृथक् पर्याप्तदूरे भवनमेकं निर्मातत्र्यं यत्संक्रामकरोगिणां निवासार्थं स्यात् । तत्र पृथकपृथयोगानु

^{*} केचिद्विद्वांसः परिचारिकानियोजनमनुचितं मन्यन्ते तत्स्थाने परिचारका एव स्युः।

[२११]

सारेण पृथकपृथग्गृहं कार्यम् । विसृचिकादिरोगार्ताः सन्दिग्ध-रोगिण्श्च तत्रैव रच्नणीयाः ।

विशिष्टगृहाणि

धनिका, ये आतुरालये पृथक् स्थित्वाऽऽरोग्यकामः, तेभ्यो भवेयुः । तत्र निवासकुटीरपाकशालास्त्रानशालाशौचाल-यादीनां पूर्णप्रवन्धः कार्यः । एतान्येकभूखण्ड एवनिर्मातन्यानि । परन्तु गृहद्वयमध्ये भित्तिन्यवधानमवश्यं स्यात् । साधारण-रोगिगृहादेतानि पृथक्स्युः ।

अधिष्ठानादीनि

रोगिगृहशस्त्रक्रियाभवनशवभवनादिषु तलमेवम्सूतं श्रद्धण्मिपित्रप्रमञ्जले वार्षं यज्जलं गृहसम्बद्धनालिकायां सुखंनिर्गच्छेत्। अधिष्ठानं सर्वतः समं भवेत्। तच्च मर्मराख्यप्रस्तरादिभिरप्रवेश्यप्दार्थः रचनीयम्। गृहाभ्यन्तिरककोणा अधिष्ठानाद्वितानपर्यन्तं सुश्रद्धणी-कार्यः। यतः सुखं प्रचाल्याः स्युः। द्वारदेहली तलापेचयोन्नता मासूत्। यतः पादाघातशङ्का न स्यात्। द्वारकपाटकलकानि पृथुकानि वैषम्यरहितानि भवेयुः। तन्मध्यस्थलस्य निम्नोन्नतत्वेन तत्र धूलिस्थित्या मालिन्यमापद्यते। द्वारमध्यविस्तारो हस्तव्यान्न्यूनो न भवेत्। यतः प्रापिका (Strature) सुखं नेतुं शक्येत।

वस्तूनि

रोगिगृहेषु तावन्त्येव वस्तूनि रज्ञणीयानि यावन्ति रोगिणां परिचारकाणाञ्चात्यन्तावश्यकानि भवेयुः। व्यर्थं वस्तुजातं कदापि न स्थापयेत्।

[२१२]

शय्याः

लौहतारगुम्फिताः सार्धषट्स्फीतायताः ३ स्फीतविस्तृताश्च भवेयुः। शणमुखाद्यन्यतमरज्जुगुम्फितासु शय्यासु मत्कुणा भृशमुत्पद्यन्ते।

विशेषः

चिकित्सालये सर्वाणि वस्तुजातानि स्वच्छीकरणसुखान्येव रक्षितव्यानि ।

प्रतिदिवसं प्रातः सायं कासीसाद्यन्यतमनिष्कीटकघोळ-द्धाराऽऽतुरालयतलं मार्जनीयम्।

रोगिणां वस्त्राणि सदा निर्मलीकार्याणि।

चिकित्सकपरिचारकादिभिरातुरस्पर्शनानन्तरं सद्यो हस्तौजन्तु-घ्नद्रवेण प्रक्षालनीयौ। एतद्र्थं द्रवपृरितपात्रं वहिर्विरामदायां सततं रक्षणीयम्।

> नाडीं दृष्ट्वा तु यो वैद्यो हस्तप्रक्षालनं चरेत्। द्रोषशान्तिभवेत्तस्य गंगास्त्रानफलं लभेत्।।

संक्रामकरोगिगृहसम्बन्धिनियमाः

संक्रामकरोगिगृहे चिकित्सकादय श्राच्छादितशरीरावययाः प्रविशेयुः । वहिगमनसमये च हस्तौ सम्यक् प्रक्षालयेयुः ।

परिचारकाः स्ववस्त्रपरिवर्तनादन्तरेण न काऽपि ततो वहिर्गच्छेयुः । परिधानवस्त्राणि कार्पासमयान्येव भवेयुः । रोगिणां निरीक्षणार्थं ये तत्सम्बधिनः तत्र समागच्छेयुः, तेऽप्या-वृतशरीरा एव प्रविशेयुः । निर्गमनकाले तु हस्तमुखौ प्रक्षालयेयुः ।

[२१३]

यैः सह दानादानव्यवहारः स्यात् ते चिकित्सालयसीम्नो वहि र्गन्तुं नाऽऽज्ञाप्याः।

मुक्तरोगाजना उष्णोदकस्नाता निर्मेळाम्बराः सन्त आतुरा-लयात्पृथक् कार्याः।

मलसङ्करादिदूरीकरणविधयः

सङ्करिकट्टभेदाद् द्विविधं मलं भवति । सङ्करमले - गृहस्य पांसुभस्ममृत्तिकाखाद्यपदार्थावयवादीनि, गोशालाश्वशालाविपणिराजमार्गवीथिका-कार्यालयादीनां शुष्कमलानि च गण्यन्ते । किट्टमले — पुरीषमूत्रादिकं शैचालयस्नानशालामहानसादि गृह-मार्जनजलमन्यद् मलिनं जलं च गण्यते ।

पूर्णस्वास्थ्यप्रदकरणार्थं नगरस्य सर्वप्रकारकमळानां वहिः चेपणस्य समुचितप्रवन्धः कार्यः ।

सङ्करमलस्यदृरीकरणम्

प्रथमतः सङ्करः पात्रे निश्चेपणीयः । पात्रञ्जेतद् गृहात् किञ्चिद्दूरे जनसमागमनसुखेऽधिकावकरप्राप्तिस्थले वर्षाः वाताभ्यां
सुरिच्चतेप्रस्तरेष्टिकानिर्मित एकस्मिन् चत्वरे स्थाप्यम् । चात्वरिकमिलनजलिर्गमनार्थमेका नाली भवेत् । अवकरपात्रं द्विविधं
भवित चलमचलञ्जेति । चलपात्रं वृत्ताकारं लौहपत्र निर्मितं
विवृतसुखद्वयमितस्ततोनेयंस्वच्छीकरणसुखञ्च भवित । श्रचलपात्रं
तु वर्गाकारमिष्टिकानिर्मितमन्तः स्थूणं (कृत सीमेन्टं) स्वच्छीकरणकुच्छूमनेयञ्च भवित ।
अवकरपात्रं दिवैकदाऽवक्षयं निर्मेलीकार्यम् । आवक्ष्यकता

‡--वृष्टितोरक्षार्थेचत्वरोपर्येकं वितानं कार्यम् ।

[२१४]

नुसारेणानेकावकरपात्राणि नगरे सर्वत्र स्थापनीयानि । प्रति सहस्रमनुष्यंपात्रेकमलम् । सुखं निर्मलीकरणार्थं वृहद्वकरपात्रा पेत्तयालघुपात्राणि श्रेष्ठतराणि ।

यदि सम्भवतः प्रतिगृहद्वारसन्निकटे लघ्ववकरपात्रं साच्छादनं

स्थाप्येत तर्ह्यत्युत्तमं भवेत्।

पात्रस्थापितं मलं प्रज्यालनद्वारा प्रपूरणद्वारा चेतिप्रकारद्वयेन दूरीक्रियते।

(१) प्रज्वालनम्ॐ-मलनाशनस्योत्तमो विधिरयम्। किंतु वर्षतीवेषा क्रिया सम्यङ् न भवति। भस्मीभूतः सङ्करोऽल्प-त्वादल्पव्ययेन सुखं च वोढुं शक्यते। तद्भस्म मार्गादि-निर्माणार्थमुपयुज्यते।

(२) प्रपूरणम् — अस्मिन् विधौ संकर् आच्छादितशकटे-नोत्थाप्य नगराद् वहिर्नीयते । तच्च गर्तेप्रपूर्यते । कदाचित्रगरे-ऽपि निम्नस्थलप्रपूरणार्थमुपयुज्यते । साच पूरितभूमिः इत्युच्यते । न्यूनातिन्यूनं विद्यतिवर्षपयन्तमावासार्थमनुपयोज्या भवत्येषा । नास्त्ययमुत्तमो विधिः ।

यतः पूरितभूमिः सन्निहितजलं दूषियतुं शकोति । तत्र मशकमिश्वकादिश्चद्रजन्तवः मूषकाद्यश्च वहुधा निवसन्ति । मालिन्यमपि सदा तिष्ठति । अत एवंविधाभूमिरसन्निहितज-लाशया नगराद्वहिर्नोतिदूरे भवेत । यावत् पूर्यमाणभूमिः समतला न स्यात्तावत् क्रमशोऽवकरस्य स्कीतद्वयोत्सेधस्तरो-परि मृत्तिकायाः षट्स्कीतोच्छ्यः स्तरो विस्तार्यः । यत्र च हलद्वारा शाकादिकमुत्पादियतुं शक्यते ।

^{*—} श्रद्यत्वे एका भ्राष्ट्री प्रचित्ततास्ति । यत्रावकरं निधाय किञ्चि-त्कोकिलागिद्वारा प्रज्वालय भस्मीकियते ।

[२१५]

प्रामे तु जनाः संकरं स्वगृहद्वारसिवधएव निन्निपन्ति। अनारोग्यकरमेतत्। प्रामाद्वहिरेव निन्नेपणीयः। किञ्चित्का-लानन्तरं न्तेत्रे प्रचेष्य हलं प्रचाल्य कृषिः कार्यो।

किट्टमलस्य दूरीकरणम्

किट्टमलस्य दूरीकरणार्थं द्वौ विथी स्तः। सञ्चयविधिः जलवा-हनविधिश्चति।

(१) सञ्चयविधिः

चण्डाळयोषितस्तास्ताम्रायःमीसभूषणाः सर्वाः । पूर्वोह्ने मलमोचिक्रयोद्यता त्राममावेशय ॥

(म० म० अ०९)

अस्मिन् विधौ चाण्डालः प्रत्येकं गृहं गत्वा शौचालयं निर्मलीकरोति । मलंच शकट्यां निधाय नगराद्वहिन्यति ।

शौचालयः — गृहेषु व्यक्तिभ्यो निर्मीयते। अयं गृहाधस्तले निवासकुटीरान् न्यूनातिन्यूनं ६ स्फीतान्तरे तथा कृपाद्यन्यतम जलाशयात् ४० स्फीतान्तरे भवेत् । अस्य तलं प्रस्तरसीमेण्टाद्यप्रवेश्यपदार्थेनिर्मातव्यम् । यच भूतलाद्धंस्फीतोष्ठकं स्यात् । भित्तयोऽपि श्लक्षणाः प्रस्तरसीमेण्टान्यतरनिर्मिताः स्युः । अत्रको गवाद्यो भवेत् । यतः कपाटावरणाद्पि शुद्धवायुरागच्छेत् । मलपात्रस्थानमपि सीमेण्टप्रस्तररचितं स्यात् । तद्धिष्ठानं नागरिकनालीदिशि किञ्चित्रिम्नगं भवेत् । यतो मूत्रादिकं स्वयमेव नाल्यां निर्गच्छेत् । मलपात्रस्थानस्य वाह्यद्वारमेताविद्वेष्टतं स्याद्येन चाण्डालो निर्वाधं निर्मलीकर्तुं शक्त्यात् । स्वच्छता दिवा वारद्वयं कार्या । मलपात्रस्थानस्य व्यासः ९ पर्वकादनधिकः, उत्सेधः ६ पर्वकादन्यूनः स्यात् ।

मलमूत्रार्थं पृथकपृथक् पात्रं * स्याच्चेत्तर्द्धात्युत्तमताभवेत्। एवं सति मूत्रकणोत्पतनं शीव्रंच पुरीषोत्कुथनं न भवति। तथा मलस्य दहने खातप्रपूरणे वा सौकर्यं सम्पद्यते।

सामान्यवर्चीगृहम्—सर्वसाधारणजनार्थं निर्मीयते । यद-स्थायि स्थायिचेति द्विविधं भवति । अस्थायि, सम्मेलनोत्सवादौ प्रयुज्यते । स्थायि वर्चोगृहं जनावासतः २० स्फीतादधि कान्तरे, कूपादिजलाशयात् ५० स्फीतादधिकान्तरे च भवेत्। एतत् समुन्नतकठोरस्थले लौहपत्रैरिष्टिकाभिर्वा निर्माप्यम् प्रत्येकवर्चीगृहे गोपनार्थमेको द्वारकपाटः, शौचाय जलपात्ररच-णार्थमेकं विशेषस्थानं च स्यात्। शुद्धवातागमनार्थं कपाटोपरि-भागे छिद्राणि जालकानि वा भावेयुः। पुरीषमूत्रार्थे पृथक् पृथक् पात्रं † छौह्इलक्ष्णचीनीयमृत्तिकान्यतरनिर्मितं स्यात्। स्त्रीपुरुषेम्यः पृथकपृथग्वचीगृहाणि स्युः । वसत्यनुसारेण प्रति त्रिंशन्मनुष्यमेकं वर्चीगृहं स्यात् । तच्चिद्वाऽऽनेकवारं निर्मेली-कार्यम्। एकत्रीकृतं मलमेकस्मिन् लौहनिर्मिते साच्छादने वृहत्पात्रे निधातव्यम् । तच्च दिवा वारद्वयं मलशकट्यां निः-क्षिप्यनगराद्वहिर्नीत्वा खातादौ प्रपूरणीयम् । मलनिधानपात्रं \$ सदा स्वच्छीकार्यम्। वचीगृहस्याभ्यन्तरे तत्पृष्ठभित्तिसंछ्या-श्च नाल्यो भवेयुः। या नगरस्य वृहन्मलपथेनसम्बद्धः स्युः। मलपथाभावे इष्टिकासीमेण्टरचितमेकं क्षुद्रगर्तं कार्यं यत्र मूत्रादिक मेकत्रीभवेत् । तन्मलद्रवं दिवा वारद्वयं नगराद्वहिर्नियतस्थले प्रचेप्यम ।

मळशकटि:-इयं वेहनाकारा लौहनिर्मिता साच्छादना

[🌞] अद्यत्वे पात्रमेवम्भूतं निर्मितं यत्र मूत्रकणा नोत्यतन्ति ।

^{† ‡} कोलतारेण प्रतिमासं प्रलिप्तं कार्यम्।

[२१७]

भवति । अन्याप्येका भवति यत्र मलपात्राण्येव सन्निधाय नगरा-द्वहिर्नीयन्ते । सा 'पात्रशकिटः' इत्युच्यते । लघुवर्चोगृहार्थेश्रेष्ट-तरेयम् । यतः शकट्यां पुरीषभरणाद्यद्दीर्गन्ध्यमुत्पद्यते तन्मल-पात्राणां स्थापने न भवति । शकट्यां मलभरणस्य समयो रात्री ९ वादने सुप्रातर्वा भवेत् । मन्दगतिकशकट्यपेक्षया द्रुतगतिका श्रेष्ठतरा ।

किट्टमलस्यान्तिमो निक्षेपः

एकत्रीभूतस्य मलस्य निच्चेपणार्थं त्रयो विधयः सन्ति, खातप्रपूरणं गर्तप्रपूरणं प्रज्वालनञ्जेति ।

खातप्रपूरणम्—सर्वोत्तमो विधिरयमेव यन्मलं खाते प्रपूर्य किञ्चित्कालं भूमाविधवासयेत्। ततः खाद्रूपत्वेनापद्यमानंतत् कृषकेभ्योदद्यात्। खातभूमितलमार्द्रं जलपूर्णं वा न भवेत्। किन्तु सिन्निहितभूमितलात्किञ्चिदुन्नतं ग्रुष्कं च स्यात्। यतस्तत्र जलं न कदाप्येकत्रीभवितुं शक्नुयात्। एवम्भूताया भूमेरप्राप्तौभ्यतं स्वयमेव मृत्तिकया समुन्नतीकार्यम्। पूरणार्थमृत्तिकाम्प्रहणार्थं सन्निकट एवैकं गर्तं खननीनयम्। यत्र स्थितेन वार्षिकं जलेन मलशकटिर्मार्जनीया। इयं खातभूमिनगराद्विहिन्यू नाति न्यूनतः २०० दण्डान्तरे, पेयजलाशयात् १५० दण्डान्तरे चावान्तमुखायां दिशि रहिस भवेत्। इमां समतलां कृत्वा द्वादशभागेषु विभजेत्। प्रत्येको भागो मासैकस्य मलप्रपूरणायालं स्यात्। या भूमिः खातार्थमेकद्। प्रयुक्तास्यात्। सा वर्षद्वयं यावत् तद्र्थं नोपयोज्या।

ील खातपूरणप्रकाराः

(१) गभीरखातपूरणविधिः—अत्र खातानि २ स्फीत विस्तृतानि, २ स्फीतगभीराणि च खन्यन्ते। यानि सरलसभानान्तररेखासु परस्परं स्फीतद्वयान्तर्थे भवन्ति । यत्र ८ पर्वतः १२ पर्वगाम्भीर्यातं मलमूत्रेणापूर्योपरिखनितमृतिका प्रिच्चितते । खातपूरितं मलं ६ मासानन्तरमहानिकरं जायते । ततः खादरूपत्वेनापद्यमानं तत् कृषकेभ्यो दीयते । परन्तु विकय्यणातपूर्वं निखन्य परीक्षणीयं यत्खातपूरितपदार्थाः शुष्का दौर्गन्थ्य-रिहताः सन्ति नवेति । समयोऽयं यदस्य खातपूरितपदार्थस्य परिवर्तने लगति, प्रत्येकभूमिप्रकृत्योपर्याश्रितः ।

खातार्थं प्रतिसहस्रमनुष्यं तृतीयांशैकड्स्थानस्य प्रतिवर्ष-

मावश्यकता भवति।

एवं मूत्रमपि खाते प्रपूरणीयं भूतले वा प्रचेपणीयम् । भूतलस्य खण्डचतुष्ट्यं कृत्वा प्रत्येकखण्डे प्रतिसप्ताहं पर्याय क्रमेण मूत्रं प्रचेष्यम् । द्वितीयवारे भूतलखण्डे हलं प्रचाल्य पुनः प्रचेप्तव्यम् ।

- (२) अगभीरखातपूरणविधि: अत्र खातं २ स्फीतविस्तृतं ६ पर्जगभीरं खन्यते । खातयोः पंक्तिद्वयमध्यस्थले स्फीतेकस्यान्तय्यं भवित । द्विपर्जगभीरं मलेनाऽऽपूर्य खातस्य शेषभागः शुष्क-मृत्तिकया प्रपूर्यते । अत्र भूमौ कृषिः क्रियते । खादातिशयेन य पदार्था उत्पद्यन्ते तेऽत्र सुतरां भवन्ति । अस्मिन् विधौ गभीरखातापेक्षया चतुर्गुणं [प्रतिसहस्रमनुष्यं १,११३ एकड] स्थानं लगति । नास्त्ययमुत्तमो विधिः । यतोऽत्रमिक्षकादयो बाहुल्येन समुद्भवन्ति । यत्र देशे च जलाभावाद्रक्षवातः प्रवहति तत्र तद्भमौ जलमपि प्रक्षिप्यते । यतो वात्या तत्रस्थं खादमलांशं वहिनं समीरयेत् ।
- (३) तृतीयो विधि:- * अत्र १६ स्फीतायामं ५ स्फीत-विस्तारम् १ स्फीतगभीरं च खातं खन्यते । द्विखातयोरंतराछं ६

थौर्निहिलमहाशयेन बरेलीनगरे प्रथमतो विधिरयमुपयोजितः ।

[288]

पर्वकं भवति । खातेभ्यो या मृत्तिका निष्कास्यते सा चूर्णी कियते । खातेषु मृत्रादिद्रवयुक्तमलं निःचिष्योपिर सा चूर्णस्पा मृत्प्रक्षिष्यते । एवं मलद्रवांशः तत्त्तणं विद्युष्यति । अतस्तत्र मित्तकाद्यो नोत्पद्यन्ते । द्रवयुक्तमलप्रपृर्णाय विधिरयमत्युत्तमः अस्यां भूमौ तमाखोरालुकानां चोत्पत्तिः सुतरां भवति । तत्र च प्रायः ४ वर्षपर्यंतं खादप्रचेपणस्यावद्यकता न भवति ।

(४) चतुर्थो विधिः ‡-अयमि तद्दैवोपयुज्यते यदा मलं मूत्रेण मिलनोदकेन च समन्वितं भवित । प्रथमत एकं १६ स्कीतायतं ५ स्कीतविस्तृतं च स्थानं माप्यते । ततस्तदुपि २-३ पर्वकं गभीरं खनित्वाऽगभीरखातिमव निर्मीयते । तत्खाततल मृत्तिका ९ पर्वकमितः खनित्वा छिद्रमयी क्रियते । ततस्तत्र मलमूत्रादिकं निक्षिप्यते । मलद्रवांशः सत्वरं विशुख्यति किट्टांशारचोपि सन्तिष्ठते । तदुपि ३ पर्वकं मृद् विस्तार्यते । अत्र हलप्रचालनं विनेव शुष्पादीनां कृषिःकार्या । अस्मिन् विधी मलं प्रायः सप्ताहात् पूर्वमेव विधटते । एतद्रथमगभीरखातापेक्षया चतुर्गुणा भूभिः स्यात् । अत्र ४-५ वर्षपर्यन्तं पुनः खाद्प्रचे-पणस्यावश्यकता न भवित परन्त्वत्र मिक्षकाद्य उत्पद्यन्ते । यदि तत्र निर्वापितं चूर्णं प्रक्तिप्येत तर्ह्ययं दोषोऽपगम्यते ।

गर्तप्रपूरणम्

अद्रवाणामीषद्द्रक्युक्तानां वा मलानां निच्चेपणार्थं प्रकारा-न्तरमेतत । प्रायेणात्र गर्तं २० वर्गस्फीतच्चेत्रफलकं ४ स्फीत गभीरं च खन्यते । तच्च मलेन प्रपूर्यते । मलप्रपूरणकाले मध्ये मध्ये मृत्तिकास्तरोऽपि विष्टरणीयः । तथा गर्तोपर्यप्येक स्फीतोन्नता मृत्तिका प्रचेष्या । एवंकृते त्रिमासानन्तरं खादायो-

[‡] विधिरयं प्रयागे प्रयुज्यते।

[२२०]

पयोज्यं जायते। परन्तु चिरकालस्थित्या तदुत्पादकशक्तिर्विनष्टा भवति। गर्तमिदं निवासस्थानाज्ञलाशयाद्वा १५० दण्डाभ्यन्तरे न खननीयम्। यस्मिन् मलमृत्रं मिलनजलं च सिम्मिलितं भवति तत् सूर्यतापेन क्षुव्धं भूत्वा विघटने । दौर्गन्ध्यञ्चातनोति। यदा च वहु शुष्कं जायते तदा विघटनजन्यदूषितवायुना स्वोत्पादकशक्ति परित्यजित । सुप्राचीनो विधिरयम् । यत्र चाण्डाला गृहं गृहं गत्वा मलं समाहृत्य स्वयं निचिपनित तत्रा-यमुपयुज्यते। अस्मिन् विधौ यदि सुसावधानता न क्रियेत तर्हि न स्यादस्य सन्तोषजनकत्वम्।

प्रज्वालनम्

विधिरयं यत्र द्रवाद्रवयोर्भलयोः पृथक् पृथक् सञ्चयः क्रियते शुष्ककाष्ठं वह समुपलभ्यते, वर्षा च स्वल्पा भवति तत्र प्रयुज्यते । प्रज्वालनस्थानं नगराद् वहः समीप एव भवेत् । तत्रैकं शुष्ककाष्ठसंरक्त्यार्थं गृहमपि स्यात् । प्रज्वालनार्थंकाष्ठं स्वल्पं स्वल्पं शनैः शनैः प्रक्तियम् । तत्र चैकः चाण्डालः सर्वदा तिष्ठेत् । सार्वजनिकवर्चोगृहसमीपे, मलशकटिनिवेशस्थाने ६पि प्रज्वाल्यते ।

मूत्रालयः

प्रायो जनाः स्वभावतः नगरे वीथिकासु गृहभित्तिपृष्ठभाग एव मूत्रयन्ति । अतः यत्र जनतागमनागमनवाहुल्यं स्यात्तत्रोप-युक्तस्थानेषु मूत्रालयानां प्रबन्धः कार्यः । जनैरपि तत्रेव मूत्रोत्स-र्जनं कार्यं नान्यत्र क्वापि ।

अराते द्विविधा मूत्रालयो निर्मीयते। दृढ्रलक्ष्णतलो पर्येकश्चत्वरः क्रियते । तत्तटाद्धो मूत्रणपात्रं निधीयते ।

[२२१]

चत्वरोपर्युपविश्य मूत्र्यते । यदा मूत्रपात्रं परिपूर्णं जायते तदा तद्पनीय द्वितीयं रिक्तं पात्रं निधीयते । एकत्रीभूतं मूत्रं खाते निच्चित्यते ।

(२) उपर्यथः क्रमेण पात्रद्वयं स्थाप्यते। उपरितने पात्रे छिद्रं भवति यदुपरि काष्ट्रचूर्ण [बुरादा] प्रज्ञिप्य मूत्र्यते। सर्वे मूत्रमधः प्रस्तुतं भवति। यदा कदा काष्ट्रचूर्णं परिवर्तनी-यम्। स्वास्थ्यदृष्ट्या श्रष्टतरोऽयम्।

प्रणाल्यः

संचयिश्यो स्नानशालादीनां मिलनं जलं नगरसभाद्वारा निर्मिताभिः प्रणालीभिरेकत्री भवति । एताः प्रणाल्यः प्रस्तरादिना केनचिदनाचूषकपदार्थेनागभीराः सरकतटाभ्यां सहैव निर्मी-यन्ते । प्रायो बालकादयः तत्रैव मलमूत्रादिकं त्यजन्ति । अतो दिवा वारद्वयं तच्छुद्धिरवश्यं कार्यो । तदेकत्रीभूतं मिलनं जलमन्ततो नद्यां सम्मेल्यते । परन्तु यदि नलकेन कुल्याकेदार द्वारा वा यथासम्भवं चेत्रे प्रचेष्येत तर्हि सुतरामन्नोत्पत्तिः स्यात् । एतेन मन्दगत्या सिच्यमानोषराभूमिरप्युवरा जायते ।

(२) जलवाहनविधिः

सञ्चयविधौ मलमूत्रादिकं किञ्चित्कालमेकत्रीक्रियते। पश्चाद् विहीं चिष्यते। अतोऽनेकाः चतयः सम्भवन्ति। (१) एकत्री-भूतं मलं समाच्छादितं सत् सुरचितं न स्याच्चेत्तर्हितत्र मिच्छा अण्डानि दातुं शक्नुवन्ति। (२) अनेकवृषभशकिटचाण्डा-लादीनां नियुक्तःथा व्ययाधित्रयं भवति। (३) सङ्करमलित्चेषणं चाण्डालाश्रितं, परन्तु सुप्रवन्येनाऽपि चाण्डालाः प्रायेण यदा कदाकार्यं परित्यजन्ति। अतः सर्वप्रकारेणापि जलवाहनविधिः

[२२२]

श्रेष्ठतरो मन्यते। यतोऽत्र मलमूत्रादिकनिचेपणं पराश्रितं न भवति। परन्त्वयं विधिस्तत्रैव व्यवह्रियते यत्र जलाधिक्यं भवेत्। अतः सर्वनग्रे नोपयोक्तुं शक्यते।

साधनानि

्र जलवाहनविधौ मुख्यसाधनानि चत्वारि भवन्ति—जलसं-वाहकमलपात्रं किट्टनलो गृह्मलपथः किट्टवाहश्चेति ।

जलसंवाहकमलपात्रम्

एकिस्मन् कुटीरे मलम्त्राद्यर्थं यन्त्रविशेषस्य प्रवन्धो भवति ।
तत्र मलवाहनार्थमेकं लघु जलसञ्चयन (होज) मप्यपेक्ष्यते ।
यत्र मलमुत्सृज्यते तद् 'जलसंवाहकपात्र' मिति निगद्यते ।
एतद्प्रवेश्यपदार्थेः ऋक्ष्णप्रस्तरचीनीयमृतिकादिभिर्निर्मितं पर्याप्तजलाधारकमनुत्पतनीयोदकं च स्यात् । अस्य स्थानं गृहस्यैकतटे
मुख्यभित्तर्वहिः किञ्चिद्दूरे वा क्रियते । किंतु तेन सहैकवीथिकाद्वारा गृहसम्बन्धो भवेत् । शौचालयस्य भित्तयःऋक्षणाः सीमेन्टादिनिर्मिताः स्युः अनेकतलकसदने प्रातिखिष्ठकानि वर्चोगृहाणि
मिथो नीचैरुपरिक्रमेण भवेयुः । तेषां तलानि प्रस्तरमीमण्टनिर्मितानि मध्यस्थमलपात्रं प्रत्यभितो निम्नगानि स्युः । पादरज्ञणार्थं मलपात्रस्योभयदिशि तत्समतले पादपीठे निर्मीयेते ।
वर्चोगृहस्य चेत्रफलं ६ वर्गस्फीतान्न्यूनं न कदापि कार्यम् ।

जअसञ्चयनम् – मलपात्रशोधनार्थं वर्चीगृहे यहघुजलश्चय-नमपेक्ष्यते तन्मलपात्रम् ५ – ८ स्फीतोचतायां भित्तिसंहग्नं स्यात् । इदं लौहप्रस्तरयशदान्यतमनिर्मितं साच्छादनं भवेत् । यतः धूलिमिकामशकादयः तत्र न समाविशेयुः । अस्मिन् १५

[२२३]

सेटकं जलमागच्छेत् । तथा चैतनमलपात्रस्य पृष्ठभागीयतटेन सहैकसीसकनलिकद्वारा संयुक्तंस्यात् । अस्या नालिकाया व्यासः २—३ अंगुलिमतो भवेत् । अस्या पेयजलसञ्चयनेन सह सम्बन्धो न कार्यः । अस्मिन् जलसञ्चयने गुप्रद्वारमेकं भवति । येनास्य जलराशिर्नियतः तिष्ठति । अस्य क्रिया स्वयं भवति । यदाऽस्य-शृङ्खलाऽऽकृष्यते तदा जलसञ्चयनस्यं सर्वजलमधोमलपात्रे सहसाऽऽपतित । ततो जलवेगेन सह मलमधः किट्टनलादिद्वारा निर्गच्छति ।

विपाशः - दूषितवायुदौर्गन्ध्यावरोधार्थं मलपात्रतत्सम्बद्धं किट्टनलयोर्मध्ये एको विपाशः संयोज्यः । यः किञ्चिज्ञलसञ्चय मिप कर्तुं शक्नुयात् तथा मलपात्रं प्रति दूषितवातागमनम प्यवरुन्ध्यात् । अयं वक्रनलिकाकारो भवति । यत्र किञ्चिज्ञलमन्वरुद्धं सत् तिष्ठति । तदेवोदकं दूषितवायुं गृहे न प्रवेशयति । विपाशेन मलप्रवाहे बाधा न भवति । इमे बहुप्रकारका भवन्ति, तेषु १, ऽ इत्याकारको श्रेष्ठतमौ ।

किट्टनलः

यस्यैकं शिरो मलपात्रस्य विपाशेन सह, द्वितीयं च गृहमलपथेन सह संयोज्यते स किट्टनल उच्यते। सोऽयं सीसकलौहान्यतरिनर्मितो वलयाकारः ४ पर्वव्यासको भवति । अत्र
वर्चीगृहमूत्रालययोरेव मलं प्रवहेन्नान्यत्। एष गृहस्य वाह्यभित्त्या
साकं वहिरेव सलग्नः कार्यः।

गृहमलपथः

यः किट्टनलीयं मलं किट्टवाहे प्रापयति स नलो गृहमलपथ इत्युच्यते। अस्य संधिस्थलं दृढं भवेद् यतः जलं न कदापि च्यवेत। अस्याभ्यन्तरीयभागः समतलः चिक्रणरच स्यात्।

[२२४]

यतस्तत्र मलं नैकत्री भवेत् । सर्वाः शाखा या अत्र संयुक्ता भवेयुः संयोगस्थले न्यूनकोणं रचयेयुः । सचास्य नलस्य प्रवाहदिशि स्यात् । किञ्चित्किञ्चिद्दूरेऽत्रैवम्भूतानि छिद्राणि कार्याणि यैरस्य निरीच्चणंकर्तुं शक्यं स्यात् ।

गृहमलपथोऽयं प्रायेण प्रस्तरैश्चिकणमृत्तिकया वा निर्मीयते।

अस्य संधयः सीमेण्टेन संयोज्यंते।

मृदुभूमौ, तथा च यत्राधिकभारपतनसम्भावनास्यात्तत्र छौहेन

निर्मातव्यः । तत्सन्धयस्तु सीसकेन संयोज्याः ।

गृहमलपथः प्रस्तरखण्डानामप्रवेश्यस्तरोपि विष्टरणीयः । यत-स्तत्सिन्धिवमुक्तिसम्भावना मा भूत् । स चैवम्भूतो निम्नगः कार्यो यत्तत्रस्थं मलं सुखं प्रोह्य निगच्छेत् । एष गृहाद्धो मध्यभा-गाद्वा न गमनीयः । अस्य, किट्टवाहस्य च मध्ये संयुक्त एको विपाशः स्यात् । यतौ दौर्गन्ध्यं न श्रागन्तुं शक्नुयात् ।

्रे किट्टवाहः

यत्रानेकसद्नानां मलानि गृहमलपथद्वाराऽऽगत्यवहन्ति स किट्टवाह इति निगद्यते। परीक्षणार्थमत्र श्वभ्रप्रवाहद्वाराणि । निर्मीयन्ते। अयं किट्टवाहो द्विविधो भवति [१] वर्षादिजला-र्थम् [२] गृहत्य शेषमलार्थञ्च । किच्चतेते पृथक् पृथग् भवतः, किच्तुद्विक्रयार्थमप्येक एव नलो भवति। एष प्रस्तर-खण्डानामप्रवेश्यस्तरोपिर सरकतलद्यो दशस्कीतगम्भीरे भू-म्यभ्यन्तरे यथासम्भवं सरलरेखायां निम्नगः कार्यः। यतः किट्टप्रवाहे वाधा न भवेत् । अन्यैः सह संयोगस्थलेऽस्य संधि-रोषत्तिर्यक् स्यात्। यस्तत्र किट्टं नैकत्री भवितुं शक्नुयात्। अस्य निम्नगत्वं तथा वर्धनीयं यथा प्रवाहः प्रतिसाधिद्विविपलं २ स्फीतगतिको भवेत । यः किट्टवाहो २ स्फीतन्यासकः, स

[२२५]

चीनीयमृत्तिकया छौहेन वा निर्मितो वर्तुलाकारो भवति। ततोऽधिकव्यासकस्तु सीमेण्टेनेष्टिकाभिर्वा निर्मितोऽण्डाका-रको अवति। यस्य संकुचितं शिरोऽधःप्रवाहदिशि, विस्तृतं च शिरः उपरिष्ठात् क्रियते।

व्यासेन यावदेव महान् किट्टवाहः स्यात्तावदेव तस्य निम्नगत्व-न्यूनताया आवश्यकता भवति ।

यदि किट्टवाहः १० स्फीतव्यासकः स्यात्तर्हि भूमितलं प्रतिक्रोशार्धे २ स्फीतं, यदि च ५ स्फीतव्यासकस्तर्हि ४ स्फीतं निम्नगं कार्यम्। एतावित्रम्नगत्वे किट्टवाहे मलं भूमेर्गुरुत्वा कर्षणशक्त्या वहति । यदि तावित्रम्नगत्वमसम्भवं स्यात्तदा किट्टं प्रेरण् (Pump) शक्त्या प्रेरणीयम्।

श्वभ्रम् — किट्टवाहप्रवेशमार्गः श्वभ्रमुच्यते । एतानि दूरेदूरे विशेषतः किट्टवाहस्य संधिभागे गभीरलघुकुटीराणीवेष्टिकाभिर्नि-मीयन्ते । यन्मध्यतो वृहन्नाला [किट्टवाहः] याति । तत्थानान्त्रेय तच्छाखा उद्भवन्ति । इमानि पर्याप्तविस्तृतानि कार्याणि । यतो निरीन्नणार्थं तथा शोधनार्थं मनुष्याःसुखं गन्तुमागन्तुं च शक्नुयुः । तदुपरि मार्गतले श्वभ्रप्रवेशद्वारकपाटं लौहनिर्मितं सजालकं विधेयम् । यतो वायोःसंचरणं तत्र सम्यग्भवेत् ।

प्रवाहद्वारकम् — इदं प्रायेण किट्टवाहान्ते विधीयते । किट्ट-वाहप्रवाहे काचिद्वाधा न भवेत, यदि च तत्र किमप्यवरुद्धं स्यात्तद्प्यस्य साहाय्येन निर्गच्छेदेतद्रथमेतत् प्रयुज्यते । यदेद-मावृतं क्रियते तदा समस्तिकट्टं प्रश्चात् परावर्तते । उद्वाटिते सित तत् संश्विष्टमिप किट्टमितः सवेगं सहसा विहरायाति । एतद्र्थं नलयुक्तानि वृहज्जलसंचयनान्यपि रक्ष्यन्ते । तद्द्वारा समस्त-किट्टवाहः स्वच्छीक्रियते । जलाशयाभावे कहार (भिरती)

[२२६]

द्वारेणापि प्रबंधोऽयं सम्पाद्यते । अर्थाच्छ्वश्रद्धारा बहुजलं प्रचेष्य किट्टबाहः स्वच्छी क्रियते ।

किट्टवाहेषु वातप्रविचार:—किट्टवाहेषु तथाप्रवन्धो विधेयो यथा सम्यग्वातप्रविचरणं भवेत्। एतदर्थं प्रतिपंचाशद्दण्डान्तरं वातप्रविचारकाः (Ventilatars) नियोजनीयाः। यतः किट्टविघटनादुत्पन्ना दुर्गन्धिवाता विहिनिर्गन्तुं शक्नुयुः। एते प्रायो लौहनिर्मिताः (धूतूसदशाः) किट्टवाहसम्बद्धाः सन्निहितगृहसंलप्राश्च भवन्ति। येषां द्वितीयं शिरः तद्गृह-वितानोपरि समाप्तिमेति। तचैकजालिकाद्वारा समाच्छा-दितं भवति।

किट्टस्यान्तिमोनिक्षेपः

जलवाहनविधिद्वारा यत्समयं किट्टमेकत्रीभवति तस्यान्ति-मनित्तेपार्थं निम्नतिखितविधिषु कश्चिदेक: प्रयुज्यते—

- [१] किट्टस्य समुद्रे सम्मेळनम्।
- [२] नद्यां निपातनम्।
- [३] शुद्धं कृत्वोपयोजनम्।
- [४] च्रेत्रे प्रसेच्य खादनिर्माणम् । इति

[?]

समुद्रतटस्थानां नगराणां किट्टस्य निश्चेपार्थं समुद्र सम्मेलनमेव सर्वोत्तमः सरुश्चोपायः। परन्तु समुद्रस्यान्तस्तावद्गाम्भीर्थे- जलेऽधःसम्मेलनीयं यतस्तरङ्ग [ज्वारभाटा] समये किट्टं पुलिने न आगन्तुं शक्नुयात्।

[?]

यद्यपि विधिरयं सुप्रचिततोऽस्ति तथापि वहुहानिकारक एषः।

[२२७]

यतो जनाः किट्टिमिश्रितमपि नदीजलं गृहीध्यन्त्येव । अतो वसिततो दूरे, यथासम्भवं विशुद्धं कृत्वा सम्मेलनीयम् ।

[3]

किट्टस्य सेन्द्रियपदार्थानामपनयनमितिशुद्धेः तात्पर्यम् । अत्र त्रय उपायाः क्रियन्ते, अवस्थापनं प्रसादनं प्रदोपणञ्चेति ।

तत्रावस्थापनम्—अस्मिन् विधौ द्रविकट्टिमिष्टिकासीमेण्टरिचते जलाशये एकत्रीक्रियते। तस्थूलपदार्था स्वथस्तलं गत्वोपविशन्ति। उपि च स्वच्छं जलं तिष्ठति। परन्तु वस्तुतोऽत्रापि पर्योप्तराशिका जीवाण्यः सेन्द्रियपदार्थाश्च सम्भवन्त्येवातो हानिकरोऽयं विधिः। इदं पुनर्जन्तुन्नद्रव्यद्वारा संशोधनीयम्।

प्रसादनम् — अत्र द्रविकट्टं सस्मांगारस्तरेण शनैः शनैः प्रसाद्यते । द्रवांशः पृतः सन्नधो गच्छति । स्थूळांशस्तु स्तरोपवेवैकं बृह्त्स्तरं रचयन् अविष्ठिते । नास्त्ययमि सन्तोपजनको विधियतो निर्दोषीकरणार्थं प्रसादकस्तरो भूयोभूयः स्वच्छी क्रियते ।

प्रचेपणम् — अस्मन्विधौ द्रविकट्टे कितपयरासायनिक पदार्थाः प्रचिष्यन्ते । यद्द्वाराऽवलिम्बताः पदार्थाः ससेन्द्रिया अधस्तलं गत्वोपिवज्ञान्ति । पुनरुपरिष्ठे शुद्धप्राये जलेऽन्यद्रासायनिकं द्रव्यं प्रक्षिप्यते । तदुदकं च द्वितीयगर्ते नीयते । तत्रस्था अविश्वाश अवलिम्बतपदार्था अपि ह्यधो गच्छिन्ति । जलं चोपरि शुद्धं तिष्ठति । तत्पुनः चेत्रसिञ्चनार्थं प्रयुज्यते, नद्यां वा निपात्यत इति ।

निम्नाक्कितरासायनिकद्रव्याण्युपयुज्यन्ते —

(१) चूर्णम् इदं ५ सेटके किट्टे मापैकपरिमितं प्रयुज्यते । (२) स्फटिका—इयं ५ सेटके किट्टे ५ रक्तिकमानो

पयुज्यते ।

[२२८]

(३) चूर्णमिश्रितस्फटिका — एतत्प्रयोगः पृथकपृथकप्रयोगा पेत्तया श्रेष्ठतरः। ५ सेटके किट्टे द्वयोर्मेलयित्वा ५ रक्तिकाः प्रदेखाः।

वस्तुतो रासायनिकद्रव्यद्वारा किट्ट्शोधनं भारतसट्ट्शे उष्णदेशे न सन्तोषप्रदम् । यतोऽनावृततडागे पतितं किट्टं सत्वरं विघट्य दौर्गन्ध्यमातनोति । तथा किट्ट्रवांशोऽपि सेन्द्रियपदार्थेः रोगजनकजीवागुभिश्च रहितो न भवति । यदि द्रवो नद्यामपि निपात्येत, तथाप्यविष्टं स्थूलिक्टं सद्रवत्वात् किञ्चित्कालं संशोष्यते । पश्चात् खादकमिणि प्रयुज्यते ।

[8] &

अस्मिन् विधौ किट्टे एवम्भूतानि रासायनिकद्रव्याणि प्रक्षिप्यन्ते येः तत्रस्था अवलम्बितपदार्थाः शीव्रमधो गच्छेयुः। उपरिष्ठद्रवद्वारा क्षेत्रं प्रसिच्यते। तथा स्थूलकिट्टमपि क्षेत्रे प्रक्षप्य संशोष्य खादायोपयोज्यते।

क्षेत्रेषु समस्तिकृदृपक्षेपार्थमधिकभूमेरावश्यकता भवति । इयंच भूमिः छिद्रमयी स्यात् । यत्र च कठिना भवेत्तत्र खनित्वा षालुकाभस्मचूर्णानि मेलयित्वा सन्छिद्रा कार्याः । अत्र द्रव वहनार्थं प्रणाल्याः सुप्रबंधः कार्यः । सम्भवतः प्रतिसहस्र-मनुष्यार्थमेकैकड्भूमिः पर्याप्ता । अत्रेक्षुशष्परालगमपलाण्ड्वा-दिशाकानि भृशमुत्पद्यन्ते । परन्तवेवंविधे स्थले मशकाद्यः प्राय उत्पद्यन्ते तथा सन्निहितकृपोदकमि दूषितं भवतीति दोषः ।

अद्यत्वेलोके पञ्चमोऽपि विधि: प्रचलितोस्ति । यत्र वैज्ञानिकरीत्या कीटकुण्डनितारकस्तरसाहाय्येन किट्टस्य कीटागुप्रतिकारं कृत्वोपयोगं कुर्वन्ति ।

[२२९]

संक्रामकरोगाः

अयात्वे कालादिपरिणामवशाद् यावन्तः संक्रामकरोगाः प्रच-रन्तो दरीहश्यन्ते न तावन्तः पुरा आसुः। अतएव प्राचीनायु-वंदेऽतिसंचेपतो वर्णनं समुपलभ्यते। नास्त्यत्र कश्चन संदेहो यदनेके रोगाः सन्त्येवविधा ये मनुष्यान्मनुष्यं, पशुभ्यो मनुष्यं च संक्रामन्ति। तदेतत्संक्रमणं जीवाण्नां स्थितौ समाश्रितम्। जीवाण्यः स्वजीवनं प्राणिशरीराभ्यन्तरे तथा वहिर्निवहन्ति।

टिप्यगी

अ आकृत्यनुसारेण जीवाणविस्वविधा भवन्ति :—

- (१) अगुकीट :—(Micrococci) विंदुसदृशाकारः।
- (२) तनुकीट:-(Bacilli) शलाकाकार:।
- (३) वक्रकीट:—(Shirilla or vibrions) वक्र:, कुण्डलाकरोवेति।

स्थित्यनुसारेणैते पुनर्द्विविधा उच्यन्ते : -

- (१) जीविताश्रयिण :—ये जीवितप्राणिषु वनस्पतिषु वा स्वजीवनं यापयन्ति । एते प्रायेण रोगं जनयन्त्यतो 'रोगोत्पादका' इत्यप्युच्यन्ते ।
- (२) मृताश्रयिण :- ये केवलमृतकान् सेवन्ते । एते न रोगमुत्पादयन्ति ।

यदैते जीवाणवोऽभ्यासवशादुभयोर्जीवितमृतयोः सेवनशी-लाभवन्ति तदा 'उभयाश्रयिण' इति निगद्यन्ते ।

ते पुनरिष द्विप्रकारका :—(१) वातकीटा :—एतेषां जीवना-र्थमोषजनस्यावश्यकता भवति । (२) निर्वातकीटा :—एषा मोषजनावश्यकता न भवतीति ।

[२३०]

ते प्राणिशारीराभ्यन्तरं यदा प्रविशन्ति तदा पालिता असंख्यत्वं च प्राप्ता विषमुत्पाद्यन्ति । तद्विषं प्रतिरोगे भिन्नप्रकारकं भिन्न छत्त्गणकं च भवति । कतिचिद्रोगेष्वेकांगे, कतिपयेषु तु सर्वागे विषमिदं प्रसर्ति । इमे जीवाणवस्तद्विषाणि वा रोगिणां मल-मृत्रस्वेदादिद्वारा वहिनिःसृत्य स्वस्थमनुष्येषु संक्रामन्ति । तथोक्तं भगवता सुश्रतेन—

प्रसंगाद् गात्रसंस्पर्शान्तिःश्वासात्सहभोजनात्। सहशय्यासनाचापि वस्त्रमाल्यानुरुपनात्॥ कुष्ठंच्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसगिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥

इति ।

अत्र ज्वरपदेनागन्तुका आन्त्रिकादिज्वरास्तथा च सन्तता-द्यो विषमज्वरा अवगन्तव्याः। औपसर्गिकरोगपदेन मसूरिका विसूचिकोपदंशादयो ज्ञेयाः

तथाहि सिद्धान्तिनिदाने—
अथेदानीं प्रसिद्धा ये केचिदागन्तवो ज्वराः ।
नानाविधविषोत्थानास्तान् वक्ष्यामः सविस्तरम् ॥
विषं च तेषु प्रायेण भवेद् जीवागुसम्भवम् ।

टिप्पणी

तदेते कीटाणवो भूमौ जले पर्वते नगरे वायुमण्डले च प्रायः सर्वत्र सुदूरं प्रसृताः प्राप्यन्ते । तथाहि — विषमञ्चरकालञ्चरोत्पादका एकित्रशेषप्रकारका जीविताश्रयिकीटाः, श्वसनकञ्चरपूयमेहयोरगुकीटाः, प्रन्थिकान्त्रिकरलेष्मकञ्चरपक्षम-विसूचिकाकुष्ठोत्पादकाः तनुकीटाः, आवर्तकञ्चरिकरङ्गयोश्चोन्त्रपादकाः सन्ति ।

[२३१]

‡आन्त्रिको यन्थिकश्चापि रलेष्मकः सन्धिकस्तथा।
यश्च श्वसनको नामाऽऽत्तेपको यश्च वक्ष्यते॥
पडेते विषजा घोराः सर्वधातुप्रदूषणाः।
ज्वराः स्युर्जानपदिकास्तथा काचिनका अपि।
मस्रिकाद्या ये चान्ये भूवायुजलदोषतः।
काले काले प्रवर्तन्ते तेऽपि ज्ञेयास्तथाविधाः॥
दण्डकाख्यो ज्वरो दुःखस्तथान्यः कर्णमूलिकः।
द्वावेतौ खल्पविषजौ सुखसाध्यौ विदुर्वुधाः॥
संक्रामन्ति च सर्वेपि श्वसनस्पर्शनादिभिः।

इति

"सन्ततः सततोन्येद्यस्तृतीयकंचतुर्थेकाः। जीर्णः सततकोवाऽपि समृतः कालज्वरोऽधुना॥

‡ स्रान्त्रिकज्वर:—Enteric Fever of Typhoid-Fever, एन्टेरिक फीवर या टाइफयेडफीवर (मन्थरकज्वर:)। प्रन्थिकज्वर:—Plague प्लेग वातालिका-म्रिग्निरोहिणी। श्लेष्मकज्वर:—Influenza इन्फ्लुयेंजा (श्लेष्मोल्वणसिन्निपातः)। सन्धिकज्वर:—Rheumatic Fever. रियुमाटिक् फीवरः। श्लेष्मकज्वर:—Pneumonia निमोनिया (कर्कटकसिन्निपातः)। स्राच्चिकज्वर:—Cerefro-Spinal Fever. सेरिन्नो स्पाइनल फीवर। स्राच्चिकज्वर:—Cerefro-Spinal Fever. सेरिन्नो स्पाइनल फीवर। व्हन्मसूरिका—Small Pox, (स्मालपाक्स), लघुमस्रिका—Chicken Pox (चिकनपाक्स), रोमान्तिका-Measles. (मोजल्स)। दण्डकज्वर:—Dengue, डॅग् (सन्धिगसिन्नपातः)। कर्णमूलिकज्वर:—Mumps. मम्प्स। विषमज्वर:—Malaria. मलेरिया। कालज्वर:—Kala-Azar. कालाजार।

[२३२]

दंशमत्कुणसंक्रान्ता विज्ञेया विषमञ्बराः ।''
एते जीवाणवोऽतिसूक्ष्माः प्रायः केवलचक्षुषाऽदृश्याश्च भवन्ति ।
'रक्तजा जन्तवोऽणवः, सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः'

[अ० ह०]

परन्तु अगुवीचणसहायेन चिश्रूषातु दृश्यन्त एव। एतेषां दैर्घ्यं तथा विस्तार एकपर्वणः पञ्चसहस्रतमांशतः पञ्चशततमांश-पर्यन्तं भवति। इमे वायो, जले, भूमो, मनुष्याणामितरप्राणिनां च त्वङ्मुखमहास्रोतःसु च समुपलभ्यन्ते।

यो मनुष्याः प्राणी वा केनचिद्विशेषसंक्रामकरोगेण समाक्रान्तः स्यात्, तस्य रुधिरलसीकासु तद्व्याधेविशिष्टजीवाणवः प्राप्यन्ते । ते च तच्छरीराद्वहिः उचितखाद्यादिप्रवन्धेन संरक्ष्य, परिवर्ष्य कस्यचित्स्वस्थप्राणिनः शरीरे प्रवेशिता भवेयुश्चेत्ता- हिंतत्प्राणिनि स एव रोग आविभवति यस्य ते जीवाणवः सन्ति ।

सम्प्राप्तिकालः - शर्रारे जीवागुप्रवेशन्यादारभ्य रोगविशेष-लन्नणोद्भवपर्यन्तं यः कालः स एव सम्प्राप्तिकाल उच्यते । अयं भिन्नभिन्नरोगेषु भिन्नभिन्नप्रकारको भवति । अस्यामवस्थायां रोगी जनः स्वस्थमनुष्येषु भयावहो भवति ।

उपसर्जनकालः—रोगशान्तिचणाग्यावत्कालं रोगी स्वस्थ मनुष्येषु तमेवरोगमुत्पाद्यितुं शक्तोति स उपसर्जनकाल इत्यु च्यते। तद्यथा—

रोग नाम सम्प्राप्तिकालः उपसर्जनकालः विसूचिका १ होरातः ५ दिनपर्यन्तम् सप्ताहद्वयम् आंत्रिकज्वरः ५ दिवसतः २० दिवसपर्यन्तम् ६ स० प्रथिकज्वरः ३—१० ३ स० [२३३]

शीतला

83

६ स

इलेष्मकसन्निपातः

3-8

mfechung 40

संक्रमणप्रकाराः

- [१] खाद्यपेयादिद्वारा संक्रमणशीला रोगाः—आन्त्रिक-ज्वरविसूचिकातिसाराः।
 - [२] वायुद्वारा-मसूरिकारोमान्तिकायक्ष्मइलेष्मकञ्बराः।
 - [३] साज्ञात्सम्बन्धेन—जलसंत्रासॐधनुःस्तम्भोपदंशादयः।
 - [४] पिपीलिंकाद्वारा—अतिसारविस्चिकाऽऽन्त्रिकज्वराः।
 - [५] मत्कुणद्वारा—कुष्ठकाळज्वरत्वयोगाः।
 - [६] क्षुद्रपतंग (पिस्सू) द्वारा—ग्रंथिकज्वरः।
- [७] मह्मिकाद्वारा—अतिसारप्रवाहिकाविसूचिकाऽऽन्त्रिक-ज्वरनेत्राभिष्यन्दाः ।
 - ि | दंशमशकद्वारा-विषमज्वराः।
 - [९] यूकाद्वारा-आवर्तकज्वरः।

संक्रमणप्रतिषेधोपायाः

तत्र अव्यापन्नानामोषधीनामपां चोपयोग [कार्यः], तथा स्थानपरित्यागशान्तिकर्मप्रायश्चित्तमङ्गलजप-होमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कारतपोनियमदयादानदीज्ञा-भ्युपगमदेवतात्राह्यणगुरुपरैर्भवितव्यमेवं साधुःभवति।

(सुश्रतः)

अ उन्मत्तश्वदंष्ट्या कृतेनत्त्तेनाऽयं रोगः संजायते ।

[२३४]

(१) घोषणा

यदि संक्रामकरोगेण पीडितः कश्चिन्मनुष्यः स्याद्थवा तेन कस्यचिन्मृत्युभवेत्तर्हिसद्यः स्थानीयारोग्यविभागाध्यत्तस्तिद्विषये विज्ञाप्यः । यतः स शीघ्रं संक्रमणभयमपनेतुं शक्नुयात् ।

(२) रोगिणां पृथम् रक्षणम् [एकान्तवासः]

संक्रामकरोगातुराणां पृथयत्त्रणं संक्रमणप्रतिषेधाय साधु-तमम्। तदर्थमुपायद्वयमवलम्बनीयम्।

[१] निवासगृहे एव पृथम्रक्षणम्-एतद्रथे निम्नाङ्किता

नियमाः पालनीयाः—

१—यावच्छक्यं गृहस्योपरितले रोगी रक्त्णीय: ।

- २—रोगिनिवासकुटारेऽनावश्यकवस्तृनि न कदापि स्था-पनीयानि ।
 - ३—तत्र वातायनान्यनावृतानि स्युः।
- २ द्वारवातायनेषु केनचिज्जन्तुत्रपदार्थेन व्याप्तमावरकं (परदा) योजनीयम्।
- ५—रोगिपरिचारकातिरिक्तेन केनचिद्प्यन्येन तत्र न गन्तव्यम् । कार्यकरणानन्तरं हस्तपादौ जंतुन्नद्रवेण सम्यक् प्रचाल्य, वस्त्रान्तरं परिधाय परिचारकेण वहिर्गन्तव्यम् ।
- ६—रोगिनिवासकुटीराद् वस्त्रभाजनादिकानि जंतुष्टनपदार्थेन संशोध्य वहिर्नेतव्यानि ।
- ७-रोगिणो मलमूत्रष्टीवनानि जन्तुम्नद्रव्ययुक्तपात्रे प्रस्तेप्त-
- [२] चिकित्सालये पृथम्रक्षणम् त्रयं चिकित्सालयो नगरा-दृहिरेकान्ते स्यात्। तत्र प्रतिसङ्क्रामकरोगं पृथकपृथग्गृहं

ि २३५]

कार्यम्। यश्च रोगः सन्देहास्पदः तद्र्थं पृथगेव गृहं भवेत्। प्रतिरोगिपर्याप्तस्थानादिप्रदानस्य सुत्र्यवस्था कार्या । चिकि-त्सालये रोगिणां प्रापणार्थं द्रुतयानमावर्यकम्। यावच्छक्यं पृथक्षृथ्यवाह्नस्य प्रवन्धःकार्यः। रोगिप्रापणानन्तरं तद्वाहनं जन्तुःनद्रवेश मार्जनीयम्। रोगिसम्बन्धीनि दूषित-वस्रमळादीनि प्रज्वाळनीयानि, जन्तुच्नद्रवेण संशोधनीयानि वा यथासम्भवमिति ।

(३) उपदेशः

संक्रामकरोगप्रसारारम्भकाले एव स्वास्थ्यविभागाध्यक्षेरुप-देशप्रदपत्राणि तत्प्रान्तीयभाषायां मुद्राप्य वितरणीयानि। यत्र तत्सङ्क्रमणप्रतिषेधोपायाः पथ्यापथ्यादीनि च लिखितानि स्युः। तथेतस्ततः सर्वत्र तद्विषयकव्याख्यानानि कार्याणि ।

(४) जीवाणुविनाशनम्

संक्रामकरोगीयजीवाणूनां विनाशकारकं द्रव्यं त्रिविधं भवति ।

[२] जीवागुप्रतिरोधकम्-इदं जीवाणूनां वृद्धिं क्रियां चावरुगद्धि।

[३] दौर्गन्ध्यनाशकम्—इदं दौर्गन्ध्यं नाशयति । इति । तत् पुनः त्रिधा भवति, प्राकृतिकं भौतिकं रासायनिकं चेति।

प्राकृतिकम् – स्वच्छवायुः सूर्यरिमश्चेति प्रकृत्यैव रोग करजीवाणून् विनाशयतः । सूर्यप्रकाशेनान्त्रिकज्वरयक्ष्मादीनां

[२३६]

जीवाण्वोऽत्यल्पकालेनैव म्नियन्ते । भौतिकम् – इदं दहनस्वेदनभेदाभ्यां द्विविधं भवति ।

तत्र—[१] दहनम्—स्वल्पम्ल्यकपदार्थानां व्यर्थवस्तृनां विषये श्रेष्ठतर उपायः । रोगिणां मलम्त्रादीन्यपि दहनीयानि । [२] स्वेदनम् – एतच्छुष्कार्द्रभेदाभ्यां द्विविधम् ।

१ - शुष्कस्वेदनम् — उष्णवायुद्वाराश्चित्रीवाणवः सस्वाण्डका विनाश्युन्ते । एतचमरवरकाचवस्तूनां पुस्तकादीनां च विषये श्रष्टम ।

२-न्त्रार्द्रस्वेदनम् - क्वथनवाष्पस्वेदभेदाद् द्विधेति ।

िक विधरयम् — सर्वप्रकारकजीवागुविनाशार्थं श्रेष्ठ-तमो विधरयम् । वस्त्रधातुपात्रकाष्ट्रनिर्मितवस्तूनां विषये भृशमुपयुज्यते ।

्र गृहत्लादिकमपि तप्तोदकेन प्रचाल्य विनष्टजन्तुकं क्रियते । क्वथनार्थं होरैकाऽलम् ।

[ख] वाष्पस्वेदः—अयमतिविश्वसनीय आशुक्रच विधिः। एषः अक्वथनीयगुरुपदार्थेषु प्रायेणोपयुज्यते। यतो वाष्पं सर्वत्र प्रविश्वति।

रासायनिकम् – शुष्कं द्रवात्मकं वायवीयं चेति त्रिधा। तत्र शुष्के यथा –

चूर्णम्—नवीनं चूर्णं प्रायःपुरीषजीवासुविनाशार्थं प्रयुज्यते तथा भित्तिपूपयुज्यते । निर्वापितं चूर्णमपि १ कूपोद्कजीवासु-विनाशाय १५ सेटकमितमलम् ।

^{*} एतदर्थे ११५ शतांशोष्णतोपयुक्ता ।

[२३७]

द्रवात्मके तु-पारदद्रवः, कपूरद्रवः सुरसाफणिज्मकार्जकिन-म्बपत्रादिकिसिसूदद्रव्याणां काथाश्चोपयोज्याः।

वायवीये तु-गन्धकेन, निम्बपत्रेण, सोमराजिकापत्रेण, देवदारुसर्जरसादिना च धूपनं क्रियते।

तथाचाऽह् महर्षिसुश्रुतः —
सर्पपारिष्टपत्राभ्यां सर्पिषालयणेन च ।
द्विरन्हः कारयेद्भूपं दशरात्रमतन्द्रितः ॥
(सु० सू० अ० १९)

निर्जन्तुकीकरणविधि<u>ः</u>

पुरीषं स्नावाश्च—स्नानित्रकज्वरे मलं मृतं च, विसृचि-कायां वमनम्, अतिसारसंग्रहण्योः पुरीषम्, यक्ष्मिण्, फुरफुस-विकारान्तरे च ष्ठीवनम्, रोमान्तिकाश्केष्टिमकसन्निपातयोः नासागलसावाश्च संङ्कामका भवन्ति। अतो जन्तुन्नद्रवयुक्तेषु-केषुचिद्प्रवेश्यपदार्थनिर्मितेषु पात्रेषु प्रचेष्य समाच्छाद्य रच्चणीयाः। १—३ होरानन्तरं जलाशयाद् दूरे पृथिन्यां गर्तं कृत्वा पाटनीयाः। समिधश्चूर्णानि मेलियत्वा प्रज्वालयेत्तर्हि अत्यु त्तमता स्यात्।

वस्त्राणिः — कार्पासवस्त्राणि जन्तुन्नद्रवेषु प्रहरचतुष्टयं याव-त्संरक्ष्य पश्चाद् घंटार्धं परिकाथ्य सशोष्य धारणीयानि । पूय-पुरीषदूषितानि च शोधनद्रव्यमिश्रितजलेन प्रक्षाल्य पश्चात्पूर्ववत् कथनीयानि । कौशेयवसनानि तु सूर्यरहमौ दिनत्रयं रच्नणीयानि । कथनात्तानि विनश्यन्ति ।

शवः — संक्रामकरोगेण मृतानां शवाः श्वशानप्रापणापूर्वं जन्तुन्नद्रवाक्तेन वस्त्रेण संवेष्टनीयाः ।

[२३८]

गृहम्—कीटाविष्टं गृहमशेषं जन्तुन्नद्रवेश प्रक्षालनीयं जन्तुन्नद्रवेश वा धूपनीयम् । एतद्वस्थायां निष्कीटनप्रकारो रोगप्रक्रत्याश्रितः । यथा—विसूचिकायां मलमूत्रवमनविषये तथा तद्दूषितपदार्थेषु ध्यानं देयम् । प्रन्थिकसन्तिपाते मूषकमत्कुणा- खुमिक्तकानां नाशविषये, विषमञ्बरे दंशभशकानां नाशने च विशेषध्यानं देयमित्यादि ।

(५) रोगप्रतिरोधन्नमता

यद्यपि रोगोत्पाद्कजीवाणवः प्रायेण वायौ जले खाद्येषुच विद्यमाना भवन्ति । अतः प्राणिनः सदैव तदाक्रमणभययुक्ता निवसन्ति । तथापि कतिपयजना एव संक्रामकरोगेण प्रस्ता भवन्ति न तु सर्वे । अत्र हेतुः—तेषां"रोगप्रतिरोधक्तमता"इत्येव । सा क्षमता तद्वस्थाया नाम यत्र शरीरावयवेषु रोगोत्पाद्क-जीवाणुसमाक्रमणावरोधिका शक्तिरागच्छति । इयं शक्तिः स्वा-भाविकोपार्जिता चेतिद्विधा ।

स्वाभाविकशक्तिः—स्वभावत एव मनुष्येषु पशुषु च प्राप्यते, यया कीट्यविशिरोगप्रभावः पराभूयते। इयं सापेक्षा भवत्यतः परिस्थितिपरिवर्तनः सम्भवोऽस्ति प्राणी रोगप्रस्तः स्यात्। यथा—स क्षुधार्तः, श्रान्तः, अपध्यसेवी, शैत्यौष्ण्याभिभूतः, दृषितवायुसेवी च स्यात्तदेति।

डपार्जितशक्तिः—इयं कृत्रिमोपायैरुत्पाद्यते । साच सिक्रया निष्क्रिया चेति द्विप्रकारका भवति ।

सिक्रयत्तमता —तद्रोगप्रथमाक्रमणानन्तरं रोगमुक्तावस्थायां प्राप्यतेऽथवाकृत्रिमक्षते जीवागुविषं समावेश्य समुत्पाद्यते । यथा शीतलाप्रन्थिकज्वरादो ।

निष्क्रियक्षमता—कुतश्चित्प्राणितः प्राप्तस्य प्रतिविषस्य

[२३९]

जन्तुःनरक्तद्रव (सीरम) स्य श्ररीरान्तः प्रवेशात् प्राप्यते । सोऽयं प्रायेणाश्वात् समुपलभ्यते ।

मनुष्येषु सीरमनिर्माणार्थं किमपि विशिष्टप्रयतनं न क्रियतेऽत इयं चमता निष्कियेति निगद्यते।

उभयोरान्तर्यम्

सिक्रयत्तमतायां रोगप्रतिरोधकशक्त्युत्पादने कालातिशयः, निष्क्रयत्तमतायां तु स्वल्पकालो लगति । सिक्रयक्षमतायां रोग-प्रतिरोधकशक्तिरिधककालपर्यन्तं तिष्ठति, निष्क्रयक्षमतायां तु स्वल्पकालमेव । सिक्रयक्षमता रोगप्रतिवन्धकस्वकृपे प्रयुज्यते न तु चिकित्सास्वकृपे । परन्तु निष्क्रयत्तमता चिकित्सास्वकृपे प्रयुज्यते न तु प्रतिवन्धकस्वकृपे ।

कतिपयविशिष्टसंक्रामकरोगाणां वर्णनम् कुष्ठरोगः

अयं विशेषप्रकारकजीवागुद्धारा सञ्जायते । साक्षात् सम्बन्धेनैवायं संक्रामति । मक्षिकामशकमत्कुणादिद्वाराण्येषः संक्रामतीत्येके । कुष्ठसंक्रमणावरोधार्थं निम्नाङ्किता उपाया अवलम्बनीयाः—

(१) नगराद्वहिः कुष्ठभवनं निर्मापणीयं यत्र सर्वे कुष्ठिनो निवसेयुः। तत्रैव चिकित्सामि कारयेयुः। निम्नाङ्कितव्यापारार्थः न कदाप्याज्ञाप्यास्ते—

१-वीथिकासु गत्वा भिक्षाटनम्।

२-रजकस्य कर्मकरणम्।

३-नांपितस्य कर्मकरणम्।

४ — खाद्यवस्तूनां वस्त्राणां च विक्रयणम्।

[280]

५-कस्यचिद्पि प्रकारस्यापणस्योद्घाटनम्। 🕆 वेश्यावृत्त्या द्रव्योपार्जनम् । सेवाकरणम् ।

सार्वजनिककूपोपरि स्नानादिकरणमित्यादि । नत्र क्रमिष्तुरक्तशोधकद्रव्याणां सेवनं सदा कार्यम् ।

रोगोऽयं वायुमण्डलस्योष्णार्द्रत्वे प्रायः सम्भवति । नदीसर-स्तटेष, आद्रभूमी, निम्नभूमिष्ठप्रदेशे च वाहुल्येन संजायते। भारतवर्षे सर्वितीर दक्षिणायने प्रायेण भवति।

अस्योत्पत्तेः कारणं जीवागुविशेषाः त्रिप्रकारका भवन्ति । तत्र द्वौ तृतीयकचतुर्थकोत्पादकौ मृदुकर्माणौ, तदितरोत्पादकश्च तृतीयः तीत्रकर्मा भवति ।

इमे जीवाणयो मनुष्यशरीरं प्रविश्य रुधिरेषु तिष्ठन्ति। यदा मशकाः (प्रयोदीर्घशूकाः) तद्रधिरं चूषयन्ति तदा ते जीवा-एवो रुधिरद्वारा तच्छरीरे गत्वामाशये लालामन्थिप च तिष्ठन्ति। यदा ते विषमज्वरकीटाक्रान्तमशका अन्यमनुष्यान् दंशयन्ते तदा तत्क्षतद्वारा तन्मनुष्यशरीरे ते जीवाणवः प्रविश्य ज्वरमृत्पाद्यन्ति।

विषमज्वरप्रतिशेधार्थं निम्तत्तिखितविषये ध्यानं देयम् 🖵

- (१) मशकदंशाद्रक्षणम्
 - (२) मशकविनाशनम्।
 - (३) चिकित्सा।
 - (४) शिचा।

वासस्थानमुबस्थले पङ्करहिते च निर्मेयं यतो मशकाः तत्र न गन्तुं शक्नुयुः । गृहविरामदासु जालकमभितः संयोजनी-

[388]

यम् । शयनागारसुपरितले स्यात् । शय्याचतुर्दिक्षु 'मशकहरी' सम्बन्धनीया । गृहमार्गादिकं नित्यं स्वच्छीकार्यं, मलसंकरादिकं विहः प्रदोप्यम् । गर्तादिकं प्रपाट्योन्नतीकार्यम् । कचिद्पि गृह भागे मार्गादौ वा क्षुद्रगर्तेषु जलमेकत्र न तिष्ठदिति सहाध्यानं देयम् । तमाखुपत्रदेवदारुगंधकादीनां च धूपनं कार्यम् । मृत्तेलकपूररसोनगंधेनापि मशका विनश्यन्ति । जले विषमञ्बरजीवासुवाहका मशका अण्डं दृद्यतस्तिहिनासार्थं मत्स्याः प्रदोप्या अथवा मृत्तेलं तत्र सर्वत्र विष्ठरणीयम् । सतः साण्डा मशका विनष्टा भवेयुः ।

आयुर्वेदशास्त्रोक्ताः तुल्रसीपत्रस्वरमार्ककलिकाकुक्कुरुद्रु पह्नव-कल्कमृत्युं जयवटीविषमञ्बरान्तकलौह्ज्वरांकुशादीनां प्रयोगः कार्यः। त्रचत्वे 'कुनयन' इत्यस्य प्रयोगोऽतिलाभप्रदो दृश्यते। एतानि जीवाणून् मारयन्ति । पूर्वमेवसेवनाद्वरोधयन्ति च।

सर्वत्र विषमज्वरसम्बन्धिवृत्तविषये व्याख्यानं कर्यम् । यतः सर्वेजनाः पथ्यापथ्ये ज्ञात्वा स्वरत्तां कर्तुं शक्नुयुः ।

कालज्वरः

अस्य कारणंजीवागुविशेषाः सन्ति ये प्लीह्नि वाहुल्येन निव-सन्ति । यकृति रुधिरस्रोतःस्विप प्राप्यन्ते । एषां संक्रमणं मत्कुग् द्वारा रोगिभ्यःस्वस्थपुरुषेषु भवति ।

रोगिणः परिवारात्प्रथम्रज्ञणीयाः। गृहवस्नादिकं सम्यक् निर्ज-न्तुकं कार्यम्। मत्कुणाः खट्वाभित्तिच्छिद्रभूतल्लच्छिद्रादिषु साण्डा निवसन्ति। ते विविधौषधोष्णोदकादिद्वारा मारणीयाः। गृहे देवदारुगन्धकादिभिर्धूपनं कार्यम्।

[२४२]

्रान्थिक**ज्वरः**

रोगस्यास्य कारणमेको विशेषप्रकारकः जीवाणुर्वतते । वस्तुतः मूषकाणां गदोऽयं मनुष्याणां तु गौणरूपः । मूषकाणां मिक्षकासु (पिस्सुवों में) स जीवाणुः प्रविश्य तदामाशये वृद्धिं प्राप्नोति । ता आखुमिक्षिकाः पृथुकाः (चिपटो) पत्तरिहतां उच्छळनशीळा अप्रियप्रकाशाश्च भवन्ति । किंतु भूतळात् ४ हस्तोच्छ्रयादिषकं नोच्छळितुं शकुवन्ति । ता मिक्षका रक्तचूषणार्थं मूषकान् दशन्ति अतः जीवाणवः प्रविश्य रोगमुत्पादयन्ति ते च म्रियन्ते । एवं मूषकेषु रोगोऽयं प्रसरित । मूषका यस्मिन् गृहे निवसंति तद्गृहवासिमनुष्यानिप ता मिक्षका दंशन्ति तत्रेव पुरीषच्चा प्युत्सृजन्ति । यदा ते मनुष्याः कण्ड्यन्ते तदा तत्पुरीषस्था प्रन्थिकज्वरजीवाणवः तद्दशनचत्रद्वारा, शरीरान्तः प्रविश्य सज्वरां वंक्षण्वश्वाळसीकाप्रन्थीनां वृद्धिं कुर्वन्ति ।

मूषकाणामविद्यमानताऽस्यरोगस्य प्रतिषेधोपायो मुख्यतमः। एतद्थं गृहं दृढं चिक्कणमच्छिद्रं निर्मापणीयम्। यतो मूषका विलानि कर्तुं न शक्तुयः। यत्र च तद्विलानि स्युः तत्र प्रस्तरादिना ऽऽच्छाद्याप्रवेश्यानि कारयेयुः। तथा मूषकविनाशार्थं विविधा उपायाः कार्योः।

वासस्थानं स्वच्छं सप्रकाशं सदा स्यात्। मिक्षकानाशार्थं सोम-राजिकापत्रनिम्बपत्रगन्धकश्रीवेष्टकैर्धूपनंकायम्। उपार्जितक्षमता-ऽपि (टीका) प्राप्तव्या जनैः।

मित्तकादंशतो रक्षार्थं हस्तपाद्स्कन्धादिषु सदा सर्षपतैला-भ्यङ्गो लाभकरः । यदि तत्र निम्बुतैलमपि संयोज्येत तर्हि अधिक-लाभः स्यात्।

कदाचिद् प्रन्थिकज्वराक्रान्तवसतितः कश्चिज्ञनो द्वितीय

[283]

वसतिं गच्छेच्चेत्तदा तत्प्राप्तेः पूर्वमेव तद्वस्त्रादिकं सूर्यकरे होरैकं संशोषणीयं, पश्चात् स वसतौ गच्छेदिति।

रोगग्रसरारम्भकाले एव स्थानं परित्यज्यान्यत्र स्वास्थ्यप्रदे विवृतस्थले पर्णकुट्यां निवास उत्तमो रक्षणोपायः।

आन्त्रिक उवरः

अस्य रोगस्य कारणमेको जीवागुविशेषो भवति। ऋस्य संक्रमणं रोगिणां मलमूत्रष्ठीवनादीनां साक्षात् सम्पर्केण, दूषित जलदुग्धखाद्यद्वारा, मक्षिकाद्वारा जीवागुवाहकमनुष्यद्वारा च भवति।

अस्य प्रतिषेधार्थं निम्नांकिता उपाया ऋवलम्बनीयाः—

१—रोगिणो विशिष्टचिकित्सालये रक्षणीयाः। तद्भावे गृह एव पृथक्कुटीरे रित्ततव्याः।

२ - तन्मलमूत्रादिकं निर्जन्तुकं कृत्वा पाटनीयम् ।

३—यानि पात्राणि रोगिणोपयुक्तानि, तानि सम्बद्धः निर्जन्तु-कीकृत्य मार्जनीयानि ।

४-खाद्यपेयपदार्थेषु मक्षिका नोपवेशनीयाः।

५-क्षमता प्राप्तव्या । इति ।

रलेष्मकसन्नि पांतः

अयं प्रवलसंकामको जनपद्व्यापि रोगः। शीतकाले प्रायः सङ्घायत एषः। तदानीं पर्याप्तवस्त्राप्राप्त्याशैत्यनिवारणार्थमेक स्मिन्नेव कुटीरे वातायनकपाटानावृत्य बहवो जना मिथः संहताः सन्तः स्वपन्ति, इत्येव कारणम्।

एतद्रोगोत्पादकजीवाणोर्निश्चयः अद्यावधि नाऽभवत्। अस्मिन् विषये भिन्नभिन्नमतानि वर्तन्ते। केचिदेकविशेषप्रका-

[588]

रकजीवास्त्रमेव कारणं मन्यन्ते किंचित्त विषविशेषम्। रोगोऽयं वायुवाह्य इति सर्वेर्मन्यते । अस्य संक्रमणं रोगप्रथमा-वस्थायामाधिक्येन भवति। अस्य विषं रोगिणो नासागलश्वास-मार्गीयनिःस्रावेषु समुपलभ्यते । अतस्तत्संक्रमणं साक्षात्सम्पर्केण तथा तस्य कासनच्छिकनवार्तालापकालेषु भवति । तत्कालकीटाविष्टवस्त्रपात्रादिद्वाराप्यस्य संक्रमणं कश्चित्प्राणी यस्मिन्नेतद्रोगप्रतिरोधविषये स्वाभाविक क्षमता स्यात्। रोगप्रथमावस्थायां संक्रमण्शीलत्वादाशुकारित्वाद् दुरवगम्यानदानत्वाचास्यसंक्रमण्प्रसारावरोधस्य नास्ति कश्चन अतो विश्वव्यापिसंक्रमणकाले यदि स्वल्प विशेषोपायः। ज्वरोप्यनुभवगम्यः स्यात्तदानीमेव स रोगी पृथक् सुप्रकाशित वाताक्रान्तकुटीरे रक्षणीयः। रोगिणः कासनादिकाले मुखसमन्ते वस्रं योजनीयम् । तच निर्जन्तुकं कार्यम् । रोगिस्रावदृषितानि वस्त्राणि वस्त्वन्तराणि च निर्जन्तुकीकार्याणि। रोगिनिवास कुटीरोऽपि निर्जेतुकीकार्यः । तदानीं नाट्यालयसम्मेलनादौ जनानां गमनं निषेधनीयम्। यतो जनसमुदायः एकत्र न स्थातुं इलेष्मकसन्निपातावरोधार्थं पञ्चाशत्तोलकोष्ण-शक्तुयात्। जलेऽर्धतोलकलवणं घोलयित्वा तस्य कवलगण्डूषद्वारा गल-संशोधनं तथा नस्यद्वारा नासागुहासंशोधणं दिवा त्रिचतुर्वार-मवर्यं कार्यम्।

शोषः 🕸

शोषो राजयक्ष्मा, यक्ष्मा, क्षय इत्यपरपर्यायः । अयं खलु परमभयङ्करोऽतिप्राचीनः संक्रामको रोगः। यो हि फुफुसयोः कीटागुविशेषाणां स्थित्योत्पद्यते ।

टि॰ * काशी हिंदूविश्वविद्यालयीयशास्त्राचार्यपरीक्षासमित्या

[284]

जयरोगाक्रमणे मुख्यतःकारणत्रयम्

(१) जीवाणवः (२) शरीरशक्तिहासकारककर्माणि (३) अगुद्धवायुसेवनमिति।

शरीरं हि क्षेत्रं जीवाणवश्च बीजम्। यदा वपनयोग्यं क्षेत्रं भवित तदेव वीजवपनादंकुर उत्पद्यते। एवं यदा शरीरं वेग-रोधधातुत्तयसाहसविषमाशनैः शरीरशक्तिहासकारककर्मभिः क्षीणं, निर्वेठं भवित जीवाणवश्चाद्यद्ववाध्वादिद्वारा तत्राधिकुर्वन्ति चेत्तदा त्त्रयरोग उत्पद्यते।

शरीरे वयोत्पादककीटाणूनां प्रवेशप्रकाराः

(१) स्वासेन सार्धं फुफुसे गमनं जीवाणूनाम्।

(२) एवम्भूतस्याज्ञनस्य भन्नणं यत्र न्यरोगोत्पाद्कजीवा-णवः सम्मिल्ताः स्युः। यथा क्षयपीडितपज्ञूनां मांसमथवा क्षीर-मथवाऽन्यद्भोज्यंवस्तु यत्र क्षययुक्तवस्तृनां संस्पर्शः स्यात्।

(३) त्रणद्वारा रुधिरे कीटासुप्रवेशः। एवत्त्रिप्रकारेभ्यः शरीरं त्त्यकीटास्यः प्रविशन्ति। तत्र प्रथमः सर्वापेत्तया मुख्य इति प्रतीयते।

स्वासद्वाराकीटाणुप्रवेशः— त्त्रयपीडितजनानां मुखात् ष्ठीवनेन सहासङ्ख्याः कीटाण्वो निःसरन्ति । इदं ष्ठीवनं यदेत-स्ततः पतितंसत् शुष्कीभवति तदा चूर्णस्पतां गच्छति । तच्चूर्णञ्च वायुनाप्रत्तिप्तं पांसुभिर्मिश्रितम्भवति । यो हि मनुष्य एवम्भूते पांसुमिश्रिते वाते स्वसिति, यदि तस्य शरीरे [कुस्वास्थ्यात्]

स्वीकृतस्य १९२७ ई० स्विलिखितस्य यद्मिनवन्धारूयग्रन्थस्यांशोऽय-सुद्धृतोऽत्र ।

[388]

कीटाणूनामधिकारो भवेत्तुह्यवश्यं स त्त्यरोगाकान्तःस्यात्। मातापितृदोषान्मद्यादिमादकद्रव्यसेवनाद्रोगान्तरात्कुतश्चित्स्वास्थ्यना-शककर्मतो वा यदा शरीरं निवलम्भवति तदैवैतेषां कीटाणूनाम-धिकारस्तत्तित्रिमित्ताज्ञायते तत्र।

इतस्ततःप्रचिप्तष्ठीवनादितिरक्तं रोगिणः कासेन उच्चैः सम्भाषणेन च्वथुना वा साकं यःष्ठीवनांशो वहिरायाति सोपि-तत्समीपवर्तिनां मनुजानां परमहानिकरः। एवं तेऽपि च्रयरोगा-क्रान्ताः भवन्तीति स्पष्टं सिद्धम्। त्र्रतो रोगिणामतिसन्निकटे चिरकालं न स्थातव्यं कैश्चित्। द्वित्रिहस्तान्तरंस्थित्या तु नास्ति भयं यतस्ते सूक्ष्माःकीटाणवो ये ष्ठीवनेन सह कासक्षवथू-च्चैभीषणतो मुखाद्वहिरायान्ति ते हस्तद्वयान्तराद्येन गन्तुं शक्नुवन्ति शीव्रञ्च भूमौ पतन्ति । परन्तु तत्सामान्यं भयमपि यत्कीटागुपुक्तष्ठीवनस्य भूम्यापतनेनोत्पन्नं स्यादव-श्यमपनेतव्यम् । ते कणा रजोयुक्ता वायौ न मिश्रिता भवेयुः । यिक्ष्मणेत्यवश्यं ज्ञातन्यं यत्तस्य ष्ठीवनं शुष्कं भूत्वा चूर्णरूपत्वं न गच्छेत्। यतश्चूर्णत्वेनैव चयस्य प्रसारो भवति वाहुल्येन। अत आर्द्रमेवष्ठीवनं सावधानतया नष्टं कुर्यात्। एतदर्थं रोगिणा सर्वदा धातुनिर्मिते कस्मिश्चित्प्रतिष्रहे [ष्ठीवनपा-त्रविशेषे] ष्ठीवनीयम् । एतत्पात्रंकेनचित्परिशोधकद्र-वपदार्थेत [यथा 'चूना, पोटाशपरमेगनेट' अथवा 'कार्वोछिकछोशन' इत्येतद्युक्तजलेन] ऋर्द्धं पूर्णं स्यात्। यतः ष्ठीवनं न शुष्येत्। तं प्रतिमहं भूमितलाद् द्विहस्तोचैः किर्मं-श्चिदाधारे स्थापयेत्। यतो मार्जारिकाश्वाद्यस्तत्र मुखं न प्रज्ञि पेयुः । तद्द्वारा च च्यप्रसारो न स्यात् । प्रतियहञ्चाच्छादनेनाच्छा-दितं सदा रचेत्। एवंकृते मिक्तकादयोऽपि तत्र नोपविशन्ति। तद्द्वारेण च चयप्रसारभयं न भवति । यत इति सिद्धमेव यन

[२४७]

मिक्काकीटपतंगाद्यः स्वपादद्वारा ष्टीवनकगान् नीत्वा यस्मिन् वस्तुनि तिष्टन्ति तत्त्वययुक्तं भवति। तद्भक्तणेन च प्राणिनः चयरोगाक्रान्ता भवन्ति। अथवा चयाक्रान्तमक्षिकाद्यःकीटा मृत्वा गुष्काःसन्तो रजिस मिश्रिता भवान्त । तन्मिश्रितंरजो वा-युना सह फुफुसे श्वासद्वारा गच्छिति चयञ्चोत्पाद्यति। यदा रोगी गृहाद्वहिर्गच्छेत्तदा स्वेनसहैकं जेवीयं प्रतिप्रहं नयेत्। यदोवं न सम्भवेत् कस्मिश्चिद्वस्त्रके [रूमाले] छीवेत्। अन्यत्र न ष्ठीवेत्। तद्वस्त्रं चार्मेवदाहयेदथवा कस्मिश्चित् पात्रेष्टत्वा तिसमन् जलं शोधकद्रव्यं शुक्तसोडाद्यन्यतमंच प्रक्षिप्य सम्यक् काथयेदेवंचतुविंशतिघण्टामध्येऽवश्यमेकदा कुर्यात्। पात्रादिकं संशोध्य कार्ये प्रयोजयेत्। निखिलप्रतिप्रहस्थष्ठीवनमपि नित्यसन्निहित एकस्मिन्जलपूर्णघडे प्रक्षिप्य कथेत्। एकस्मिन्नहो रात्रेऽवर्यमेकदा कथेत्। ईपत्कालं कथनेनैव कीटाणवो म्रियन्ते। ष्टीवनञ्चाऽहानिकरम्भवति । काश्यज्ञलेन सह [सोडा] दिकशोधकद्रव्यमवश्यं प्रज्ञिपेत्। यद्वस्त्रंसिंहाणका-दिप्रोत्त्रणार्थमुपयुज्यते तत्ष्ठीवनेन न स्पृष्टंस्यात्। ष्ठीवनार्थमन्य-द्वसं रचेत्।

कासनम्— सयी कासवेगंनावरुन्ध्यात्रच मुघा कासेत। कासवेगादागतं कफं न निगिलेदेवंकृते श्रन्त्राण्यिप रोगान्वितानि शीव्रं भवन्ति। तथा कासावसरे स्वसम्मुखे वस्त्रं धृत्वा कासेत। यतः श्रीवनकणा अन्यत्र न पतेयुः।

मक्षिकाद्मनावद्यकता—यावच्छक्यं रोगिनिवास
स्थाने मक्षिकाऽनागमनस्य प्रबन्धो विधेयः। यत एता एव क्षयकीटाणून् प्रसारयन्ति। अतः सजालकपटेन रोगिद्वारमाच्छादितं

[286]

तिष्ठेत् सदा । तथा रोगिनिवासस्थानसकारोऽशुद्धदुर्गिधिपदा-र्थराशिर्नस्यात् । सर्वेतः स्वच्छता स्यात् ।

रोगिणोपयुज्यमानानां वस्त्रादोनां शुद्धिः सावधानतया सर्वदा कार्यो । निवासस्थानस्य भूमेरुपरि जलं प्रक्षिप्य पश्चान्मार्जन्या शतैः शतैः मार्जयेदन्थथोड्डीयमानपांसुभी रोगी, अन्ये च तत्रवर्तिनो रोगाक्रान्ता भवितुं शक्नुवन्ति ।

अशानद्वाराकीटाणुप्रवेशः—यदाऽशनं चयजनककीटाणुयुक्तस्भवति तद्शनञ्च योऽश्नाति तस्यामाशयेऽशनद्वारा कीटाणवो
गच्छिन्त । प्रायःक्ष्यरोगाकान्तपश्नां क्षीरपानेनाथवातन्मांसभक्षणेनैतत्सम्भवति । यतः पश्नामपि क्षयरोगोजायते । पशुक्ष्यकारकाः
कोटाणवः मानवक्षयकारककीटाणुभ्यो विभिन्ना भवन्ति । पाशविकक्षयस्याक्रमणं मनुष्येषु भवतीति सिद्धमेव अतो मांसाहारिणां यद्येतन्निश्चितं न स्याद्यदिदं मांसं [परीक्षया सिद्धम्]
निर्दोषं वर्तते तु तैः सम्यक् तन्मांसं कथनीयम् । एवङ्कृते
निखिला हानिकाराः क्षयकीटाणवो विनष्टा भवन्ति । क्षययुक्तपश्ननां तु मांसं क्षीरञ्च सर्वथा त्याज्यम् । पश्नामपि परीक्षा सततं
वैद्यद्वारा कार्यो । रोगी पशुः पृथक् कार्यः । आभीरैरन्यपशुपाल
कैश्च सद्गाऽस्मिन् विषये ध्यानं देयम् । दुग्धदोहनोपयुज्यमानं
पात्रमपि सद्ग उष्णोदकेन परिशोध्य स्थापनीयम् ।

च्यान्वितपशूनां क्षीरस्य पानेन च्याक्रान्ता भवन्ति जनाः । अतः सन्देहे सित सम्यक् कथित्वा पिवेत् । प्रायः शिशुभ्यो परमलाभकरस्वमातृदुग्धाभावे गोक्षीरं दीयते । यतो मातृदुग्धातिरिक्तं
गवामपिचीरं हितकरं भवति । अतो गवां परीक्षां कारियत्वा तासां
क्षीरं पाययेत् । सन्देहे सित क्षीरं तावदुष्णीकुर्याद्यावत्तस्मिन्
सम्यग्बुद्बुदान्युत्तिष्ठेयुः । पश्चाच्छीतीकृत्य शिशुभ्यः पाययेदिति ।

[२४९]

चुम्बननिषेध:—प्रायो जनाः श्वमाजीरिकाशुकसारिकादि कं पालयन्ति । सम्भवोऽस्ति ते क्ष्यान्विताः स्युः । अतस्तेषां चुम्बनमनुचितम् । क्ष्याकान्तानां मनुजानामपि चुम्बनं न तत्कु-दुम्बिभिर्मित्रैर्वा कार्यम् । यतस्तन्मुखागतष्टीवनस्य स्वमुखप्रवेशा-दन्त्राणि क्षयान्वितानि भवितुं शकुवन्ति ।

धार्मिकगोष्ठोद्वारा प्रचारः— भिन्नभिन्नधर्मावलिन्ननो भिन्नभिन्नजातीया वा यदा खगोष्ठीं कुर्वन्ति । तदा प्राय एकिस्मन्नेव पात्रे वहवो जना जलादिकं पिवन्ति । एतन्महदनुचितं सम्भवो ऽस्ति कश्चिदज्ञातः क्ष्यरोगी स्यात्तत्र तन्मुखादागतं पात्रलप्नं धीवनमन्यस्य स्वस्थस्य मुखाभ्यन्तरे गच्छेदेवं सोप्याकान्तः स्यात्क्षयेणेति । अतस्तत्र पृथक् पृथक् मृत्तिकाशरावे हस्तमम्पुटे वा पिवेतु वरं स्यात्।

व्रणहारा रुधिरेकोटाणुप्रवेशः—यःखळ क्ष्यरोगिणां प्रति-प्रहं परिमार्धे तस्य यदि कदाचित् धातुमृत्काचाद्य-यतमिर्मि-तप्रतिमहद्वारा चतं स्यानु कीटाणवस्तद्द्वारा रुधिरे प्रविष्टा भवन्ति । तथाऽन्येऽपि क्षयरोगिणां परिचारकाः सुहृदो वा यदि व्रणिताः स्युः रोगिसन्निकटे चोपविष्टाः स्युः तद्व्रणे रोगिष्टीवन-कणा असावधानतया वाद्यादिद्वारा कथित्रदिप पतेयुश्चेत्तुतेषां रुधिरे कीटाणवः प्रविष्टा भवन्ति । क्षयरोगिचिकित्सकानामिष, त्रसावधानतथा भयंसम्भवति यदि क्षयिस्षृष्टयन्त्रद्वारा तेषां क्षतं स्यात् । त्रतो विशेषेण चिकित्सकाः, क्षयिपरिचारकाः, मित्राणि कुटुम्बिनश्च सावधानाः स्युः ।

कदाचिद् रोगी यदि स्वक्रुदुन्विनो बालकादेः क्षते स्वष्टीवनं लिम्पेदथवा कस्यचिच्छिशोः चताङ्गुलि स्वमुखे प्रवेशयेचुतत्वत-द्वारा कीटाण्वो रुधिरे प्रविष्टा भवन्ति ।

[२५०]

रोगिणैतद् ज्ञातव्यं यत्कस्यचिद्पि शिश्वादेरेवं स्पर्शं न कुर्यात्। इदमपि सदा ज्ञेयं यत्क्ष्यिणां भीजनपानाद्यर्थोपयुज्यमानं पात्रमन्येषामुपयोगे नाऽज्यात्। यावदुष्णोद्केन सम्यक्छुद्धीकृतं न स्यात्। एवं वस्नादिविषयेऽपि ज्ञेयं सर्वेः।

अन्ये क्षयरोगप्रचारहेतवः

(१) मातापितृभ्यामपि स्वसतन्तौ क्षयरोगः सङ्क्रामित । अर्थात् सहजोपि भवित क्षयरोगः। किन्तुसोऽसाध्य एव न ज्ञातव्यः प्रत्युत नव्यक्षयवत् साध्य एव ज्ञ यः। प्रायः एवमत्यल्पं भवित । तद्वक्षः संकुचितं भवित अंसौ चावनतौ भवतः। यदाकदा शनैः २ दौर्वल्यं वर्धमानं दृश्यत इति । यदा हि शिशृनां क्षयो जायतेकदाचित्तदाप्रायःसर्वदैताहिनिम्नाङ्कितानिकारणान्युपलभ्यन्ते।

१—बालकः क्षयार्तमातुरन्यस्य कस्यचिद्यक्ष्मिणो वा सकाशे सुप्त आसीत्।

२-अथवा चिरकाछं तत्सन्निकटे स्थित श्रासीत्

३ - अथवा बालकस्य मुखं चुम्बितमासीद्रोगिणा

४—अथवा स दूषितकीटागुपुक्ते मिलने विष्टरे स्थले वाऽक्रीडत्।

इत्यादिहेतुभिरवगम्यते यत् वाल्यावस्थात एव स्वच्छतायाः स्वास्थ्यरक्षणनियमपालनस्य च परमावश्यकता ।

या मातास्वकीयायांभाविन्यां सन्ततौ यक्ष्मण आशङ्कां कुर्यात् । तया स्वसुस्वाथ्यसम्पादनार्थं सदा प्रयतनं कार्यम् । यथा सततं शुद्धवाते निवसेत् , नित्यं पुष्टिकरं भोजनं कुर्वीत । सा कदा-चिद्रप्येवं वस्त्रं न द्धीत येन तद्वक्षः सङ्कृचितं स्याच्छ्वासेऽपि वाधाऽऽगच्छेत् । पाश्चाट्यदेशीयानामिव प्रत्यङ्गनि-

[२५१]

बद्धं वस्रं न दधीतेति तात्पर्यम् । ईषच्छिथिलमेव धारयेद्येन प्राकृतकार्येषि चृति न स्याच्छ्यासादिवाधापि न भवेत् ।

अत्र विचार्यं यत्सततं स्वास्थ्यरत्ताकरमतिप्राचीनं कोदृशं महर्षिप्रचारितं भारतीयं वस्त्रधारणविधानम् ?

(२) मादकवस्त्नामत्यधिकसेवनम्।

(३) मैथुनाधिक्यम् , वाल्यावस्थायामेव विवाहः, तथा सर्वस्मिन् कर्मणि स्वसामर्थ्यातिरिक्तपरिश्रमकरणम् ।

(४) कतिपयरोगाः सन्ति यद्धेतोः शरीरं दुर्वलम्भवति । यथा श्वसनकान्त्रिकज्वरविस्कोटकोपदंशप्रतिश्यायातिसाराद्यः ।

- (५) कतिपयन्यापारद्वाराण्येवम्भूतानि सन्ति यत्र विविध प्रकारेण रजांसि कार्यकर्णां देहे श्वासेन सह गच्छन्ति यथा पेषणकार्यालयः पाककार्यालयः, धूमवर्तिकार्यालयः, काष्ठलौहादि-धातुकार्यालयः तथा मद्रणसीवनादिकार्यालयश्चेत्यादि ।
- (६) दारिद्यम् , अपूर्णभोजनोपल्रव्यः अतो वाल्यावस्थात एव अमजीविता ।
- (७) स्वास्थ्यनाशकगृहाणि, यत्र तमसो वाहुल्येनाधि-कारः, सूर्यप्रकाशो न गच्छति वायु न च सम्यगायाति । येषां परिमार्जनं न क्रियते । यत्र च बहूनि जीर्णशीर्णवस्तूनि कुप्रवन्धेन रक्षितानि सन्ति ।
- (८) सार्वजनिकभोजनालयः—अत्र वहवो जना द्रव्यं द्त्वा भुञ्जते। कदाचित्संक्रामकरोगिणोऽण्यागत्य भोजजं कुर्वन्ति। अत्र स्वास्थ्यरक्षायाः ताहरां प्रयोजनं न भवति याहरां द्रव्यस्य। कदाचित्पाचकाःपरिवेषका ऋषि रोगिणो भवन्ति। प्रायस्तत्रैव ष्ठीवनादिकमिष प्रचिपन्ति धूममिष पिवन्ति जनाः। ऋतो यक्ष्म- संक्रमणं भवति। ऋतएव प्राचीनै निर्दोषा 'स्वयम्पाकिता' प्रचारिता।

[२५२]

एतेः (उपरोवतैः) कारणैः यक्ष्मसमावेशो भवित हतभाग्यानां मनुजानां देहे । अतो ह्यंतत्परित्यागे प्रयतित्व्यं सर्वेः सर्वदा । चतुर्दशवर्षवयस्तो न्यून वस्थायां वालकै न किमिप कार्यं श्रमशीलं द्रव्याद्युपार्जनार्थं करणीयम् । नानारजोमयकार्यालये कार्यकर् न णामिदं कर्तव्यं यत्सर्वदा धृलितो रज्ञार्थमुपायान् कुर्युर्यथा श्वास्यहणार्थमुखनासिकयोक्तपरिवस्नाच्छादनकं धारयेयुस्तथा नासि-कामुखाभ्यां रजो निष्कासयेयुः । दन्ताभ्यन्तरतः पिष्टरजांसि विघृष्य पृथक् कुर्युः । एवंकृते लालासंयोगेनोत्पद्यमानो माधुर्यविशेषो (Clucose) न सम्भवित योह्यपद्रविकीटाणुप्रसारणार्थमेक स्थावश्यकः पदार्थः । तथा अवकाशावसरे शुद्धवातादिसेवनस्य सम्यक् प्रवन्धं कुर्युः । सादकवस्तूनि परित्यजेयुः । स्वास्थ्य नियमानुकूलं सदाऽऽचरेयुः ।

हितोपदेशाः

वेगरोधधातुक्षयसाहसविषमाज्ञनपरित्यागविषये सद्। घ्यानं रक्ष्मणीयं सुप्रकाज्ञवातागमनज्ञीले स्थले निवासः कार्यः । पवित्रभोजनकरणे धर्मपरतायां च सदा प्रयतनीयम् ।

तथाहि -

ब्रह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः। सत्येनाचारयोगेन मङ्गलैरिवहिंसया।। वैद्यविप्रार्चनाचैव रोगराजो निवर्तते। (च०चि० अ०८)

अन्यच--

सत्येनाचारयोगेन रिवमण्डलसेवया। वैद्यविप्रार्चनाचैव रोगराजो निवर्तते॥

(योगरत्नाकरः)

इति

[२५३]

विसृचिका

अस्य रोगस्योत्पादका जीवागुविशेषाः सन्ति। ये शरीरं प्रविश्य विसूचिकामुत्पादयन्ति। रोगोऽयं विशेषतः जलद्वारा प्रसरित। नदीकृपादीनां जलं विसूचिकारोगातुराणां मलेन दूषितं भवति। एवम्भूतेन जलेन शाकादिकं यद्यपकं भुज्यते तर्ह्ययं रोगः संजायते। मिन्नकाद्वाराप्ययं प्रसरित। इमा विसूचिकातुराणां मलमूत्रोपर्युपविश्य स्वमुखपादद्वारा जीवाण्न समाहृत्य चीरजलभोजनादौ प्रक्षिपन्ति। ये जनाःतत्पदार्थं सेवन्ते ते विसूचिकाकान्ता भवन्ति। कदाचिदेतद्रोगजीवागु-वाहकमनुष्यद्वाराऽप्ययं संकामित।

विसूचिकातुराः सद्यो विशिष्टचिकित्सालये प्रेषणीयाः।

रोगिमलं सम्यग् जन्तुन्नद्रव्यद्वारा निर्जन्तुकीकृत्य पृथिव्यां पाटनीयं, प्रज्वातनं तु ततोऽपि श्रेष्ठतरम् । यो जनपदः विसूचिका-क्रांतः, तस्य जलप्रबन्धंप्रति विशेषध्यानं देयम् ।

कूपे जन्तुन्नपदार्थाः (चूर्णपोटाशियमपरमेगनटप्रमृतयः) प्रचेप्याः। जलं संकाथ्य वस्त्रपूतं च कृत्वा सर्वदा पेयम्।

सर्वप्रकारकं भोजनं परिपाच्य कोष्णमेवाहरणीयम्।

पर्युषितं भोजनं न कदापि कार्यम्।

वैपणिकं मिष्टान्नादिकं न कदापि भोज्यम्। यतोऽनावृत पात्रेषु संरक्षणान्मक्षिकाद्वारा तद् दृषितं भवति।

सर्वे खाद्यपदार्था आच्छाद्य रक्ष्णीयाः।

क्षीरमपि संकाथ्य पेयम् । भोजनपात्राणि उष्णज्ञेन मार्जनीयानि ।

नियतसमये हितमितभोजनं कार्यम्।

वमनविरेचनकारकद्रव्याणां सेवनं न कार्यम्।

[२५8]

उपार्जितत्तमता (टीका) प्राप्तव्या । त्रमणमरिचेक्षुरससीधुपलाण्डूनां सेवनं, कर्पूराद्याणं विशेष-लाभप्रदंभवति ।

विसूचिकारोगप्रसरणसमये निम्वपत्रशुद्धहिंगुकर्पूराणां गुटिकां कृत्वा प्रातर्नित्यसेवनाद्विसूचिकावाधा न भवति ।

विसूचिकारोगेण मृता वसिततो दूरे जलाशयासमीपे तीव्राग्नी दहनीयाः । तदशक्तौ तु भूमौ चतुईस्तगभीरे गर्ते पाटनीयाः ।

मसूरिका (शीतला)

अस्य रोगस्याक्रमणविधिः पूर्णतयाद्यावधि नाऽऽवगतो विद्वद्भिः। किन्तु रोगोऽयं वायुवाद्य इति सर्वेषां विश्वासः। सं च श्वासनिःश्वासद्वारा शरीरं प्रविशति । अस्य जीवाणवो नाधिगताः कैश्चित्। अस्य विषं त्वक्पिटिकासु, मुखस्रावेषु च प्राप्यते। तच्च वायुद्वारा सुदूरं परिसर्पति।

यदा त्विक्पटिकाः शुष्यन्ति तदा तासां त्वग्भागा इतस्ततो वायुद्वारोत्पतन्तः संक्रामन्ति ।

रोगिविष्टराद्यन्यपदार्थद्वाराऽप्ययं संक्रामति ।

अस्य संक्रमणावरोधार्थं रोगिणः पृथगेकान्ते रच्णीया।

रोगिसम्बन्धीनि सर्वाणि वस्तूनि सम्यक् निर्जन्तुकी-कार्याणि।

एकाद्श्रिनम्बपत्राणि त्रिमरिचेंः सहैकप्रसृतजले संपेष्य नित्यं प्रातःपानं मसूरिकाप्रतिषेधकम् ।

उपार्जितक्ष्मता (टीका) प्राप्तव्या।

[२५५]

जनपदोद्ध्वंसने कारणानि

अथातो जनपदोद्ध्वंसनीयं विमानं व्याख्यास्यामः ॥१॥ इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥२॥

जनपदमण्डले पञ्चाल्चेत्रे द्विजातिवराध्युषितायां काम्पि-ल्यराजधान्यां भगवान्युनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे वर्ममासेगंगातीरे वनविचारमनुविचरन्शिष्यमित्रवेशमत्रवीत् ॥॥।

तृश्यन्ते हि खलु सौम्य! नक्षत्रप्रहचन्द्रसूर्यानिलानलानां दिशां च प्रकृतिभूतानामृतुनेकारिका भावाः, अचिरादितो भूरिष च न यथावद्रसवीर्यविपाकप्रभावमोषधीनां प्रतिविधास्यति, तिद्वयोगाचतङ्कप्रायता नियताः, तस्मात्प्रागुद्ध्वंसात्प्राकच भूमेर्विरसीभावादुद्धरध्वं सौम्य! भैषज्यानि यावन्नोपहतरसवीर्यविपाकप्रभावानुपयोक्ष्या-कप्रभावाणि भवन्ति, वयं चैषां रसवीर्यविपाकप्रभावानुपयोक्ष्या-महे, ये चस्माननुकाङ्क्षन्ति, यांश्च वयमनुकाङ्क्षामः, निर्हि सम्यगुद्धृतेषु भैषज्येषु सम्यग्विहितेषु, सम्यग्विचारचारितेषु जनपदोद्ध्वंसकराणां विकाराणां किंचित्प्रतीकारगौरवं भवति ॥॥॥

एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयभिष्ठवेश उवाच - उद्धृतानि खलु भगवन् ! भेषज्यानि विहितानि च सम्यक् सम्यग्विचारचारि-तानि च, त्रापि तु खलु जनपदोद्ध्वंसनमेकेनैव व्याधिना युगपदसमानप्रकृत्याहारदेहबलसात्म्यसत्त्ववयसां मनुष्याणां कस्मा द्भवतीति ॥५॥

तमुवाच भगवानात्रेयः - एवमसामान्यानामेभिरप्यमिवेश ! प्रकृत्यादिभिभावेमेनुष्याणां येऽन्ये भावाः सामान्यास्तद्वेगुण्यात्स-मानकाळाः समानळिङ्गाश्च व्याधयोऽभिनिवर्तमाना जनपद्मु-

[३५६]

द्ध्यंसयन्ति, ते तु खिल्वमे भावाः सामान्या जनपदेषु भवन्ति, तद्यथा—वायुरुदकं देशः कालः इति ॥६॥

तत्र वातमेवंविधमनारोग्यकरं विद्यात् तद्यथा—यथर्तुवि-षममतिस्तिमितमतिचलमितपरुषमितशीतमन्युष्णमितरुक्षमत्यभिष्य-न्दिनमितभैरवारावमितप्रतिहतपरस्परगितमितिकुण्डलिनमसात्स्यग-न्धवाष्पसिकतापांशुधूमोपह्तमिति।।॥

उदकं तु खलु—अत्यर्थविकृतगन्धवर्णरसस्पर्शवत्कलेदबहुलमप-क्रान्तजलचरविहंगमुपक्षीर्णजलाशयमप्रीतिकरमपगतगुणं वि-

द्यात् ॥८॥

देशं पुन:—विकृतवर्णगन्धरसस्पर्श होदबहुलसुपसृष्टं सरीस्पव्यालसशक्शलभमक्षिकामूषकोल्कश्रमाशानिकशकुनिजम्बुकादिभिस्तृणोल्ल्पोपवनवन्तं लताप्रतानादिबहुलमपूर्ववदवपतित शुष्कनष्टसस्यं धूम्रपवनं प्रध्मातपतित्र्र्गणसुत्कुष्टश्वगणसुद्रभ्रान्तव्यथितविविधसृगपिक्षसंघमुत्सृष्टनष्टधर्मसत्यलज्जाचारशीलगुणजनपदं शश्वत्क्षुभितोदीर्णसिलिलाश्यं प्रततोल्कापातिनर्घात भूमिकप्पमितभयारावरूपं रूक्षताम्रारुणसिताभ्रजालसंवृतार्कचन्द्रतारकमभीक्ष्णं
ससंभ्रमोद्देगमिव सत्रासरुदितिमव सतमस्किमव गुद्धकाचरितमिवाक्रन्दितशब्दबहुलं चाहितं विद्यात् ॥९॥

कालं तु खलु—यथर्तुलिङ्गाद्विपरीतलिंगमतिलिंगं हीनलिंग चाहितं व्यवस्येत्।।१८।।

इमानेवंदोषयुक्तांश्चतुरो भवान् जनपदोद्ध्वंसकरान् वदन्ति कुशलाः, अताऽन्यथाभूतांस्तु हितानाचक्षते ॥११॥

विगुणेष्विप तु खल्वेतेषु जनपदोद्धवंसनकरेषु भावेषु भेष-जनोपपाद्यमानानामभयं भवति रोगेभ्य इति ॥१२॥

भवन्ति चात्र कार्यक्रिकारी

वैगुण्यमुपपन्नानां देशकाळानिळाम्भसाम्।

[२५७]

गरीयस्त्वं विशेषेण हेतुमत्संप्रवक्ष्यते ॥ १३ ॥ बाताज्जलं, जलाद्देशं, देशात्कालं, स्वभावतः। विद्याद् दुष्परिहार्यत्वाद् गरीयस्तरमर्थवित् ॥ १४॥ वाय्वादिषु यथोक्तानां दोषाणां तु विशेषवित् । प्रतीकारस्य सौकर्ये विद्याहाचवलक्षणम् ॥ १५॥ चतुष्विपि तु दुष्टेषु कालानतेषु यदा नराः। भेषजेनोपपाद्यन्ते न भवन्त्यातुरास्तदा ॥ १६॥ येषां न मृत्युसामान्यं सामान्यं न च कर्मणाम् । कर्म पञ्चविधं क्षेतेषां भेषजं परमुच्यते ॥ १७॥ रसायनानां विधिवश्चोपयोगः प्रशस्यते । शस्यते देहवृत्तिश्च भेषजैः पूर्वमुद्धृतैः ॥ १८॥ सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्। सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः ॥ १९॥ हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्। सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिग्णाम् ॥ २०॥ संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम् । धार्मिकैः साह्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसंमतैः ॥ २१ ॥ इत्येतद् भेषजं श्रोक्तमायुषः परिपालनम्। येषामनियतो मृत्युस्तस्मिन्काळे सुदारुणे ॥ २२॥

इति श्रुत्वा जनपदोद्ध्वंसने कारणान्यात्रेयस्य भगवतः धुनरिष भगवन्तमात्रेयमिष्मवेश उवाच—अथ खलु भगवन् ! कुतो मूलमेषां वाय्वादीनां वैगुण्यमुत्पद्यते ? येनोपपन्ना जनपदबुद्ध्वंसयन्तीति ॥ २३ ॥

स्नेह्स्वेदपूर्वकवमन्विरेचनास्थापनानुगसनिश्चरोविरेचनानीति
 पञ्चविषम् ।

[२५८]

तमुवाच भगवानात्रेयः—सर्वेषामप्यग्निवेश ! वाय्वादीनां यहूँगुण्यमुत्पद्यते तस्य मूल्यमधर्मः, तन्मूलं वासत्कर्म पूर्वकृतं, तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव । तद्यशा—यदा देशनगरनिगमजन-पदप्रधाना धर्ममुत्क्रम्याधर्मेण प्रजां वर्तयन्ति, तदाश्रितोपाश्रिताः पौरजनपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममिभवर्धयन्ति, ततः सोऽधर्मः प्रसमं धर्ममन्तर्धत्ते, ततस्तेऽन्तर्हितधर्माणो देवता-भिरिप त्यज्यन्ते, तेषां तथाऽन्तर्हितधर्माणामधर्मप्रधानानामप-क्रान्तदेवतानामृतवो व्यापद्यन्ते, तेन नापो यथाकालं देवो वर्षति न वा वर्षति विकृता वा वर्षति, वाता न सम्यगभिवान्ति, श्लितिव्यीपद्यते, सलिलान्युपशुष्यन्ति, ओषधयः स्वभावं परिहायापद्यन्ते विकृतिं, तत उद्ध्वंसन्ते जनपदाः स्पृश्याभ्यवहार्य दोषात् ॥२४॥

तथा शस्त्रभवस्यापि जनपदोद्ध्वंसस्याधर्म एव हेतुर्भवति । येऽतिप्रवृद्धलोभरोषमोहमानास्ते दुर्वछानवमत्यात्मस्वजनपरोप-घाताय शस्त्रेण परस्परमभिकामन्ति, परान्वाऽभिकामन्ति, परे-वाऽभिकाम्यन्ते ॥ २५॥

रक्षोगणादिभिर्वा विविधैर्भूतसंवैस्तमधर्ममन्यद्वाऽप्यपचारान्त-रमुपळभ्याभिहन्यन्ते ॥ २६॥

तथाऽभिशापप्रभवस्याप्यधर्म एव हेतुर्भवति, ये छप्तधर्माणो धर्माद्गेतास्ते गुरुवृद्धसिद्धर्षिपृज्यानवमत्याहितान्याचरन्ति, ततस्ताः प्रजा गुर्वादिभिरभिशप्ता भस्मतामुपयान्ति प्रागेवानेकपुरुष-कुळविनाशाय, नियतप्रत्ययोपलम्भान्नियताः, अनियतप्रत्ययोपलम्भादियताः, अनियतप्रत्ययोपलम्भादिवयताश्चापरे ॥ २७॥

प्रागिप चाधमीहते नाशुभोत्पित्तरन्यतोऽभूत्। आदिकाले ह्यदितिसुतसमौजसोऽतिविमल्विपुलप्रभावाः प्रत्यत्तदेवदेवर्षि-धर्मयज्ञविधिविधानाः शैलेन्द्रसारसंहतस्थिरशरीराः प्रसन्नवर्णे-

[249]

न्द्रियाः पवनसमबलजवपराक्रमाश्चारुस्फिचोऽभिरूपप्रमाणाकृति-प्रसादोपचयवन्तः सत्याजेवानृशंस्यदानद्मनियमतपउपवासब्रह्मः व्यपगतभयरागद्वेषमोहलोभक्रोधशोकमानरोगनिद्रा-तन्द्राश्रमक्लमालस्यपरित्रहाश्च पुरुषा वभूवुरमितायुषः, तेषा-मुदारसत्त्वगुणकर्मगामचिन्त्यरसवीर्यविपाकप्रभावगुणसमुदितानि प्रादुर्वभूवुः सस्यानि सर्वगुणसमुदितत्वात्पृथिव्यादीनां कृतयुग-स्यादौ । भ्रश्यति तु कृतयुगे केषांचिदत्यादानात्सांपन्निकानां शरीरगौरवमासीत्, शरीरगौरवात् श्रमः, श्रमादालस्यं, आल-स्यात् संचयः, संचयात् परिम्रहः परिम्रहाल्लोभः प्रादुर्भृतः ॥ २८॥ ततस्रोतायां, लोभादभिद्रोहः अभिद्रोहादनृतवचनं, अनृतवचनात्काम-क्रोधमानद्वेषपारुष्याभिघातभयतापशोकचित्तोद्वेगादयः ततस्त्रेतायां धर्मपादोऽन्तर्धानमगमत्, तस्यान्तर्धानात् वर्षप्रमाणस्य पादहासः) पृथिन्यादीनां गुण्पादप्रणाशोऽभूत्, सस्यानां स्नेहवैमल्यरसवीयविपाकप्रभावगुण-तत्प्रणाशकृतश्च पादभंशः, ततस्तानि प्रजाशरीराणि हीनगुणपादैश्चाहारविहा-रैरयथापूर्वमुपष्टभ्यमानान्यग्निमारुतपरीतानि प्राग्व्याधिभिर्ज्वन रादिभिराक्रान्तानि, अतः प्राणिनो ह्रासमवापुरायुषः इति ॥२९॥

> भवतश्चात्र युगे युगे धर्मपादः क्रमेणानेन हीयते । गुणपादश्च भूतानामेवं लोकः प्रलीयते ॥३०॥ संवत्सरशते अपूर्णे याति संवत्सरः क्षयम् । देहिनामायुषः काले यत्र यन्मानमिष्यते ॥३१॥

^{* &#}x27;संवत्सराणां शते शतकृत्वो विभक्तानामेकैकभागे संपूर्णे जाते तद्युगोत्पन्नानां देहिनां तत्तत्परिमितस्यायुप एकैकः संवत्सरः स्यं याति' गङ्गाधरः।

[२६०]

इति विकाराणां प्रागुत्पत्तिहेतुरुक्तो भवति ॥३२॥ एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच—किं तु खळु भगवन् ! नियतकालप्रमाणमायुः सर्वं न वेति ॥३३॥

भगवानुवाच—

इहाग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ॥३४॥
दैवे पुरुषकारे च स्थितं ह्यस्य बलाबलम् ।
दैवमात्मकृतं विद्यात्कर्मं यत्पौर्वदेहिकम् ॥३५॥
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियतं यदिहापरम् ।
बलाबलिवशेषोऽस्ति तयोरिप च कर्मणोः ॥३६॥
हष्टं हि त्रिविधं कर्म हीनं मध्यममुक्तमम् ।
तयोखदारयोर्युक्तिदीर्घस्य च सुखस्य च ॥३५॥
नियतस्यायुषो हेतुविपरीतस्य चेतरा ।
मध्यमा मध्यमस्येष्टा, कारणं शृगु चापरम् ॥३८॥
दैवं पुरुषकारेण दुर्बलं ह्युपहन्यते ।
दैवेन चेतरत्कर्म विशिष्टेनोपहन्यते ॥३९॥
हष्ट्वा यदेके मन्यन्ते नियतं मानमायुषः ।
कर्म किंचित्कविद्यतं प्रत्यये: प्रतिबोध्यते ॥४०॥ इति ।
किंचित्त्वकालनियतं प्रत्यये: प्रतिबोध्यते ॥४०॥ इति ।

तस्मादुभयदृष्टत्वादेकान्तप्रहणमसाधु, निदर्शनमि चात्रो-दाहरिष्यामः—यदि हि नियतकालप्रमाणमायुः सर्व स्यात्, तदायुष्कामाणां न मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रा-यश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रिण्णातगमनाद्याः क्रिया इष्ट्यश्च प्रयु-ब्येरन्, नोद्भ्रान्तचण्डचपलगोगजोष्ट्रखरतुरगमहिषाद्यः पव-नादयश्च दुष्टाः परिहार्याः स्युः, न प्रपातगिरिविषमदुर्गाम्बुवेगाः,

[‡] दुष्ट कारणै ६द्रिक्तं कियते चकः।

[२६१]

तथा न प्रमत्तोन्मत्तोद्भान्तचण्डचपङमोहलोभाकुलमतयः, नारयः, न प्रवृद्धोऽग्निः, न च विविधविषाश्रयाः सरीसृपोरगा-दयः, न साहसं, नादेशकालचर्या, न नरेन्द्रप्रकोपः, इत्येवमादयो भावा नाभावकराः स्युः, आयुषः सर्वस्य नियतकालप्रमाणत्वात् न चानभ्यस्ताकालमरणभयनिवारकाणामकालमरणभयमागच्छे-त्प्राणिनां, व्यथीश्चारम्भकथाप्रयोगबुद्धयः स्युर्महर्षीणां रसायना-धिकारे, नापीन्द्रो नियतायुषं शत्रुं वन्त्रेणाभिहन्यात् , नाश्वि-नावार्त भेषजेनोपपादयेतां, न महर्षयो यथेष्टमायुस्तपसा प्राप्नुयुः, न च विद्तिवेद्तिव्या महर्षयः ससुरेशा रसायनादीनि सम्यक् परयेयुरुपदिशेयुराचरेयुर्वा, अपि च सर्वचक्षुपामेतत्परं -यदैन्द्रं चक्षुः, इदं चास्माकं प्रत्यक्षं, यथा - पुरुषसहस्राणामुत्थायो-त्थायाहवं कुर्वतामकुर्वतां चातुल्यायुष्ट्वं, तथा जातमात्रागाम-प्रतीकारात् प्रतीकाराच अविषविषप्राशिनांचाप्यतुल्यायुष्ट्वं, न च तुल्यो योगच्तेम उद्पानघटानां चित्रघटानां चोत्सीद्तां, तस्मा-द्धितोपचारमूलं जीवितमतो विपर्ययान्मृत्युः, अपि च देशकाः लात्मगुणविपरीतानां कर्मणामाहारविहाराणां च क्रमोपयोगं सम्यक् सर्वातियोगसंधारणससंधारणसुदीर्णानां च गतिमतां साहसानां च वर्जनमारोग्यानुवृत्तौ हेतुमुपलभामहे उपदिशामः सम्यक पश्यामश्चेति ॥ ४१ ॥

अतः परमग्निवेश उवाच—एवं सत्यनियतकालग्रमाणायुषां भगवन् ! कथं कालमृत्युरकालमृत्युर्वा भवतीति ॥ ४२ ॥

तमुवाच भगवानात्रेयः—श्रूयतामग्निवेशः! यथा—यानसः मायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यवान्तगुणैरुपेतः सर्वगुणोपपन्नो वाह्यमानो यथाकालं स्वप्रमाणन्तयादेवावसानं गच्छेत्, तथाऽऽयुः शरीरो-पगतं बलवत्प्रकृत्या यथावदुपचर्यमाणं स्वप्रमाणक्ष्यादेवावसानं गच्छिति, स मृत्युः काले, यथा च स एवान्नोऽतिभाराधिष्ठितत्वा-

[२६२]

द्विषमपथादक्षचक्रभङ्गाद् वाह्यवाहकदोषादणिमोक्षात् पर्यसनादनु-पाङ्गाच्चान्तरा व्यसनमापद्यते, तथाऽऽयुरप्यथावलमारम्भादय-थाग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमद्यारारन्यासादतिमेथुनादस-त्संश्रयादुदीर्णवेगविनिप्रहाद्विधार्यवेगाविधारणाद्भूतविषवाय्वग्न्यु-पतापाद्भिघातादाहारप्रतीकारविवर्जनाच्च यावदन्तरा व्यसनमा-पद्यते स मृत्युरकाले, तथा ज्वरादीनप्यातङ्कान्मिथ्योपचरितासका-लमृत्यून् पश्याम इति ॥ ४३॥ (च० वि० अ० ३)

तथोक्तं महर्षिणा सुश्रुतेनाऽपि—
एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषा आगन्तवः समृताः ॥
जलमग्निर्विषंशस्रं स्त्रियो राजकुलानि च ।
स्त्रकालमृत्यवो होते तेभ्यो विभ्यति पण्डिताः ॥
विष्वग्वातादिभि यहद् दीपो वर्त्यादिसंयुतः ।
निर्वात्यते क्षणाद् देही तथैवागन्तुमृत्युभिः ॥

इिंब

रोगारम्भक्षणे जनानां कर्तव्यम्

प्राज्ञो रोगे समुत्पन्ने बाह्येनाभ्यन्तरेण वा ।
कर्मणा लभते अर्म शक्षोपक्रमणेन वा ।।
बालस्तु खलु मोहाद्वा प्रमादाद्वा न बुध्यते ।
उत्पद्यमानं प्रथमं रोगं शत्रुमिवाबुधः ।।
अगुर्हि प्रथमं भूत्वा रोगः पश्चाद्विवर्धते ।
स जातमूलो मुल्णाति बलमायुश्च दुर्मतेः ।।
न मूढो लभते संज्ञां तावद्यावन्न पीड्यते ।
पीडितस्तु मति पश्चात्कुरते व्याधिनिमहे ।।
अथ पुत्रांश्च दारांश्च ज्ञातींश्चाहूय भाषते ।
सर्वस्वेनापि मे कश्चिद् भिषगानीयतामिति ।।

[२६३]

तथाविधं च कः शक्तो दुर्बलं व्याधिपीडितम्।
कृशं त्तीणेन्द्रियं दीनं परित्रातुं गतायुषम्॥
स त्रातारमनासाद्य वालस्त्यजति जीवितम्।
गोधा लाङ्गृलबद्धेवाकृष्यमाणा वलीयसा॥
तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा।
भेषजैः प्रतिकुर्वीत य इच्लेसुखमात्मनः॥

(च० सू० अ० १२)

अन्त्येष्टिकर्म

संसारे मनुष्यजातिष्वनेक मतानि प्रचलन्त । स्वस्वमतानु-सारेणान्त्येष्टिकर्मणो रीतिरिप भिन्नेवास्ति । केचित् पारसीकाः जालिकामयोचगृह्वितानोपिर शवं संरक्ष्य सूर्यप्रकाशेन संशोष-यन्ति । तस्य किंचित्तत्वं वाष्पं भूत्वा निर्गच्छत्यविश्वष्टमधस्तले पति । मिश्रदेशवासिनो लवणादिपूरितमंजूषायां रच्चन्ति । यवनाः तथा ईशायिनः पृथिब्यां पाटयन्ति । हिन्दू जनाश्च शवस्य दाहकम्मं कुर्वन्ति, जले वा प्रवाह्यन्ति ।

यद्यपि स्वस्वमतानुसारेण सर्व युक्तमेव परन्तु स्वास्थ्यदृष्ट्या दाहकमेंव श्रेष्ठतम उपायः। यतः पारसीकवियौ दौर्गन्थ्यं वर्धते। मिश्रीयविधौ शवरक्षणान्नकश्चिहाभः प्रत्युत छवणादिव्ययाधिनयं तथा व्यर्थ स्थानमप्यावृतं भवति। यननेशायिविधौ तु शनैः शनैः सर्वमेव स्थानं समाधिमयं जायते। तथा तद्द्वारा वायुर्द्षितो भवति, तत्समीपस्थकूपादेर्जछमपि दुष्यति, येन स्वास्थ्यहानिरनेके च रोगा उत्पद्यन्ते। परन्तु हिन्दूविधौ, दाहर्कमणा तत्क्षणमेव सर्वाणि तत्वानि स्वस्मिन् स्वस्मिन् गत्वा मिछन्ति। न कश्चिद् दोषः समुत्यते। किंतु असम्यग्दहने दुर्गन्धिन्वाष्ट्रां निर्गत्य वायुंदूष्यत्यतो न्यूनातिन्यूनमष्टमणपरिमितसिमिध

[२६४]

उपयोग एकश्ददाहार्थं कार्यः। सुगभीरजले शवनिमज्जनमपि

हितकरं, परन्त्वयमुपायः सर्वत्र न कतुं शक्यः।

समावे स्थानं तु वसते कोशार्धदूरे ततो निम्नस्थले कार्यम् । यतस्तद्वसतेर्जलं वायुं च दूषियतुं न शक्नुयात् । समाधयः पृथकपृथक् किञ्चिद्दूरे दूरे स्युः । तत्र वृक्षा अप्यारोपणीयाः शवा गभीरखाते पाटनीया यतस्तद्वयवा वाष्पद्वारा निर्गत्य स्वास्थ्यहानिकारका न भवेयुः । एकसमाधावेक एव शवःपाट-नीयः । परन्तु युद्धे तु नैवं कर्तुशक्यते स्थानकालाद्यभावात् । श्रतस्तत्र १०—१२ हस्तगभीरं खातं सुदीर्घ खन्यते । तत्रोभय पङ्क्तौ शवाः संरक्ष्यन्ते । तदुपरि चूणं (चूना) प्रक्षिप्य क्रमशः पुनस्तथैव संरक्ष्यन्ते । यदा हस्तचतुष्टयं गाम्भीर्यमुपरि रिक्तं तिष्ठति तदा तत्र मृत्तिकाः प्रक्षिप्य खातं प्रपूर्यत इति ।

स्वस्थवृत्तानुष्ठानस्य फलम

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यःसम्यगनुतिष्ठति । स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते ॥ नृलोकमापूर्यते यशसा साधुसम्मतः । धर्मार्थावेति भूतानां वन्धुतामुपगच्छति ॥ परान् सुकृतिनो लोकान् पुण्यकर्मा प्रपद्यते । तस्माद्वृत्तमनुष्ठेयमिदं सर्वेण सर्वदा ॥

(च० सू० अ०८)

यन्थसमाप्तिकालः

रिपुवसुनिधिचन्द्रैरिङ्कते वैक्रमेऽब्दे बुधिदनशिवरात्रौ फाल्गुने कृष्णपत्ते। सकलकृतिरियं मे पूर्णतां सङ्गताद्य बुधजनहृदयानां हादकत्तू प्रभूयात्॥ [२६५]

ग्रन्थकर्तुःपरिचय<u>ः</u>

गोण्डामण्डलसंस्थिता सुविदिता प्रान्तेऽवधे मञ्जुले आटाख्या नगरी विचक्षणजनैर्ल्ञधासपदा राजते। नानाशास्त्रविचारदक्षमितिभः श्रोताध्वपारंगतैः धर्मध्यानविधानयापितिदनैः सत्वप्रकर्पाश्रितैः॥ तस्यां शास्ता सकलभुवनख्यातकीर्तिर्महीन्द्रः वीर्योन्माद्यद्रिपुदलशिरोरत्रभाभूषिताङ्घिः। न्यायोन्मीलन्नवनवगुणो मोदकारी जनानां नारीचूड़ामणिकमलया जाययाऽलंक्टतोऽस्ति॥

श्रीकमलाकमनीयसुकान्तः लोकविलोचनचोरचकोरः । कान्तिकलाधनधैर्यनिधानं भाति सुरेन्द्रबहादुरसिंहः ॥

तत्रासीद्विप्रवर्थ्यः सकलबुधजनैः कीर्तनीयः सभायां भूपेभ्यो लब्धमानो विहितपरिचयः शब्दतकीदिशास्त्रे। कीर्तिश्रीभारतीभिस्तिसृभिरतिशयं वेष्टितः सानुरागं मिश्रोपाह्यः सुधीरामफलतनुजनिःपण्डितो रामनाथः॥

तज्ज्येष्ठपुत्रोऽनुज चिन्द्रकाख्य, दैवज्ञ वय्यों मग वंश जातः। श्रेष्ठः सदाचाररतोऽस्ति विशः, शास्त्रीति राजेश्वरदत्तमिशः॥ संरक्षिताखिलसुगौरवभारतीयैः। पृज्येर्बुधौर्मदनमोहनमाळवीयैः॥ संस्थापितेऽत्र भवने निखिळागमानां। विद्याळये प्रथमविश्वपदाभिषेये॥

45 0 E # 255]

आयुर्वेद्पयोनिधेर्मतिमतो विद्यालयाध्यत्ततो नन्योद्यत्कविराजराजपद्वीसम्भूषितात्सद्गुरोः । विद्यादृद्धपरोपकारितरताच्छ्वीधर्मदासाद् बुधाद् प्रन्थानां पठनं समाप्य निखिलं तीर्णः परीन्नोदिधः ॥ आयुर्वेदे वरिष्ठां सकनकपद्कां प्राप्य लोकप्रशस्या- माचार्यश्रेणिमुच्चां सकलजनमनोमोदहेतुं नितान्तम् । सद्यस्तत्रैय भागे गुरुजनहृदयानुप्रहाल्लन्धकार्यो प्रन्थं भद्रंन्यवध्नात् सरलविधितया बोधदं सज्जनानाम् ॥ पाष्ट्येनिधीरितः सोऽस्ति स्वस्थवृत्तसमुच्चयः । लोकानामुपकाराय यथानामतथागुगः ॥ इदानीं पाठयत्यत्र विश्व-विद्यालये वसन् । चिकित्सा कियते काश्यां सर्वेषां रोगिणाभिष ॥ सदस्यो राजकीयायाः सभायाः भेषजभ्य च ।

सदस्यो राजकीयायाः सभायाः भेषजभ्य च । युक्त प्रान्त प्रतिष्ठाया वक्ततेऽयं महोदयः ॥ युक्त प्रान्तीय वैद्यानांमेळने दशमे तथा । अध्यक्षो ह्यभवञ्मास्यां प्रशस्तो वैद्यराडयम् ।

ताराशंकर मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, अध्यापक – अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, काशी।



at the Arya Bhukhan Press.

Brahmaghat, Ber R530 9.MR



पादन- एरतका-विभाव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Total State of the state of the

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

